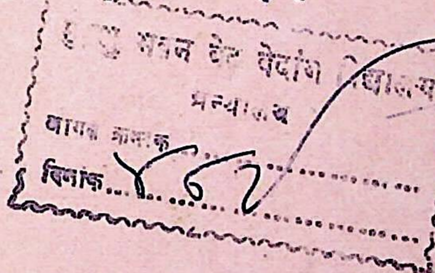
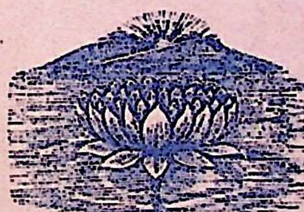
॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥

श्रीसद्गुरु

कबीर-सिद्धान्त-दर्शन





गंगाशरण शास्त्री



❀ श्रीसद्गुरु कबीराय नमः ❀

श्री सद्गुरु

❀ कबीर-सिद्धान्त-दर्शन ❀

रचयिता
गंगाशरण शास्त्री

प्रकाशक

कबीरवाणी-प्रकाशन-केन्द्र

(कबीरपन्थ मूलगादी)

कबीरमठ कबीरचौरा, वाराणसी

❀

पुनर्मुद्रण प्रकाशकाधीन

❀

प्रथम संस्करण } वि० सं० २०२९ महाशिवरात्रि { मूल्य–२–७५
१००० प्रति } { सन् १९७३ ई०

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस ग्रन्थ के लिखते समय मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता एवं गुरुतुल्य पूज्यपाद श्री रामसागर साहब ने जो सहायता की है, वह अकथनीय है। आपश्री के सहयोग से ही यह ग्रन्थ निर्विघ्नतापूर्ण पूर्ण हुआ है, इसलिये यह दास आप का आजीवन ऋणी रहेगा।

गंगाशरण दास

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान
मास्टर अयोध्या दास,
कबीरमठ कबीरचौरा, वाराणसी

मुद्रक—
हनुमान मुद्रण यन्त्र,
पियरीकलाँ, वाराणसी

हैं सामवेदाभिज्ञ गाते यज्ञ में जिस देव को ।
एकान्त में यति ध्यान धरते प्राप्तकर निज भेव को ॥



गुरुदेव-देव-कबीर परमाचार्य पद आराधना ।
तन-कर्म से मन से वचन से सतत हो शुभ-साधना ॥

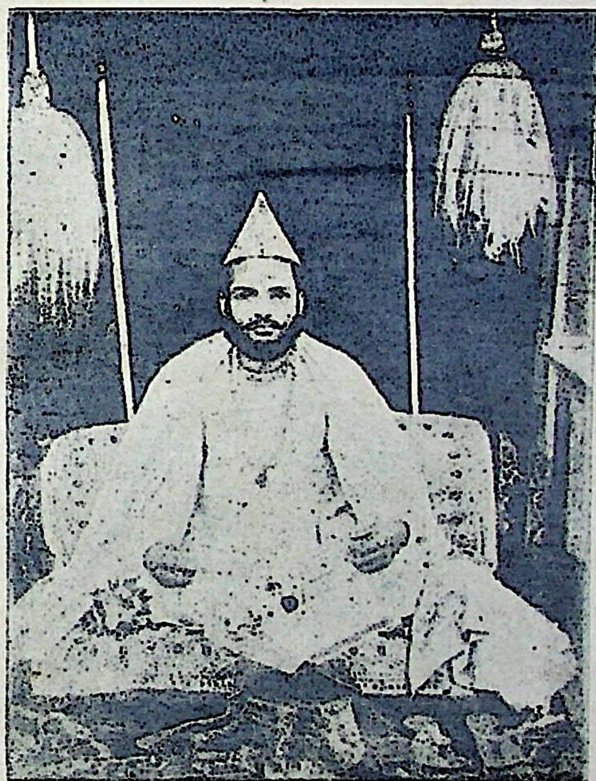
समर्पण

विश्ववन्द्य सद्गुरु कबीरपंथिकाचार्य
श्रीमदाचार्य रामविलास
साहब की पुण्य स्मृति
में



सादर समर्पित

इक्कीसवें सत्पथ-प्रदर्शक बन्धभेदक आर्य के।
संयम-नियम-परिपूत-मानस दिव्य पथिकाचार्य के॥



सत्यलोकीय आचार्य श्रीरामविलास साहब

सम्मान्य रामविलास साहब दीन-बन्धु दयाल के।
पादार-विन्दों में प्रणति है नमन कर निज भाल के॥



"गङ्गाशरण साहब" रचित,
भव-भय-विमोक्षण-पन्थ में।
श्रुति-सार सद्गुरु भावमय,
सिद्धान्त-दर्शन-ग्रन्थ में॥
कवि-भावना रमणीयतम,
संतत सुखद सर्वत्र है।
यह देख कर मनमुदित है,
प्रतिपाद्य परम-पवित्र है॥

—रामेश्वरानन्द

अवनि का मंगलमय यह ग्रन्थ।
सतत आलोकद जीवन-पंथ॥

मनुज अज्ञान तमस् में भ्रान्त,
न पथ पायेगा होगा क्लान्त।
करेगा ज्ञान-रश्मि का दान,
मिटेगा तत्क्षण मानस म्लान॥
नरों का नैतिकता-कर्तन,
नग्न पशुता का हो नर्तन।
बहेगी नैतिकता-धारा,
इसी ग्रन्थाम्बुधि के द्वारा॥
धर्म की होगी ग्लानि महान,
ईश-विश्वास न उसका गान।
गंग-कृत ग्रन्थ धर्म-उपकार,
करेगा जग में बारंबार॥

—अनुभव दास

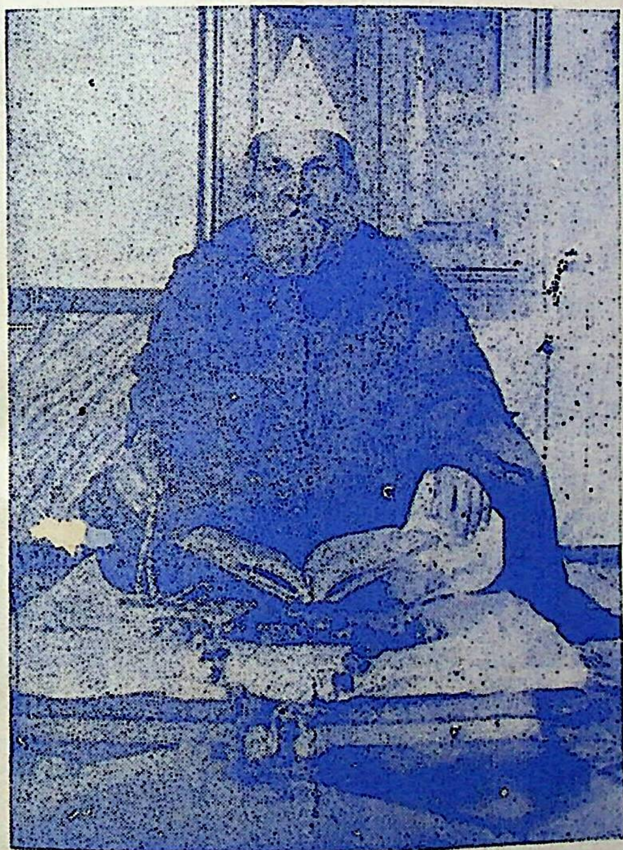
सवन्दन-आचार्य-परम्परा (गुरुप्रणाली)

हैं सामवेदाभिज्ञ गाते यज्ञ में जिस देव को।
एकान्त में यति ध्यान धरते प्राप्त कर निज भेव को॥
गुरुदेव-देव-कबीर-परमाचार्य-पद आराधना।
तन-कर्म से मन से वचन से सतत हो शुभ-साधना॥ १॥
कारुण्य पारावार बुधवर साधुजन सत्कार्य के।
बीजक-विचार-प्रचार कर उद्धार कर्त्ता आर्य्य के॥
योगीन्द्र "श्रुतिगोपाल साहब" वेदशास्त्राचार्य्य के।
पद-पङ्कजों में प्रणत हैं हम दूसरे आचार्य के॥ २॥
गुरु तीसरे "श्रीज्ञान" साहब ज्ञान-करुणाधार को।
आचार्य चौथे "श्याम" साहब साधुजन आधार को॥
लावण्यनिधि "श्री लाल" साहब पाँचवें आचार्य्य को।
करबद्ध हम वन्दन करें गुरुदेव-पथिकाचार्य्य को॥ ३॥
आचार्य्य छठवें पूज्यवर "हरिसुख" महोदय मान्य के।
फिर सातवें आचार्य "श्री शीतल" यतीश वदान्य के॥
अरु आठवें आचार्य "सुख" साहब दयामय धीर के।
पद-जलज में हम प्रणत होते ज्ञान-सिन्धु गभीर के॥ ४॥
नवमें "हुलासाचार्य" साहब मोक्षप्रद सम्मानिये।
आचार्य साहब दशम "माधव" मान्यवर को जानिये॥
फिर ग्यारहें "कोकिल" महोदय दीनबन्धु बखानिये।
निज भक्तजन सन्मार्ग दर्शक प्रणतिपात्र प्रमानिये॥ ५॥
"श्री राम साहब" राम सम आचार्य बारहवें मुनी।
साहब "महा" महनीयतम आचार्य तेरहवें गुनी॥

आचार्य "हरि" साहब चतुर्दश पूज्यपाद सुजान को।
मम प्रणति बारम्बार है गुरुदेव ज्ञान-निधान को ॥ ६ ॥
श्री "शरण" साहब पञ्चदश आचार्य बुधजन-भूप को।
आचार्य षोडश पूज्य "पूरण" पारब्रह्म स्वरूप को ॥
पुनि सप्तदश आचार्य गुरु "निर्मल" विमल मतिमान को।
मम प्रणति बारम्बार है गुरुदेव परम-प्रमान को ॥ ७ ॥
आचार्य अष्टादश महामति "रङ्गि साहब" मानिये।
उन्नीसवें आचार्य "गुरुपरसाद" साहब जानिये ॥
मम बीसवें आचार्य श्री गुरु "प्रेम साहब" को तथा।
श्रद्धा समेत प्रणाम है अरु ध्यान उनका सर्वथा ॥ ८ ॥
इक्कीसवें सत्पथ-प्रदर्शक बन्धभेदक आर्य के।
संयम-नियम-परिपूत-मानस दिव्य पथिकाचार्य के ॥
सम्मान्य "राम विलास साहब" दीनबन्धु दयाल के।
पादारविन्दों में प्रणति है नमन कर निज भाल के ॥ ९ ॥
बाईसवें श्री "अमृत साहब" वर्तमानाचार्य हैं।
शम-दम-निरत वैराग्ययुत जिज्ञासु-जन-सत्कार्य हैं ॥
गुणवान परम सुजान यति मतिमान शील-निधान हैं।
अति धीरता-धारी विबुध-जन प्रणति-पात्र प्रधान हैं ॥१०॥
काशीपुरीस्थ-कबीरचौरा-धाम पथिकाचार्य का।
वन्दन पुरःसर नाम संकीर्तन सुखद है आर्य का ॥
"रामेश्वरानन्देन" रचितं पद्य वृन्दं शोभनम्।
आचार्य-भक्त्या चात्मतुष्ट्यै भक्तजनपरितोषणम् ॥११॥

* गुरु प्रणाली समाप्त *

बाइसवें "श्री अमृत साहब" वर्तमानाचार्य हैं।
शम-दम-निरत वैराग्य युत जिज्ञासु-जन-सत्कार्य हैं॥



वर्तमानाचार्य श्रीअमृत साहब

गुणवान परम सुजान यति मतिमान शील-निधान हैं।
अति धीरताधारी विबुध-जन प्रगति-शत्र प्रधान हैं॥



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	१७	प्रिंत	प्रीति
४३	१६	पचपन	छप्पन
४९	३	तल	भूतल
५३	५	निरबोध	निरबोधन
५३	५	सोधनन	सोधन
७०	१६	होना	होता
७०	१९	नाहिं	नाहीं
७५	१६	राजो	राजा
७५	२०	पती	यती
७७	९	गंधव	गधर्व
८३	२०	ज्ञान	ज्ञान
८४	६	ऍं	ए
८४	१८	भणगार	भंगार
८७	२२	गावते	गावता
९४	१४	ज्ञान	ज्ञान
९४	१५	सम्यवाद	साम्यवाद
९६	२	दाष	दोष
१०८	१८	से	घर
११२	१६	आन्नद	आनन्द
१२६	१२	पद्मादूभवम्	पद्मोद्भवम्
१३९	१	वे	सो
१४७	१	निहिद्ध्यासन	निदिध्यासन
१४९	१७	पंच	पाँच

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६२	२०	जय	त्रय
१६६	१६	वसंततिलका	मुक्तक वसंततिलका
१८०	१८	हेत	देत
१८२	४	मावन	मानव
१६७	१३	दुखः	दुःख
२०८	१२	जै	त्रै
२१०	५	क्षण भगुर	क्षण भंगुर
२२०	५	स्वरुष	स्वरूप
२२०	१५	ह्मब्र	ब्रह्म
२२३	८	दाष	दोष
२२६	५	द्धशु	शुद्ध
२४८	७	जसा	जैसा
२५७	१	का	को
२७८	१७	दिखवई	दिखावई
२८७	३	हिसक	हिंसक
२६७	४	नहीं	नाहीं
,,	११	नाहिं	नाहीं
३०३	२	बह	वह
३०४	४	कवाह	कबहिं
,,	१०	पापही	पापिहिं
३०६	१२	पाता	पीता

सूचना—प्रेस की असावधानी से प्रस्तुत पुस्तकान्तर्गत बहुत सी मात्रायें एवं अक्षर अनुत्थित, त्रुटित तथा व्यत्यस्त हैं, जिनका शुद्धि-पत्र में उल्लेख नहीं है। कृपया, पाठक-गण सुधार कर पढ़ें।

विषय-सूची

भूमिका

संसार की अनेक घटनाएँ मानव-हृदय एवं बुद्धि को चिरकाल से क्षुब्ध करती आ रही हैं। यही कारण है कि कुछ न कहने की इच्छा रखते हुये भी मानव विवश है—कुछ कहने को, कुछ गुनगुनाने को। समाज के वातावरण में पला हुआ विवेकी मानव समाज की कुरीतिओं एवं बुराइयों के प्रति आँखें नहीं बन्द कर सकता है। समाज में हो रहे अन्याय, अत्याचार आदि को दृष्टि से ओझल नहीं कर सकता है, इनके विरुद्ध संघर्षरत हो जाता है, भले ही इसमें उसे सफलता मिले या असफलता। ग्रन्थ-लेखन की प्रतिज्ञा से शून्य होते हुये भी मुझे कुछ ऐसी ही घटनायें प्रस्तुत ग्रन्थ के ग्रन्थन में प्रेरित की हैं।

आज कबीर-पंथ में कुरीतियों का बोलबाला है। सद्गुरु कबीर के दर्शित मार्ग से लोग विमुख होते जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग उनकी वाणियों का अनाप-सनाप टीका-टिप्पण करके सद्गुरु के प्रति सामान्य जनवर्ग में भ्रान्ति उत्पन्न करने का अनुचित प्रयास भी कर रहे हैं। आज पंथ के अन्दर अनेकों सिन्द्धात भी प्रकट होने लगे हैं। अनेकों मान्यतायें प्रचलित होती जा रही हैं। जिन दोषों एवं कुरीतियों का सद्गुरु कबीर ने बहिष्कार किया था, आज के कबीरपंथी उन्हीं दोषादिकों को अपनाने में गर्व का अनुभव कर रहे हैं। इन सब बातों को देखकर मैं अपने सत्यलोकीय पूज्यपाद गुरुदेव से समय-समय पर अपनी भावनाओं को बताया करता तथा इस सम्बन्ध में उनके विचारों

को सुना करता । वे मेरी बातों को सुनकर कहा करते थे कि लगता है कि कबीरपंथियों में कलि भगवान प्रविष्ट होकर उनसे गुरुदेव कबीर साहब के विरुद्ध आचरण करा रहे हों । विरुद्धाचरणकर्ताओं के विरुद्ध यदि कुछ लिखने की क्षमता हो तो लिखो, साथ ही सद्गुरु की वाणियों से अभिव्यक्त होने वाले तात्पर्यों को भी उसके साथ निबद्ध कर दो । मैंने जब कुछ स्तुतिपरक छन्दों को एक-दो बार श्री गुरुदेव को सुनाया तो गुरुदेव की आज्ञा हुई कुछ लिखने एवं उसे मुद्रित कराने की । तत्पश्चात् गुरुदेव की प्रेरणा से कुछ पदों को रचना प्रारम्भ कर दिया । कुछ ही समय में एक लघु पुस्तक को आकार देने के लिये पर्याप्त छन्द निर्मित कर लिये गये और गुरुदेव को अद्योपान्त सुनाये गये । गुरुदेव ने उन्हें छपानें की आज्ञा प्रदान कर दी । मैं भी उन्हें छपाने को सोच ही रहा था कि इसी बीच दुर्भाग्यवश श्री गुरुदेव जी हमलोगों को छोड़कर दिनाङ्क ४-५-१९७२ ई० को सत्यलोक गमन कर गये । तदुपरान्त महीनों तक गुरुदेव के अभाव में शोकाकुल रहने एवं मठ सम्बन्धी कार्यों को करने के कारण छपाई के कार्य को स्थगित रखना पड़ा । इधर कुछ अवकाश मिलने पर वर्तमान आचार्य श्री अमृत दास जी साहब की प्रेरणा एवं सहयोग से मुद्रण कार्य प्रारम्भ करवाया गया ।

ग्रन्थ का मुख्य विषय है कबीर साहब की वाणियों के सही अर्थों का स्पष्टीकरण एवं उनके सिद्धान्त को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना । प्रस्तुत पुस्तक का नामकरण भी इसी दृष्टिकोण से किया गया है । यह ग्रन्थ निस्सन्देह सद्गुरु के सिद्धान्तरुपी ताला को खोलने के लिये कुंजी का कार्य करेगा । क्योंकि बिना कुंजी के ताला नहीं खुलता है,

और बिना ताला खुले अन्तःपुर की बातों को जानना असम्भव होता है। यह ग्रन्थ कल्पना-प्रसून नहीं है बल्कि इसका आधार परम्परा से प्राप्त विचार हैं। मैंने अपने श्री गुरुदेव के मुखारविन्द से जिन बातों को सुना था उन्हीं बातों को इसमें संकलित किया है। सद्गुरु कबीर के सिद्धान्त से सम्बन्धित उपदेश को उनकी गद्दी पर होने वाले आचार्य गुरुओं ने मौखिक रूप से समाज को प्रदान किया है। जो सदुपदेश कबीर साहब अपने वर्तमान काल में श्री श्रुतिगोपाल साहब, श्रीभगवान गोस्वामी, श्री जागू साहब एवं श्री तत्त्वा जीवा तथा अन्तर्धानोपरान्त स्वप्न में श्री धर्म दास जी और तत्कालीन समाज को दिया था, वही सदुपदेश श्री श्रुतिगोपाल साहब से लेकर वर्तमान आचार्य पर्यन्त आज भी अटूट धारा में प्रवाहित है। उन्हीं सदुपदेशों को गुरुमुख से सुनकर सानन्द संकलन किया है।

प्रत्येक ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये मंगलाचरण किया जाता है। सद्गुरु कबीर साहब नें भी अपने बीजक नामक ग्रन्थ में मंगलाचरण किया है। गुरु परम्परा की रक्षा हेतु मैंने भी मंगलाचरण किया है, जो आस्तिकों के लिये अभीष्ट भी है। प्रथम मंगलाचरण के एक दोहे में परम गुरु के नाते श्री स्वामी रामानन्द जी एवं उनके परम शिष्य सद्गुरु कबीर साहब का ध्यान करके रामनाम से निर्गुण ब्रह्म की वन्दना की गयी है। शेष पदों में कबीर नाम से सगुण ब्रह्म की वन्दना की गयी है। द्वितीय अध्यात्म मंगलाचरण में मूर्त्त रूप में गुरु की वन्दना एवं आध्यात्मिक विवेचन किया गया है। इस प्रकार प्रथम सोपान को समाप्त करते हुये संसार को कुंज वन की संज्ञा दी गयी है। द्वितीय

सोपान में प्रथमतः सन्त पुरुषों को परोपकारी बताते हुये मानसिक रोगों की व्याख्या तथा विभ्रमित बुद्धि की आत्म-विमुखता एवं आत्म-अप्राप्ति की दशा का वर्णन करते हुये संसार को भयावह बताया गया है। और भयावह संसार से मुक्ति हेतु ईश्वरोपासना बतायी है। इसके बाद तृतीय सोपान का अवतरण होता है, जिसमें सद्गुरु कबीर साहब के समालोचकों की अविवेकपूर्ण उक्तियों की आलोचना का सूत्र रूप में उल्लेख किया गया है एवं उनके असंगत, भ्रामक, तथ्यहीन एवं अनर्गल लेखों को अप्रमाणिक बताया गया है, क्योंकि अपने लेखों की पुष्टि में उनके पास कोई मौलिक प्रमाण नहीं, केवल काल्पनिक कथन मात्र है। इसके पश्चात् सद्गुरु कबीर साहब की संक्षिप्त जीवनी दी गयी है। तदुपरान्त अन्तःकरण की शुद्धि हेतु श्रद्धालु भक्तों के लिये कबीर-चालीसा लिखा गया है। सोपान के अन्त में सद्गुरु कबीर की प्रशस्ति एवं उनके द्वारा मानव जाति का जो उपकार हुआ है उसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी है। चतुर्थ सोपान का प्रारम्भ भी सद्गुरु के माहात्म्य-वर्णन से ही होता है। स्तोत्रावली में सद्गुरु कबीर एवं यमराज का सवाद है, जिसमें यमराज ने प्रतिज्ञा की है कि आपके उपदेश को मानने वाला भक्त मेरे लोक में नहीं जायेगा। इसके पश्चात गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुये एक राजा के इतिहास का वर्णन किया गया है, जिसमें सांसारिक सुखों को अनित्य दिखाया गया है। तत्पश्चात अंत में पूर्वार्ध-खंड के पाठ के फल का वर्णन करते हुये उसकी समाप्ति की गयी है।

उत्तरार्ध-खंड के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने के पश्चात स्वदेश

की महिमा एवं उन्नति-अवनति का कारण बताते हुये अतीत काल के अपने पूर्वजों का ध्यान करके उनकी महिमा का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके साथ ही वर्तमान एवं भविष्य के लक्षणों का उल्लेख करते हुये मातृ-भूमि के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है तथा प्रत्येक कार्यों में सुयोग्य पुरुषों की नियुक्ति आदि के औचित्य का वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं पर दूसरे धर्मों की आन्तरिक भ्रान्तियों का उल्लेख किया गया है। धर्माधर्म कीं व्याख्या करते हुये अहिंसा धर्म को महान एवं सत्य कहा गया है। प्रथम प्रकरण की समाप्ति के बाद अमर-वाणी नामक प्रकरण का आरम्भ होता है जिसमें गुरु-शिष्य के सम्वाद द्वारा आत्मानात्मवस्तु-विवेचन एवं संसार से पार होने के लिये मार्गोल्लेख किया गया है। प्रकरण के अन्त में व्यापक रूप से ईश की वन्दना करते हुये उसको समाप्त किया है। तत्पश्चात् अजर-वाणी नामक प्रकरण आरम्भ होता है जिसमें आस्तिकवाद का समर्थन करते हुये सद्गुरु कबीर साहब के वास्तविक सिद्धान्त का प्रश्नोत्तर द्वारा वर्णन किया गया है। इसे ग्रन्थ का हृदय भी कहा जा सकता है। क्योंकि इस प्रकरण में पूर्णरूपेण अध्यात्म विषय का उल्लेख हुआ है। अन्त में परम प्रभु की महिमा एवं ध्यान-विधि का वर्णन करते हुये पंचम सोपान के साथ ही अजर-वाणी प्रकरण की समाप्ति की गयी है। इसके बाद छठवें सोपान का आरम्भ होता है जिसमें प्रभाती छन्दों के माध्यम से मन को चेतावनी दी गयी है। इसके बाद मनमोहक भजन लिखे गये है, जिनको पढ़ते ही बनता है। अन्त में श्री राम का ध्यान करते हुये छठवें सोपान को समाप्त किया गया है। इसके उपरान्त सप्तम सोपान

की शुरुआत होती है जिसे इस पुस्तक का शिरोभाग माना जा सकता है। इसमें श्री सद्गुरु कबीर साहब एवं श्रुतिगोपाल साहब का सम्वाद दिया गया है। श्रुपिगोपाल साहब कबीर साहब से प्रश्न करते हैं। आप का क्या सिद्धान्त है ? आप के बीजक ग्रन्थ का सिद्धान्त वैदिक है या अवैदिक ? वह किन रहस्यों से युक्त है ? इसके अतिरिक्त अन्यान्य उपदेशात्मक वाणियाँ संसार के हितार्थ मुझे बताई गयी है, उनका भी क्या रहस्य है ? श्रुतिगोपाल साहब के द्वारा उपरोक्त सभी पूछे गये प्रश्नों के उत्तर बड़े सरल रुप में देते हुये सद्गुरु कबीर साहब ने अपने सिद्धान्त का भलीभाँति प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपने सिद्धांत के प्रतिपादन में विविध बातों का उल्लेख किया है। अपने परम आराध्य राम की व्याख्या बड़े ही मार्मिक शब्दों में करते हुये चार प्रकार के भजनों को बताया है। प्ररुत्त वेष धारियों का वर्णन, मुक्ति के वास्तविक स्वरूप का विवेचन तथा शम दमादि षट साधनों की उपादेयता आदि का प्रतिपादन कबीर साहब के मुखारविन्द से बड़े ही सुन्दर एवं यथोचित ढंग से हुआ है, इसके साथ ही त्यागी और गृही शिष्य के विषय में उपदेश देते हुये उन्होंने गृह धर्म की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है।

गृह धर्म के वर्णनोपरान्त उन तत्त्वों के बारे में भी कहा गया है जो संसार को व्यभिचारी बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। उन तत्त्वों में प्रधान तत्त्व वाम मार्ग है जिसे संसार जानता है। वाममार्गी समाज विरोधी कार्यों में संलग्न रहते हैं, क्योंकि उन्हें पाप-पूण्य जैसी बातों में विश्वास नहीं। शाश्वत जीवन-मूल्यों की उपेक्षा करते हुये मद्य, मांस,

चोरी परस्त्री-गमन हिंसादि में ही लीन रहते हैं। चूँकि अनैतिक कार्य भी उनकी दृष्टि में मुक्ति के साधन ही हैं, अतः वे समाज विरोधी कार्यों के करने में यत्किंचित भी संकोच का अनुभव नहीं करते। किन्तु संसार के सभी महापुरुषों ने वाम मार्ग को मानवता-विरोधी कहा है तथा उसकी भूरि-भूरि निन्दा की है। इसके उपरान्त शुभ मार्ग का कथन करते हुये कलि का भी जिक्र किया गया है, जिसे भ्रष्टचार का काल कहा जा सकता है। इस काल के लोग आत्म-संयम से विरत हो गये हैं। अपने सारे व्यवहारों को मनमाना ढंग से करते हैं। लोकमर्यादा को भूल कर माता-पिता एवं गुरुजनों की अवहेलना करते हैं। उनके लिये धर्म कर्मादि बेकार हैं। इस विषय को समाप्त करते हुये अन्त में ईश-वन्दना की जाती है। इस प्रकार ग्रन्थ में वर्णित विषयों को संक्षेप में बताकर ग्रन्थ के अन्दर आयी हुई कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का फिरसे उल्लेख करना अनिवार्य समझ कर अग्रिम पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

इस ग्रन्थ में स्तुति, वन्दना एवं कई एक बातों की पुनरावृत्ति हुई है। चूँकि ईश्वर की उपासना एवं भजन के विना ज्ञान तथा आत्म-शुद्धि असंभव है, इसलिये प्रभु की वन्दना जानबूझ कर बार-बार की गयी है। स्तुति करने से मन प्रसन्न होता है, आत्मबल मिलता है, जिससे बड़े से बड़े कार्य सफल हो जाते हैं। स्तुति करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तः की शुद्धि आत्मज्ञान की प्राप्ति कराती है। आत्मज्ञान से जन्म-मरण कृत बन्धन छूट जाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है। स्तुति से और भी बहुत से लाभ होते हैं। स्तुति से रोग, व्याधि एवं निर्धनता आदि से मुक्ति मिल जाती है, इसके बदले में स्वास्थ्य तथा

धन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ईश-स्तुति लौकिक एवं पारलौकिक दोनों सुखों का कारण होने से अत्यधिक उपादेय है। इसी प्रकार आत्मा-एवं ईश्वर के स्वरूप की बार-बार व्याख्या की गयी है। क्योंकि जो बातें मनुष्य के सामने बार-बार आती हैं, वे मानव मन पर एक गहरा संस्कार डालती हैं और अन्त में मनुष्य उसी का अभ्यासी हो जाता है। अभ्यास के अनुसार ही मनुष्य को गति भी प्राप्त होती है। इसलिये मैं जीव के कल्याण के लिये ही उसके सामने बार-बार एक ही बात रखता हूँ जिसमें उसकी प्रवृत्ति हो तथा कल्याणपद को प्राप्त कर सके।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कहीं-कहीं नास्तिक एवं पारखी शब्दों का भी समावेश हुआ है। उक्त शब्द भी जान बूझकर ही रखे गये हैं, अनजान में नहीं। कबीर पंथ में एक वंशगादी की शाखा है, जिसके संस्थापक श्री पूर्ण दास साहब हुये हैं। वे अपने को परम पारखी कहते थे। उनके अनुयायी आज भी अपने को पारखी एवं बुरहानपुरी कहते हैं। वे सद्गुरु कबीर साहब की वाणियों का अर्थ मनमाने तौर पर असंस्कृत जैसा करते हैं। वे अपने ही को सच्चे कबीर-अनुयायी मानते हैं। वे कबीर साहब से ही मुक्ति मानते हैं। वे वेद, शास्त्र, ईश्वर, परमात्मा की पूजा, भजन एवं परलोक गमन तथा अन्य मतों की घोर निन्दा करते हैं। वे राम और रहीम को गालियाँ देते हैं। उनकी दृष्टि में दूसरे मजहब के सिद्ध महापुरुष आज्ञानी ही होते हैं तथा उनकी मुक्ति भी पारखी होकर ही संभव है। ऐसी बातें तो लड़कपन जैसी ही कही जा सकती हैं। वे पढ़े लिखे नहीं होते अतः वे पढ़ाई-लिखाई को व्यर्थ बताते हैं। वे मूर्ति पूजा, चित्र-पूजा एवं संध्या-वन्दन आदि नहीं करते।

उनका मात्र कर्म हैं, बक-पंख सदृश श्वेत वस्त्र रखना, एक हाथ का खड़ाऊँ रखना, शिर पर शिखा न रखना, दक्षिणा के लिये लड़ना-झगड़ना आदि। यदि कोई उनसे दस सन्तों को भोजन कराने के लिये कहता है तो वे उस से कहते हैं कि हमें ही दश दिनों तक खिलाकर दश सन्तों की संख्या पूरी कर लो। वे दक्षिणा लेकर अनाप-सनाप किताबों को छपवाते हैं और समाज में उन्हें बेच कर पैसा कमाते हैं। वे अपनी पुस्तकों में मात्र गाली गलौंज ही लिखते हैं। प्रमाण के लिये "गुरु चेला सम्वाद" एवं पूर्ण साहब की "बीजक टीका" (त्रिज्या) आदि ग्रन्थ देखे जा सकते हैं। ऐसे ग्रन्थ समाज के लिये महा घातक हैं। ऐसे ग्रन्थों के प्रकाशन पर रोक होनी चाहिये। वे मूर्ति पूजा आदि को जड़ बताते हैं, परन्तु उनसे पूछिये कि रुपया, खड़ाऊ, दक्षिणादि चेतन हैं या जड़, जिसके लिये मारपीट गाली गलौंज करते हैं। इनके मत से वही लोग प्रभावित हैं जो अभी आदिम संस्कारों से युक्त हैं। ऐसे लोग मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार के और भी कई मत हैं जो अवैदिक एवं अवैधानिक हैं। उनके द्वारा समाज एवं राष्ट्र का बड़ा अहित हो रहा है। ये समाज के विघटक तत्व हैं। उनपर सरकार की कड़ी दृष्टि होनी चाहिये।

पहले बताया जा चुका है कि मंगलाचरणान्तर्गत निर्गुण ब्रह्म की वन्दना राम के रूप में एवं सगुण ब्रह्म की वन्दना सद्गुरु कबीर के रुप में की गयी है। निर्गुण राम वह है जो जन्म-मरण एवं सत्व-रज तमोगुणादि से परे है। जो सदैव समचित्त रहता है। जिसमें कभी

विकार का लेश नहीं होता है। वह सर्वत्र परिपूर्ण है। जैसे आकाश महान, स्वच्छ एवं अनन्त है उसी प्रकार से ब्रह्म भी विशुद्ध, निर्गुण, एवं व्यापक है।

राम[1] रहस्य साहब अपने 'पंचग्रन्थी' ग्रन्थ के टकसार प्रकरण में निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन किया हैं—

"साहब स्वतः प्रकाश पारख त्रास नहीं यम-दंड के"

"साहब सो आवे नहिं जाय, सदा सनातन नहिं विनशाय"

सद्गुरु कबीर साहब के बीजकादि ग्रन्थों में भी निर्गुण सगुण का विवेचन सूत्र रूप से हुआ है—

"सन्तो आवे जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके ना कहुँ गया न आया।"
"मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाँव।

---

१. रामरहस्य साहब काशी कबीरचौरा मूलगादी के आचार्य पूज्यपाद श्री शरण साहब के परम शिष्यों में थे। आप गया मण्डलान्तर्गत टेकारी रोड के पास 'कबीर बाग' नामक स्थान के महंत भी थे। आपने पंचग्रन्थी नामक एक ग्रन्थ की रचना भी की है जो आजकल कबीर पंथ में लब्ध-प्रतिष्ठ है। मेरे सत्यलोकीय ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्री राघव दास जी उर्फ श्री महाराज दास जी साहब ने जिसने पंचग्रन्थी की टीका लिखी है, उसकी भूमिका में आपके जीवन चरित्र पर विस्तार से प्रकाश डाला है, श्री राघव साहब जी ने बीजक, साखीग्रन्थ प्रभृति सद्गुरु कबीर के ग्रन्थों की टीकायें एवं अन्यान्य पुस्तकों की रचना की है जिनको राजादरवाजा स्थित श्री बैजनाथ बुकसेलर प्रकाशित कर विक्रय करते हैं।

जल थल मैं हीं रमि रहौं, मोर निरंजन नाँव।"

निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति से निर्वाण पद की उपलब्धि होती है। इसकी प्राप्ति का साधन सगुण ब्रह्म ही है। क्योंकि सगुण का ही पूजा, पाठ, उपासना, ध्यान आदि संभव है। निर्गुण की उपासना संभव नहीं है। कोई भी जानकारी किसी साधन अथवा दूसरे के माध्यम से ही होती है। जैसे गो अपने उदरस्थ दुग्ध में वर्तमान घृत का लाभ नहीं उठा पाती है लेकिन दूहने के पश्चात उसी दूध का दही बनाकर मंथन के द्वारा घृत निकाल कर गौ को पिला दिया जाता है तो वह हृष्ट-पुष्ट हो जाती है और उसका दूध भी बढ़ जाता है। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म भी अपने अन्दर ही विराजमान है, किन्तु साधन-विहीन अज्ञ जीव उसे न जानकर नाना संकटों से ग्रस्त हैं। उसे कभी भी सुख-शान्ति की उपलब्धि नहीं होती है, परन्तु वही जीव जब सगुण ब्रह्म की पूजा, उसका भजन-भाव, उसका नाम जप तथा सन्त-सेवा आदि करता है तो उसे परम शान्ति मिलती हैं और वह मुक्त भी हो जाता है। परम शान्ति उसी के अन्दर थी परन्तु आराधना के विना उपलब्ध नहीं हो सकी थी। यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि जब सगुण ब्रह्म की उपासना के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है तो कबीर साहब ने सगुण ब्रह्म का खण्डन क्यों किया है? उन्होंने सगुण ब्रह्म के उपासकों को अज्ञानी क्यों कहा है? कबीर साहब की—'दशरथ सुत अवतरि नहिं आया', "वै रघुनाथ एक के सुमिरे जो सुमिरे सो अंधा" आदि उक्तियों से तो सगुण ब्रह्म के खण्डन की ही प्रतीति होती हैं। परन्तु यह ज्ञात होना चाहिये कि कबीर साहब के इन कथनों का तात्पर्य सगुण ब्रह्म

के खण्डन से नहीं है। उनका तात्पर्य यह है कि सगुण ब्रह्म समचित्त नहीं है। वह जगत् रूपी राज्य का स्वामी है। उसके अनेकों रूप हैं। वह भक्तों के सामने प्रकट होकर विलुप्त भी हो जाता है। वह माया की सहायता से ही रूपों को धारण करता है। क्योंकि प्रकट होने के लिए माया की कला की आवश्यकता होती है। मायातीत परमेश्वर माया के विना कुछ करने में समर्थ नहीं है। मायायुक्त निर्गुण ब्रह्म ही सगुण बनकर जगत् में आता है और संसार के कार्यों को संपादन कर चला जाता है। सगुण ब्रह्म के अन्तर्धान होने पर भक्तों को महान वियोगजन्य कष्ट होता है। वियोगावस्था में पुनः भगवत्दर्शन की इच्छा होती है, जिसके लिये वह प्रभु की आराधरा करने लगता है आराधना से प्रसन्न होकर पुनः प्रभु भक्तों को दर्शन देता है और अन्तर्धान हो जाता है। भक्तजन पुनः वियोगी हो जाते हैं और प्रभु के दर्शनार्थ आराधना आरम्भ कर देते हैं। यह क्रम संतत चला करता है। इसी लिये सद्गुरु कबीर बन्दीछोर ने कहा है कि प्रभु का दर्शन अपने भीतर ही करना चाहिये। बाह्य दर्शन क्षणिक होता है। भगवान के असली स्वरूप पर नकली माया का आवरण होता है। अतः परमेश्वर का बाह्य रूप अर्थात् सगुण रूप सत्य नहीं है। प्रकट एवं अन्तर्धान होने वाले प्रभु की उपासना से स्थायी शान्ति एवं मुक्ति असम्भव है इसके लिये कामना रहित होकर उसके नाम को जपना चाहिये, उसके निर्विकार स्वरूप एवं वेदोक्त वाणी का चिंतन करना चाहिये। जागतिक व्यवहार संपादन के लिये निर्गुण ब्रह्म ही अनेक रूपों में आता जाता रहता है। वही गुरु रूप से भक्तों को ज्ञान देकर उन्हें मुक्त कर देता है। वही

भक्तों को दुःख देने वाले बड़े २ राक्षसों का विनाश करने हेतु नृसिंहादि अवतार लेता है। राम-कृष्ण आदि अवतार उसी निर्गुण ब्रह्म के त्रिगुणात्मक रूप हैं जो सब कुछ करने में समर्थ हैं। कबीर, नानक, बुद्ध शंकराचार्य, ईशा और महात्मागांधी आदि उसी निर्गुण ब्रह्मा के गुरु रूप हैं, जो केवल ज्ञान देते हैं। इसलिये जगत् की रक्षा हेतु परम प्रभु दो रूपों में आते हैं। परन्तु ये दोनों रूप अस्थिर हैं, सीमाबद्ध हैं, अनन्त नहीं। क्योंकि कोई भी भूतकालिक अवतार आज जीवित नहीं है, इसलिये सद्गुरु ने कहा है कि इन्हीं रूपों को सही मानने वाला वास्तविक ज्ञानी नहीं है। वह ज्ञान विहीन है। यदि उसे ज्ञान होता तो वह परमेश्वर के असली स्वरूप से ही प्रेम करता, जो निर्विकार एवं सदैव एक भाव रहने वाला है। भक्तों को उसके असली स्वरूप का ही चिंतन, मनन एवं ध्यान करना चाहिये। किन्तु निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का साधन सगुण ब्रह्म ही है। जैसे सीढ़ी असत्य होते हुये भी ऊपर जाने का साधन है, उसी प्रकार सगुण निर्गुण को प्राप्त करने का साधन है। सीढ़ी को साध्य रूप में सत्य समझने वाला भ्रान्त है। साधन कभी भी साध्य नहीं हो सकता। प्रभु के सगुण रूप को सत्य समझने वाला एक प्रकार से प्रभु की निन्दा करता है। सगुण निर्गुण का फोटो है पर निर्गुण नहीं है। परन्तु देखने से श्रद्धा हो जाती है कि यह मेरे परम पिता परमेश्वर का चित्र है। कबीर साहब ने प्रभु के दोनों रुपों को एक ही तत्त्व के दो घटकों के रूप में स्वीकार किया है, अतः इस सम्बन्ध में झगड़ना भूल है।

विश्व में महापुरुषों के रूप में अवतरित होने वाली बड़ी बड़ी

शक्तियाँ साक्षात् प्रभु के अवतार रूप में स्वीकार की गयी हैं। उन्हीं बड़ी शक्तियों में सद्गुरु कबीर साहब भी हैं, इसलिये उनको मैंने अवतार कहा है और उनकी वन्दना सगुण ब्रह्म के रूप में किया है। सगुण ब्रह्म की वन्दना बहुलता से इसलिये की गयी है कि वही संसार का सम्पूर्ण कार्य करता है। वह बड़ा उपकारी है। उसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। उसकी अधिक स्तुति अधिक लाभप्रद है। निर्गुण ब्रह्म केवल मुक्ति का कारण है, इसलिये उसकी वन्दना कम हुई है। श्रद्धावशात् उसकी वन्दना हो सकी है नहीं तो उसकी वन्दना सम्भव नहीं है। निर्गुण ब्रह्म गुणातीत है। उसपर गुणों का आरोप करना श्रद्धा से ही सम्भव है। सगुण ही मुक्ति, द्वार है। सगुण के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। जैसे किसी मकान के सभी दरवाजे बन्द हों तो उसमें प्रवेश करना असम्भव है, उसीप्रकार मुक्ति द्वार के अभाव में मुक्ति प्राप्त करना असंभव हैं। मुक्ति-द्वार सगुण ही है इसलिये उसका भजन कीर्तन करना उत्तम है।

कुछ लोग बीजक के अनेक पाठों को देखकर उसकी प्रामाणिकता को संदिग्ध बताते हैं। अमुक पाठ सही है, अमुक पाठ परवर्ती है इत्यादि बातें भी सुनने में आती हैं। कुछ लोग बीजक में कहीं भी साल सम्वत् का उल्लेख न पाकर उसे कबीर साहब का विरचित ग्रन्थ नहीं मानते। कुछ विद्वान् रमैनी को छन्दोबद्ध देखकर यह मानते हैं कि कबीर साहब का कोई विद्वान चेला बाद में उसे लिखकर उनके नाम से जोड़ दिया होगा। कुछ विद्वान् कबीर साहब को पढ़ा लिखा नहीं मानते हैं, क्योंकि स्वयं उन्होंने कहा है कि "मसि

कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ" इत्यादि। परन्तु उपरोक्त बातें अपूर्ण खोजों का फल हैं। अथवा एक विद्वान ने जो कुछ लिखा वही सबके लिये लिये प्रमाण बन गया। यदि ऐसा नहीं होता तो निम्न प्रमाणों की उपेक्षा क्यों होती। सद्गुरु के समकालीन श्री नाभा दासजी स्वामीने अपने भक्तमाल में स्वयं बोजक के प्रमुख प्रकरणों का उल्लेख किया हैं—'हिन्दू तुरुक प्रमान रमैणो शब्दै साखो'। इसी प्रकार श्री गुरु नानक देव जो को वाणियों में बीजक के अनेक शब्द तथा ज्ञान चौंतीसा के पद ज्यों के त्यों संग्रहीत हैं। इसो प्रकार बाबा मलूक साहब ने कबीर-ग्रन्थावली का संग्रह किया हैं जिसमें बीजक के रमैनी, शब्द, साखी कहरा आदि सभो प्रकरणों के पद मिलते हैं। इस प्रकार बीजक निर्विवाद रूप से कबोर साहब का प्रमाणिक ग्रन्थ सिद्ध है। इसमें शंका का स्थान नहीं है। इतना अवश्य है कि पूर्ववर्ती महात्माओं ने सभी प्रकरणों का क्रमबद्ध उल्लेख नहीं किया है।

बीजक के पाठ-भेद के सम्बन्ध में भी कुछ चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। कौन पाठ सही है, कौन नहीं है इसका समाधान यही है कि सभी पाठ सही हैं। क्योंकि सही का प्रमाण किसो के पास नहीं है। मौखिक प्रमाण मात्र तो मान्य नहीं हो सकता। अपनी-अपनो सुविधा के अनुसार पाठों में परिवर्तन किया गया है। दूसरा कारण यह भी हो सकता हैं कि अपने को अलग आचार्य कायम करने के लिये तथा कबोर साहब का सही चेला साबित करने के लिये ऐसा किया गया हो। आज वर्तमान में कुछ ऐसे स्थानाधिपति हैं जो अपने को कबोरपंथ-प्रधानाचार्य लिखते हैं। जो भी तथ्य हो मुझे इस उलझन में

नहीं पड़ना है। बीजक के सभी पाठों को देखने से यही लगता है कि सभी पाठ सही हैं। सभी पाठों में वही सब पद हेर फेर कर आये हैं। कुछ लोग कबीरचौरा काशी के पाठ को सही बताते हैं। चूँकि कबीर चौरामठ कबीरपंथ की मूल गादी है अतः इससे सम्बन्धित पाठ अवश्य ही सत्य होना चाहिये, ऐसा कहा जाता है। श्री विचार दास साहब शास्त्री ने कबीर चौरा के ही पाठ पर टीका लिखी हैं। इसी प्रकार एक अयोध्या निवासी सन्त एवं ब्रह्मलीन मुनि आदि लेखकों ने कबीरचौरा काशी के ही पाठ को सत्यमान कर उस पर टिकायें की हैं। पूर्ण साहब ने भी अपने मन्मुखी सिद्धान्त को कायम रखने के लिये कबीरचौरा के ही पाठ को सही मान कर उसकी त्रिज्या लिखी हैं। श्री अभिलाष दासजी आदि सन्तों एवं विदेशी लेखकों ने भी उक्त पाठ को ही सत्य मानकर उस पर टीकाएँ लिखी हैं। इस प्रकार बहुमत के आधार पर काशी कबीरचौरा काही पाठ सत्य प्रतीत होता है।

मुझे सद्गुरु कबीर साहब की जीवनी के सम्बन्ध में भी प्रस्तुत पुस्तक में कुछ चर्चा करनी पड़ी है। अनेक विद्वानों ने कबीर साहब की जीवनी के सम्बन्ध में जो मनगढ़न्त, भ्रामक एवं निराधार बातें कही हैं, उसकी भी चर्चा आलोचना-खण्ड में हुयी है। यहाँ पर मैं इस सम्बन्ध में अपने पंथ एवं गादी की मान्यता को विशेष रूप में प्रस्तुत करना अनिवार्य समझता हूँ। श्री सद्गुरु कबीर साहब का अवतरण सं० १४५६ विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमार के दिन लहतारा में हुआ। आप नीरू नीमा के द्वारा पाये गये। उन्होंने ही आप को कबीरचौरा काशी स्थित वर्तमान काल में नीरू टीला से प्रसिद्ध स्थान पर लाकर

पालन-पोषण किया। आपने सं० १४६६ में श्रीगुरु रामानन्द का शिष्यत्व स्वीकार किया। उस समय आपकी अवस्था ११ वर्ष की थी। सं० १४६६ से सं० १५१८ तक आपनें श्रीगुरु रामानन्द के पास रहकर उनकी सेवा शुश्रूषा की और उनके सिद्धान्तों को समझा। उनके साथ रहकर ही आपने देशाटन किया एवं कथा-कीनर्त के माध्यम से अद्भुत आध्यात्मिक एवं यौगिक शक्ति का विकास किया। अपने परम गुरुदेव श्री रामानन्द स्वामी के वैकुण्ठ गमनोपरान्त आप सं० १५१८ से सं० १५७५ तक अपने अनुभवों को प्रदान करते हुये संसार को प्रबुद्ध करते रहे। अन्त में आप अपने परम शिष्य श्री श्रुतिगोपाल साहब को अपना शेष कार्य एवं कबीरचौरा काशी की सेवा-प्रचार-कुटी के भार को सौंप कर मगहर प्रस्थान किये और वहीं अन्तर्धान होकर सत्यलोक गमन कर गये। तदुपरान्त उनके शिष्यों और गुरुभ्राताओं के द्वारा गुरु की वाणियों का देश के सभी भागों में प्रचार होने लगा। सद्गुरु की लीला एवं चमत्कार कथा अनेक ग्रन्थों में पाई जाती हैं। भक्तमाल, गुरुग्रन्थ साहब एवं दादू साहब, गरीब साहब आदि सन्तों के रचित ग्रन्थों में विशेष रूप से कबीर साहब की चमत्कार कथायें उल्लिखित हैं।

कबीर-पथिकों का प्रधान तीर्थस्थल काशी कबीरचौरा, लहरतारा एवं मगहर है जहाँ हजारों कबीरानुयायी एवं अन्य देशी और विदेशी दर्शक प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आते रहते हैं। मगहर के समाधि मन्दिर पर प्रति वर्ष अगहन पूर्णिमा को एक विशाल भंडारा होता है, जिसमें बहुत से सन्त, महात्मा एवं सद्गृहस्थ उपस्थित होकर अपने गुरु के मुखारविन्द से अमृतमय उपदेश श्रवण कर शान्ति लाभ करते हैं। प्राकट्य-स्थल लहर-

तारा पर भी सद्गुरु के जीवन-काल से ही एक सुरम्य मंदिर एवं मठ स्थापित है जहाँ पर कबीरचौरा के पूजारी रखे जाते हैं। इसी प्रकार समाधि स्थल मगहर के मंदिर पर भी मूलगादी कबीरचौरा का ही पूजक रहता है। मैनें अलग से कबीर साहब का जीवन-चरित्र लिखा है, जो अभी मुद्रित नहीं है। भविष्य में सद्गुरु की प्रेरणा प्राप्त कर समाज हितार्थ उसे मुद्रित कराया जायेगा।

कबीर-पंथ—कबीर पंथ निर्गुण रामोपासक एक आस्तिक सम्प्रदाय है। इसमें त्यागी एवं गृहस्थ दोनों प्रकार के शिष्य होते हैं। त्यागी शिष्यों के लिये घर द्वार स्त्री बाल बच्चा आदि उपाधियों से मुख मोड़कर आत्म-चिंतन करना एवं सन्यास के सभी शम, दम, विवेक वैराग्य आदि नियमों का परिपालन करना आवश्यक होता है। बीड़ी, गाँजा, भंग आदि दुर्व्यसनों का सेवन त्यागियों के लिये वर्जित होता है। उन्हें दोनों समय संध्या-वन्दन एवं गुरु का ध्यान पूजा-पाठ आदि करना अनिवार्य होता है। ग्राम छोड़कर मठ पर निवास करते हुये वहाँ पर आये हुये अतिथियों का यथा-शक्ति सत्कार करना उनका पुनीत कर्तव्य होता है। इसी प्रकार भक्तों के लिये भी कुछ सामान्य नियम हैं। गृहस्थ शिष्य अपने बाल बच्चों में रहते हुये इस धर्म का पालन करते हैं। उन्हें मांस, मदिरा, चोरी, परस्त्री गमन, अकारण वैर भाव आदि दुर्व्यसनों का परित्याग करना अनिवार्य होता है। गुरु-मंत्र का जाप करना, बीजक पाठ करना, एवं कबीरपंथी तीर्थ स्थानों पर वर्ष में एक बार जाना गृहस्थ शिष्यों के लिये अपेक्षित है।

महात्माओं ने सदैव अपने उपदेशों के प्रचार प्रसार के लिये जन-भाषा को अपनाया है। सद्गुरु कबीर साहब की भी भाषा जन

भाषा रही है। इसी प्रकार मैंनें भी सद्गुरु कबीर साहब एवं तत्कालीन सन्तों का अनुकरण करते हुये प्रस्तुत ग्रन्थ में जन-भाषा को ही स्थान दिया है। चूँकि मेरी मातृभाषा अवधी रही है इसलिये इसी भाषा को मैंनें अपने इस ग्रन्थ के ग्रन्थिल विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो वर्तमान में अवधी भाषा में अप्रचलित सा लगते हैं। इसका मुख्य कारण है, खड़ी बोली के दिन प्रतिदिन का बढ़ता प्रचार। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना सन् १९५६ ई० में ही हो चुकी थी, अतः तत्कालीन अवधी भाषा के प्रचलित शब्दों को इस पुस्तक में विशेषतः स्थान मिला है। फलतः यह पुस्तक अवधी भाषा की देन है। कुछ शब्दों को छन्दोंभंग से बचने के लिये तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है, इस त्रुटि के लिये विज्ञ पाठक क्षमा प्रदान करेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कहीं-कहीं पर दूसरे धर्मों की कुछ आलोचना हुई है। इस सम्बन्ध में मुझे कुछ स्पष्टीकरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। मुझे किसी धर्म के अच्छे उपदेशों से घृणा नहीं है। केवल उनके समाज-विरोधी गति-विधियों से नफरत है। दूसरे धर्मों को घृणा की दृष्टि से देखना, अपनी बड़ाई करना, धर्म के नाम पर हिंसादि दुर्व्यसनों को अपनाना, एक दूसरे को कष्ट देना आदि बातें समाज विरोधी हैं। मेरी दृष्टि में धर्म का सार्वभौम रूप मानव धर्म है; इसी को अपनाने से समाज का हित हो सकता है। मानव धर्म से तात्पर्य यह है कि सभी एक दूसरे की भलाई करें; जातिगत, धर्मगत, दलगत भावनाओं का परित्याग कर सत्य को अपनावें। मानव जाति एक है अतः मानव का

धर्म भी एक है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, विवेक अपरिग्रह आदि का पालन करना समाज के हित में है। यही मानव धर्म के मूल तत्त्व हैं। इनके पालन से समाज में घृणा, द्वेषादि की कमी होगी तथा विघटन की प्रवृत्ति पर अंकुश लगेगा। प्रस्तुत पुस्तक में मानव धर्म की ही व्याख्या हुई है अतः पाठकों को विविध धर्मों की आलोचना के सन्दर्भ में उपरोक्त विचार की पृष्ठभूमि को पहले ही समझ लेना अपेक्षित है ताकि भ्रान्ति-मूलक-धारणाओं का अंकुरण न हो सके।

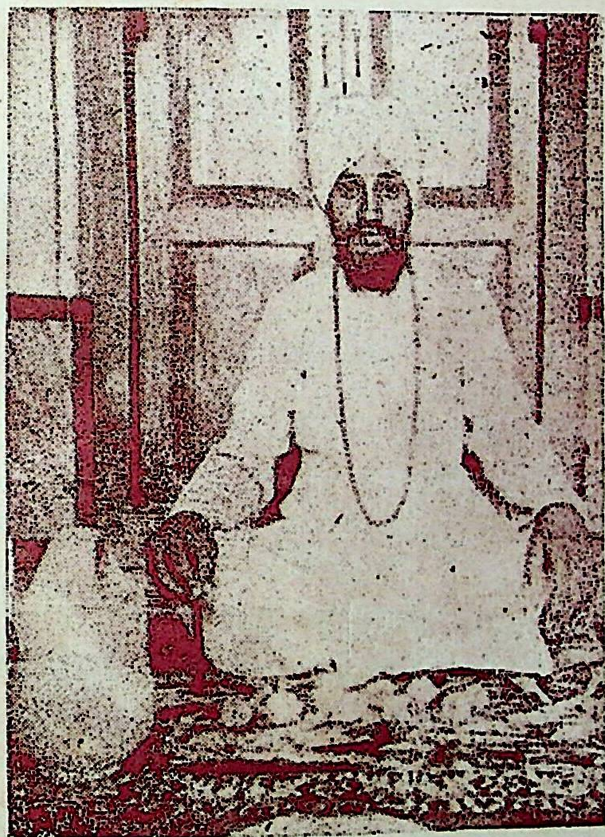
मैं, श्री पूज्यापाद प्रातःस्मरणीय वर्तमान आचार्य महन्त श्री अमृत साहब की विशेष अनुकम्पा एवं प्रेरणा तथा अन्य सहयोग के लिये उनका कृतज्ञ हूँ। और मैं, पूज्यपाद पंडित श्री रामेश्वरानन्द साहब, पोस्टाचार्य महन्त पानीदरवाजा कबीरमठ का आजीवन आभारी रहूँगा, जिन्होंने इस ग्रन्थ के छन्दोगत दोषों को दूर करने में अपना अमूल्य समय देकर महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इसके पूर्व-रूप (प्रूफ) के संशोधन में मेरे छोटे गुरुभ्राता पं. श्री अनुभवदास जी (एम० ए०) नें अत्यधिक प्रयास किया है, इन्हें सद्गुरु देव का आशीर्वाद और हमारी तरफ से धन्यवाद हैं। मेरे गुरु-बन्धु मास्टर श्री अयोध्या दास जी को भी धन्यवाद है जिनका हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ हैं।

और मैं उन सभी महानुभावों को धन्यवाद प्रदान करता हूँ जिन्होंने जाने या अनजाने जिस किसी भी रूप में सहयोग किया है।

अन्त में प्रकाशन सम्बन्धी गलतियों के लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके द्वारा प्रेषित सुझावों से आगामी संस्करण अधिक सफल होगा।

—गंगाशरण दास शास्त्री

प्रणेता



आचार्य रामविलास चरण चञ्चरीक

गंगाशरण दास

❀ श्री कबीराय नमः ❀

श्री सद्गुरु

* कबीर सिद्धान्त दर्शन *

प्रथम मंगलाचरण

पूर्वार्ध खण्ड

दो०—रामानन्द कबीर गुरु, पारब्रह्म का रूप।
जापर करुणा करत हैं, नाशे सकल कुरूप ॥

सवैया छन्दः—

राम समान न आन कभी, वह पूरणब्रह्म सदा शिव योगी।
दीनदयाल हरै सबहीं दुख, कोटि अनन्द महा रस भोगी ॥
पावन राम भजो नर मूरख, काह भयो तुम ताहि वियोगी।
शोक समुद्रहिं पार करे हरि, राम रमापति है शिव योगी ॥१॥
नौमि सुमंगल मै शिरि मै, मद मोह अतीत कबीर प्रभू हैं।
नित्य सुशाश्वत निर्गुण हैं हरि, सानन्द शुद्ध प्रमाण विभू हैं ॥
शान्त समस्त विकार परात्पर, बोध स्वरूप निरंजन भू हैं।
व्यापक भूत समस्तन में, शरणागत मंगल कारि रिभू हैं ॥२॥

आत्मपदार्थ प्रकाशक नाशक, मोह निशा गुरु भानु सुजाना।
धर्म धरे महि पाप नशे सब, जो कलिकाल कराल महाना ॥
पार करे निज दासन को भव, यान स्वरूप अनूप अमाना।
जो सब नाथ सनाथ करे जन, सो गुरुदेव कबीर सुजाना ॥३॥
सत्य कबीर नमो हियते शुभ, नाम अनन्त अखण्ड अपारा।
आप दयालु दया करु साहब, दूर करो सब संकट भारा ॥
नित्य विशुद्ध प्रबुद्ध सदा तुम, ज्ञान महान जहान उधारा।
पावन पाद सरोज नमो निति, सत्य कबीर सुइष्ट हमारा ॥४॥
ब्रह्म अनादि विभू चिद्आतम, व्यापक देव कहावनि हारा।
मंगल दातृ अमंगल ध्वंसक, मोद महोदधि भूरि उदारा ॥
नाम निरञ्जन भञ्जन भव दुख, दासन हेतु लिया अवतारा।
दास तुम्हार खड़ा नत मस्तक, मोहिं करो भवसागर पारा ॥५॥
मैं अति दीन अधीन महाप्रभु, आप बिना नहिं और सहारा।
घोर कठोर महा भवसागर, दीसत नाहिं सुपार करारा ॥
बोहित ता हितु सार नहीं प्रभु, और नहीं जग खेवनहारा।
देखि अथाह निराश भयो इस, हेतु कबीर सुनाम पुकारा ॥६॥
कारण कौन विलम्ब भयो अब, कीन्ह जुहार अनेकन बारा।
बालक पालक आप कहावत, नाम कि लाज करो करतारा ॥
और उपाधि बड़ी परमेश्वर, चारिहुँ खानि के पालनहारा।
क्या यह वाक्य असत्य कहे मुनि, कि अति खोटहिं कर्म हमारा॥७॥
दो महँ दोष हुआ प्रभु केकर, आप कहो यह बात विचारा।
जो मुझको हरि दोष लगावत, तो हम तो अघकेर पिटारा ॥

कर्म स्वभाविक मोर सदा यह, जीव करे अघ ओघ अपारा।
जो जन दोष बिना जग में रह, तो किमि आवत पास तुम्हारा॥८॥
पाप मई यह देह सदैवहिं, काल के गालहिं होत अहारा।
भूरि कलेश सहे जग में हम, आवत जात भयो बहु बारा॥
रञ्चक मोद मिले सपने नहिं, मातु पिता जन कष्ट अपारा।
भाँति अनेक बड़ा दुख है जग, भीति पयोनिधि के जल खारा॥९॥
कोटि उपाय किया सुख के हितु, पापहुँ पुन्य न कीन्ह विचारा।
तापर भी नहिं शान्ति मिली मन, कष्ट भयो अधिकाधिक भारा॥
रोग असाधि भया गुरु देव जु, वैद्य मिला न कभी हितकारा।
नाम तुम्हार सुना मुनि से प्रभु, है वह विश्व गदारि सुखारा॥१०॥
दूर करे सब रोग असीमित, ज्यों नभ भानु उदै तम छारा।
कीन्ह प्रकाश त्रिलोकन माहिं, जु मोह निशान्त सुमोद अपारा॥
कोटि दिनेश समान प्रभु तुम, है लघु रोग अँधार हमारा।
चाहहु तो हरि आप दयानिधि, लोक सभी पल माँहि उधारा॥११॥
महिमा सु अनन्त अपार रही प्रभु, संत मुनीश सदा गोहरावहिं।
कवि कोटिन कोविद शेषहुँ शारद, गावत धावत पार न पावहिं॥
पुनि अष्टदशो षट चारिहुँ वेद जु, नामऽरु रूप से भिन्न बतावहिं।
निति साचिस्वरूप अनूप अनामय, राम निरञ्जन ब्रह्म जतावहिं॥१२
दोष विकार परे गुरु राम, अनीह अभेद अछेद अनन्ता।
व्यापक सर्व सदा शिव रूप, अजन्म अखंडित वेद भनन्ता॥
एक अफाँस अनाश अनाहत, द्वैत विहीन सु गावहिं संता।
मैं मतिमंद अजान महा शठ, सो किमि पावहुँ आपन अन्ता॥१३॥

काल समान भयो मन मूरख, धर्माधर्म नहीं कुछ ज्ञाना ।
कामिनि के वपु पेखि महा शठ, ताहिक रूपम लावहिं ध्याना ॥
पाप किया बहुते जगमें यह, झूठन बातन साचहुँ माना ।
संत गिरा हिरदै न धरा शठ, भक्ति किया न गुरू भगवाना ॥१४॥
कारण सोइ महा दुख पावत, अन्त समय यमलोक ठिकाना ।
दें अति त्रास सदा यमदूतन, देखत मोर जिया घबराना ॥
कारण एहि पुकार किया हम, बाँह गहो अब आप सुजाना ।
बारहिं बार विनै हमरो प्रभु, वेगि मिलो नहि छूटत प्राना ॥१५॥
दास तुम्हार जहाँ जब टेरत, जाइ मिले वह कष्ट छुड़ाई ।
मोहिं समान बहू बड़ पापिन, ताहि दियो प्रभु पार लँघाई ॥
पाइ प्रमोद अफंद भयो वह, वेद पुरानन सन्तन गाई ।
दीन दयालु कबीर दयामय, संकट मोचन आप कहाई ॥१६॥
घोर महा दुख मोर महाप्रभु, होत कलेश सहा नहीं जाई ।
जानि अनाथ सनाथ करो अब, देर नहीं करिये गुरुराई ॥
होत विहाल बहू चित मोर जु, कष्ट असीम कहा नहिं जाई ।
ज्यों सुत मात बिना दुख पावत, लागि क्षुधा बहुते अकुलाई ॥१७॥
त्यों गुरुदेव कबीर महाप्रभु, मोर दशा उससे अधिकाई ।
जानत आप सभी मन की मम, काह कहूँ मुख से प्रगटाई ॥
साथ समीपऽरु दूर विराजत, राजत हो घट माहि सदाई ।
तो किमि नाहिं दया करते अब, दास तुम्हार पुकार लगाई ॥१८॥
हौं तव बालक पालक हो मम, मातु पिता तुमहीं गुरुरामा ।
और नहीं हमरो जग में कोइ, आपहि इष्ट जपो तव नामा ॥

जो कछु दोष हमार सभी प्रभु, आप क्षमा करिये सुख धामा।
जानि सुदास निरास करा नहिं, पाद सरोज नमो अभिरामा ॥१६॥

हरिगीतिका छन्दः—

नमो पाद सरोज रज गुरु, दीन बन्धु दयाल हो।
प्रभु शरण में हम आ गये, अब लीजिये जन पाल हो॥
गुरु भक्ति मुझको दीजिये, तव चरण में मम भाल हो।
नहिं और से कछु काम है, धन धाम अरु जंजाल हो ॥१॥
आशीष प्रभु हो आपकी, त्रयताप पाप विनाशनम्।
मद लोभ मोह विकार जो, संसार दुखमय भाषनम्॥
कीजै रहित परपंच से, जन्मादि मरण तरासनम्।
यहि भाँति गंगादास की, विनती सुनो मन रञ्जनम् ॥२॥

दोहा—सुनि विनती दाया करो, सत्य कबीर कृपालु।
भक्ति दान मम दीजिये, जो अनुकूल दयालु ॥१॥
जग प्रपंच से काम नहीं, भूति भुक्ति भी नाँहि।
सुरता तेरे नाम पर, चरण कमल चित माँहि॥२॥
दीन बन्धु गुरुदेव जी, देहु एक वरदान।
सत्य मार्ग में मन रमे, राम नाम गुणगान ॥३॥
आगे पुनि बन्दन करूँ, सुनिये कृपा निधान।
राम गीति के छन्द महँ, सकल सुखन की खान ॥४॥
मनरञ्जन भञ्जन दुख, ऐसी कथा बखान।
पाठ करे जो नेम से, चारि पदारथ पान ॥५॥

द्वितीय मंगलाचरण

हरिगीतिका छन्द—

आचार्य नवें को नमों, सुहुलास ज्ञानाचार्य को।
लीन्हा समाधी आपने, आयर में गुरुवर आर्य को ॥
मैंने लिखा यह ग्रन्थ शुभ, चरणों में मस्तक नायके।
आरा जिला में जानिये, पहुँचे वहाँ हम धायके ॥
बन्दौं गुरू पद कमल को, शुभ रेणु जो अति पावनम्।
निज भाल पर अभिषेक करि, सोभे पवित्र सुहावनम् ॥
जिमि पूर्णिमा का चन्द्रमा, मन मोद सिन्धु बढ़ावनम्।
जन मन मुकुर मल दूर करि, भव भेद भर्म नशावनम् ॥१॥
खोले महा दृग दिव्य को, जो दृष्टि गुप्त बखाननम्।
देखे चराचर एक मय सब, दोष द्वन्द भगावनम् ॥
सुप्रकाश ज्ञान विभाष जिमि, तम अज्ञ द्वैत दहावनम्।
पदपद्म रज महिमा महा, गंगा कहे किमि धावनम् ॥२॥
अञ्जन सुधा दृग जानिये, रवि ज्योति नयन उगावना।
भव रोग भेषज जीव अमि, निर्मल करे जन भावना ॥
वैराग योग रु ज्ञान को, विज्ञान भाव जगावना।
सानन्द वृति सब शोक हर, गुरु भक्ति अन्दर आवना ॥३॥
मद काम लोभ विकार जो, जग मोह कोह भगावना।
जेते जगत का द्वन्द्व था, वह शमन करि बिचलावना ॥
सुखरूप जो है आतमा, सुरता सदा सो लगावना।
सुस्थिर निरंतर रूप में, मन मौन भा नहिं गावना ॥४॥

अब विघ्न सारा दूर भा, संसार की बासा गई।
बैठा अचल सुख सिन्धु में, उत्पति प्रलय सब मिटि गई ॥
भा आप सो दूजा नहीं, ध्यावे न कोई देव को।
निर्भेद व्यष्टि समष्टि में, करता कहाँ किस सेव को ॥५॥
नहिं दृष्टि में दो आवता, पश्यन्ति व्यापक आप को।
गुरु देव ने करुणा करी, मेटा हमारे ताप को ॥
इस भाँति नित्य विचारि के, लहता सदा निज भेव को।
तब जन्म मानव सुफल हो, करता गुरू पद सेव को ॥६॥
भव वारिनिधि की जाल में, फिरि फिरि नहीं वह आवता।
पद तामरस दाया भई, सतलोक वासा पावता ॥
सतलोक आतम ज्ञान है, नहिं कल्पना मम और है।
आना न जाना है कहीं, रहना सदा इक ठौर है ॥७॥
बंदौं गुरूपद नख मणी, जिसको सदा सब ध्यावते।
भवसिन्धु से नर पार हो, निर्वाण पद को पावते ॥
सु प्रकाश दिव्य अनूप नख, तम पुञ्ज निकट न आवता।
साची सदा शिव रूप जो, निर्वाण नित्य कहावता ॥८॥
तामे सतत आनन्द लह गुरु, ज्ञान हरि गुण गावते।
जिस को सभी निति ध्यावते, सुर नर ऋषी मुनि रावते ॥
नहिं आवता जन दृष्टि में मन, आदि नहि तहँ जावते।
गुरुदेव पद नख की कृपा, करि के दरश जन पावते ॥९॥
प्रणवों गुरू पद कंज को, जो मेरु सम सुस्थिर रहे।
उतपति प्रलय इस विश्व की, बहु बार भी होती रहे ॥

तो भी गुरू पद नहिं टले, मुनि संत निगमागम कहे।
दुर्गम महा जग जलधि में, बचना चहे गुरुपद गहे ॥१०॥
नत होत हम गुरु जानु को, भवसिन्धु में जो मन्दरा।
कर्मादि शुभ कृत वासुकी, जिसमें लगे हैं रासरा ॥
शुभ धर्म सोई देवगण, हैं पाप दानव दल वरा।
मथते परस्पर युगल जन, मानस पयोनिधि अन्दरा ॥११॥
काढ़े चतुर्दश रत्न को, है शोर जग में जानिए।
तिनका धरूँ अब नाम पुनि, जिसको कहत मुनि मानिए ॥
पहिला हलाहल कोह है, जो जीव का दाहक अहा।
पुनि दूसरे मेधा सुरभि, है शुद्ध जो देवन गहा ॥१२॥
हय तीसरे उद्विग्न चित, दैत्येश ने जिसको लिया।
चौथे एरावत भक्ति है, सुरनाह को हरि ने दिया ॥
पञ्चम सुमणि गुरु ज्ञान है, तम अज्ञ को छेदन करे।
षट में विटप है देव का मन, शुद्ध जिसको मुनि ररे ॥१३॥
हैं सातवें देवांगना, परधान सो सुस्थिर नहीं।
अष्टम अविद्या लक्ष्मी है, ब्रह्म की सत्ता सही ॥
जिसके बसी जग जीव सब, मोहे महा मायामयी।
निकसे नहीं उस फाँस से, जग जीव की फाँसी भई ॥१४॥
ता शक्ति नवें वारुणी, है द्रव्य तिसको जानिए।
जिसके नशा उन्मत्त सब, धर्माधर्म नहिं मानिए ॥
गुरुदेव देव कबीर ने, इक युक्ति सो भेषज दिया।
जिससे शमन उन्मत्तता, उपकार जग में सो लिया ॥१५॥

सब रोग भोग विनष्ट करि, निज रूप में सुस्थिर किए।
गुरु वाक्य औषधि रूप में, धनवन्तरी दश में भए॥
अनुपान से जो सेवता, वह क्रोध रोगी भी जिया।
उद्विग्न जिसके चित्त में वह, भी स्वमन सुस्थिर किया॥१६॥
रक्षक युगल दल के बने, अरि मित्र नहिं जग मानता।
गुरुदेव बन्दी छोड़, जिसका नाम सब जन जानता॥
जो बोध सम्यक् सर्व में, षट पंच में पीयूष है।
जिसके पिये अम्बर भया, नहिं दूसरे पुनि भूष है॥१७॥
द्वादश सुधाकर मोक्ष है, मन सौम्य अति शान्ती भई।
आवे न जावे गर्भ में, आनन्दमय शोभा मई॥
पुनि धनुष त्रयदश ध्यान है, निति अटल है जिसमें सदा।
नहिं डिगत मन विष व्याल में, रह एक रस सो सर्वदा॥१८॥
पुनि चतुर्दश में शंख है, सन्मार्ग जग उत्पन भया।
सो शब्द सारे विश्व में, चहुँ ओर हलचल मच गया॥
जन्मांध गुंगा बाहिरा, भवकूप में वह गिर गया।
देखा सुना जो प्रेम से, आनन्द की लहरी भया॥१९॥
जिसके गहे दुख दूर भा, चहुँ ओर देखा धर्म को।
सेवा करे संसार की, करता हुआ शुभ कर्म को॥
ऐसी दया गुरु जानु की, पुनि पुनि सदा बन्दन करूँ।
हरि नाम को जपता सदा, गुण ग्राम को मानस धरूँ॥२०॥
बन्दौं शिरी गुरु हस्त को, शुभ कर्म जो संतत करे।
वपु आदि सेवा संत की, परमार्थ हिरदय में धरे॥

डूबे हुये भवकूप में, जग जीव को बाहर करे।
यहि हेतु मैं बन्दन करूँ, गुरु पाणि की जयजय हरे ॥२१॥
सुमिरौं शिरी गुरु भाल को, कैलाश सम सो जानिए।
सर्वज्ञ शिव है आतमा, शुचि बुद्धि गिरजा मानिए ॥
वैराग पन्नग ग्रीव में, जिसके डँसे कोइ ना बचे।
कहता नहीं यह झूठि हम, संसार में हल्ला मचे ॥२२॥
वह क्रोध भारी गरल है, इन्द्रिय सुरन दुख पावते।
सो आवहीं शिव शरण में, निज कष्ट सर्व सुनावते ॥
हे देव देव दयानिधे, वर देव आप कहावते।
मम शोक हरिये हे प्रभो, यहि भाँति सब गोहरावते ॥२३॥
विष व्याल काल स्वरूप है, दुख देत है अतिशय महा।
आये शरण अब राखिये, ऐसी गिरा सब ने कहा ॥
सुनि के विनय मेधा पति, निर्भय किया सब देव को।
धर के हथेली पर गरल, करि पान अमिरित तेव को ॥२४॥
को है दयाल महेश सम, जग में न कोई दूसरा।
जन्मादि मरण दुखादि को, मरदन करहिं गिरिजा वरा ॥
इस हेतु निति बन्दन करूँ, जग आतमा जो आप हैं।
गंगा गुरू हरि मातु पितु, मेटे सदा मम ताप हैं ॥२५॥
तिहुँ ज्ञान जो त्रयकाल का, सो नयन है तीनों सदा।
जिससे भसम मनसिज किया, है भूत मानो सर्वदा ॥
वापी उभय जो करण है, पीयूष इक पय से भरा।
अस्नान करि जो पावहीं, दीशे न कबहूँ वह मरा ॥२६॥

आनन्द घर मुख कमल है, जिससे सभी सुख पावते।
लहि बदन का वह मोद जो, आवागमन नहिं पावते॥
त्रय रूप वायु केन्द्र है, जग नाम जिसका नासिका।
यह गोपनीय भेद है, जाने कोइ जन मर्मिका॥२७॥
ब्रह्माण्ड भूत शरीर है, मौली गगन भू मध्यिका।
पाताल पैर बखान कवि, सब लोक अन्दर नाभिका॥
शुभ शान्ति वृति वह सोम है, मस्तक सदा सु विराजई।
शीतल सुहावन चन्द्र है, आनन्द मन को देवई॥२८॥
शम दम सु मनुज कपाल है, सूता लगा उपरान्तिका।
फेरे सो बाँधे ग्रीव में, मरदन करे मन भ्रान्तिका॥
तिरशूल उसका ज्ञान है, मन है जलन्धर मारता।
धर्मेश रक्षक आप हैं, हत धर्म दानव भञ्जता॥२९॥
वाहन सतोगुण बैल है, नीवृत्ति का मारग सदा।
चारू तितिक्षा भांग है, सेवन करे जो सर्वदा॥
उपदेश द्वारा मुक्ति का, डमरू कहा सो जानिए।
बाजे सकल संसार में, गरहण कोइ इक मानिए॥३०॥
मौली शिखर सुरसरि बसे, सो आतमा का ज्ञान है।
भागीरथी सुविवेक वर, जिसके लिये अतुरान है॥
राजा सगर जिव जानिये, परधान जिसका पुत्र हैं।
चंचल विचल निश्चल नहीं, मानो सदा सो धूर्त हैं॥३१॥
जनमत मरत बहु कल्पगा, तिरजग योनि महँ भटकहीं।
कबहूँ असुर सुर लोक में, कबहूँ मनुज तन पावहीं॥

करते शुभाशुभ कर्म को, जिस हेतु सुख दुख भोगहीं।
सुस्थिर नहीं निज ज्ञान बिनु, बहु शोक मोह सतावहीं ॥३२॥
यह शान्ति करने के लिये, हयमेध मख आरम्भ भय।
मन है तुरंग सु बीरवर, छोड़े परीक्षा लेन जय ॥
पुनि वित्र शत्रु विवेक ने, पकड़े सु बाजी धाय के।
बाँधे जहाँ वैराग्य मुनि, पीछे कपिल के जाय के ॥३३॥
सब प्रकृति ने धावा किया, मन राज हय को हेरने।
पहुँचे सकल तहँ जाइ के, हय बाँधिया सुर राज ने ॥
उर माँझ लोक नगेन्द्र का, वैराग्य मुनि बैठे जहाँ।
गुप चुप सकल तेहि देखि के, भागा कहा भय से यहाँ ॥३४॥
धारे सुसाधू वेष है, पाखण्ड की मूरति महा।
तस्कर निपुण यह धारिया, मारा सभी लाते कहा ॥
अस कहि चरण परहार भा, वक ध्यान में डूबा अहा।
बाँधे तुरंग छिपाइ के, लज्जा नहीं इस को कहा ॥३५॥
उस प्रकृति के परहार से, वैराग्य मुनि विस्मित हुए।
खोले भयंकर नयन तब, प्रकृति को देखत भए ॥
शुभ अग्नि प्रकटित नयन से, दावाग्नि जिमि कानन लगे।
तैसे भसम सब जन हुये, वैराग जिसके उर जगे ॥३६॥
मद मान छल पछपात हूँ, पुनि राग द्वेष विकार जे।
किरसानु जिमि दारू दहे, तिमि होत सब संघार जे ॥
संतोष तब उत्पन हुआ, सब मोद की खानी अहा।
जिसके बिना निर्धन जगत, मुनि संत निगमागम कहा ॥३७॥

कर जोरि के जिव जनक से, आज्ञा लिया मन धरन को।
चलता हुआ पहुँचा वहाँ, बैठे जहाँ मुनि ध्यान को॥
हय देखि के अति मुदितमन, वन्दन किया बहुभाँति से।
महराज यह अज्ञान सब, मारा तुम्हें जो लात से॥३८॥
करिये कृपा जन जानि के, आये शरण तेरे प्रभो।
क्षमिये सभी अपराध को, मैं बाल हूँ तेरा विभो॥
विनती सुनी जब तोष की, वैराग्य मुनिवर देव जी।
होगा सतत कल्याण तव, हय लेहु तुम घर जाव जी॥३९॥
सोसहित विधि करि डण्डवत, मन पकड़ि के सुस्थिर किये।
आये जहाँ जिवराज हैं, जागृति अवस्था जानिए॥
हय मेख मख पूरण हुआ, जी पर दया औरो नहीं।
ऐसी विरति जब जीव की, सुविवेक प्रकटत है कहीं॥४०॥
नहिं तब भ्रमे संसार में, तम अज्ञ में बासा भया।
आना सो जाना गर्भ में, जिस कारणे जग निर्मया॥
मंजुल मनोहर नाम है, सुविवेक सो भागीरथी।
संसार नर हित कारणे, जो ज्ञान-मग के भय पथी॥४१॥
यह विश्व राजा सगर है, जिव जानिए सब पुत्र को।
बहु जन्म तक भक्ती किए, चाहे सकल जन मुक्त को॥
वैराग तब मन उदित अति, मन शान्ति इन्द्रिय गण भये।
संसार के सारे विषय वैराग, अग्निहिं ज़र गये॥४२॥
तब मुक्ति की इच्छा हुई, भव पार होने के लिये।
सो ज्ञान बिनु होवे नहीं, सुविचार ने सोचा हिये॥

ब्रह्माण्ड में शिव आतमा, जो ज्ञान का नायक अहा।
पहुँचे वहाँ भागीरथी, निज प्रश्न को नत हो कहा ॥४३॥
महराज मुझको ज्ञान दें, जग जीव तरने के लिये।
बहु कर्म को मैं कर चुका, नहिं शान्ति कछु आई हिये॥
जप तप नियम आचार सब, करि तीर्थ सब भरमत फिरा।
पुनि वेद शास्त्र पुरान सब, औरो पढ़ा मुनि के गिरा ॥४४॥
बाहर सकल ढूढ़त फिरूं, नहिं ज्ञान का कहुँ दर्श है।
संत्रस्त निति व्याकुल भया, तो भी न शान्ती पर्श है॥
बैठा रहा एकान्त में, इक संत से दर्शन हुआ।
जाना सकल मम बात को, बोले तुँ मिथ्या क्यों मुआ ॥४५॥
जावो वहाँ मौली शिखर, शिव आतमा रहता जहाँ।
देगा वही निज ज्ञान को, मुनि वृन्द पुंगव वद तहाँ॥
शुभ शान्ति संत के वचन से, आये तुम्हारे पास हो।
करिये कृपा इस दीन पर, जग नाथ तुँ भवनाश हो ॥४६॥
जाना इसे अधिकारियों में, ज्ञान देना चाहिये।
सच्ची परीक्षा तासु की, बहु बार कीन्हा दुख दिये॥
पुनि पुनि किया बन्दन बहुत, निज भक्ति में सुस्थिर रहा।
बहु विघ्न भी शिर ऊपरे, शीतोष्ण को बहुते सहा ॥४७॥
कर जोरि के आगे खड़ा, गुरुदेव का पिघला हिया।
सुनि के विनय मेधा पती, निर्वाण हितु सुरसरि दिया॥
संसार में सुप्रचार भा, वह ज्ञान सुरसरि को कहा।
आकृत पुरुष परिपूत हो, निज ज्ञान को सहजे लहा ॥४८॥

गंगा जलधि हैं संत जन, वैराग्य का बासा जहाँ।
सतसंग कर मन लाइके, निज रूप को मिलना तहाँ॥
महिमा महा गुरु राम की, मुझसे नहीं भणते बने।
वे सेतु हैं भव सिन्धु में, चढ़ि के गये बहुते जने॥४६॥
बन्दौं गुरु सर्वांग को, भव जलधि में नौका वही।
करि पार शो जग जीव को, सत[1]लोक में बासा सही॥
आता नहीं संसार में, पाता नहीं रुज को कभी।
सुस्थिर अचल सम्यग् भया, इक रूप में दीखे सभी॥५०॥
गुरुदेव की महिमा महा, जैसे जलधि संसार में।
सुख रूप भूप अनूप हैं, गुन ग्राम है हरि सार में॥
करुणा भवन मरदन मयन, सब दोष आरत के हरे।
गुरुदेव दीन दयालु हैं, माया अविद्या से परे॥५१॥
निश्चेष्ट अकल अभेद हैं, नहिं खेद है भगवन्त को।
वह आप सिद्ध प्रकाशमय, पावै न कोई अन्त को॥
गत नाश अज सर्वेश हरि, रक्षा करे सब सन्त की।
मुनि शेष शारद विज्ञ जन, विनती करहिं उस कन्त की॥५२॥

अर्ध भुजंगप्रयात छन्दः—

गुरुजी कबीरे हरो काल भीरे,
पुकारूँ अधीरे जगत् सिन्धु तीरे।
विनै ए हमारी सुनो दोष हारी,
सदा ज्ञान ज्ञाता तुम्हीं तात माता॥१॥

---

१. यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

विलोकूँ न दूजा करूँ जाहि पूजा,
तुम्हीं एक रामा सदा सौख्य धामा।
प्रभूजी महाना विलोकूँ सुनामा,
करौं मैं सुमैत्री सुजन मन पवित्री ॥२॥
तुँ भक्ती प्रदाता नमो तोहि ताता,
सदा भक्त घेरे सभी पाद चेरे।
महामोह नाशो रवी ज्यों प्रकाशो,
विशोकं निराला सभी लोकपाला ॥३॥
सुधारे विचारी महा ज्ञान धारी,
दयानाथ कीजै अभै ज्ञान दीजै।
कबीरे कृपाला हरो मोह जाला,
करो पाद बन्दन सभी दोष खण्डन ॥४॥

सोरठा

गावहिं वेद पुरान, ऐसो लक्षण राम का,
दीनबन्धु भगवान, भव भेषज सो जानिये ॥१॥
करहु सदा कल्यान, शुद्ध बुद्धि मम कीजिये,
आगे करूँ बखान, बन्दन महिमा ज्ञान कछु ॥२॥
छन्द अनेक ललाम, मनकी रुचि ऐसी भई,
दया करुहु गुरुराम, विघ्न कोई नहिं आवई ॥३॥

द्वितीय अध्याय

तृतीय मंगलाचरण

मात्रिक द्रुतविलंबित छन्द :—

वन्दौं सदा तव नाम को, गुरुदेव परम ललाम को।
मम दीन की रच्छा करो, नहिं दोष हिरदय में धरो ॥१॥
मैं बुद्धि बल से हीन हूँ, इस हेतु बनता दीन हूँ।
नहिं ज्ञान ध्यान विचार है, मूरख महा सो गँवार है ॥२॥
नहिं जानता हूँ काव्यहूँ, बुधवर्य नहिं सम्भाव्यहूँ।
क्योंकी पढ़ा गुरुकुल नहीं, नहिं कवित कवि सिखना कहीं ॥३॥
उस अन्ध की सी है दशा, गत पंथ की ज्यों दुरदशा।
तेहि देखि के बहु हँसत हैं, मूरख महा सो कहत हैं ॥४॥
किन्तू मुरारी देखता, सहसा वहाँ पर आवता।
यह बात मेरी जानिए, सु कबीर करुणा मानिए ॥५॥
सो हास्य करना भूल है, वह मूर्खता का मूल है।
दृष्टान्त एक सु मानिये, टेढ़ी निम्नगा जानिए ॥६॥
ता सलिल में क्या दोष है, चहुँ सृष्टि का वह पोष है।
सीधा सुरम्य सुरूप है, अति दर्शनीय अनूप है ।७॥

परमार्थ गत वह जानिए, अनुमान मेरा मानिए।
नहिं शुद्ध हम भी मानते, उपकार कितना नदिनते॥८॥
यहि भाँति मेरा छन्द है, अवलोकने में मन्द है।
बहु ऊँच खाल बसुन्धरा, नाना रतन जिसमें भरा॥९॥
देखत अशुद्ध सो लागई, चहुँ खानि को वह पालई।
नहिं उऋण है जग तासु से, सब धरम है जग जासु से॥१०॥
यहि भाँति मेरा पद अहा, गत नियम से जो मैं कहा।
फिर भी जगद्गुरु वन्दना, जो सकल बन्धन मोचना॥११॥
जैसे त्रिया नहिं पावनी, शुकदेव से हो पावनी।
सज्जन सकल सु सराहते, वे सुगुण को निति गावते॥१२॥
बहु प्रेम से हिरदय धरें, बालक वचन स्रवण करें।
इसमें गुरू का ज्ञान है, मेरा सदा कल्यान है॥१३॥
मन शुद्ध से मैं गावता, आनन्द अतिसय पावता।
हानी नहीं रञ्चक अहा, श्री रामपद मैंने गहा॥१४॥
मोदक अहा गो घृत का, सेवन करे नहिं मृतका।
अनिवार्य है सबके लिये, नहिं हानि कारक है जिये॥१५॥
वह खाइये अति प्रेम से, घातक नहीं हो नेम से।
भाजन सरल या वक्र हो, है शुद्ध नहिं तहँ तर्क हो॥१६॥
परदेशियन का खाइये, यम-घात से न बचाइये।
भाजन बड़ा सुन्दर लगे, बहु रोग बाँधे जो भगे॥१७॥
यहि भाँति दोष अनन्त है, मुनि संत वेद भनन्त है।
देखत सुनत सुन्दर महा, वह जीव का घातक अहा॥१८॥

वेश्या सजावे रूपको, मोहे बड़े वड़ भूप को।
होती नरक की गामिनी, वेश्या स्वरूपी भामिनी ॥१६॥
निन्दा सभी संसार में, दुख रूप सत्य विचार में।
मैली कुचैली लागती, दुख माँहिं दिवस वितावती ॥२०॥
उसको कहत पतिबर्त है, पति प्रेम अविचल चरत है।
नत शीश सब संसार है, सनमान अति उपकार है ॥२१॥
यह तोतरी मम बात है, सुनि मात पितुहिं सोहात है।
माता-पिता सब सन्तजन, करि वन्दना करता भजन ॥२२॥
दोहा—बाल गिरा शरवण करो, राखो मन अति मोद।
गान करूँ हरि नाम का, बैठि राम की गोद ॥ १ ॥

जयकरी छन्द :—

मुक्ति स्वरूप सदा हरि जान, काम न क्रोध न लोभ न मान।
भूत भविष्य पुनः व्रतमान, एक समान रहे सो ज्ञान ॥१॥
परम उदार नहीं जंगजाल, संकट मोचत जन कंगाल।
अधिष्ठान का कहता ज्ञान, ध्यान धरे ऋषि मुनिवर मान ॥२॥
अन्तर सर्वं विराजन हार, देव अनन्त भने करतार।
पृथक् पृथक् सब कहे विचार, महा कुटस्थ रहा निरधार ॥३॥

हरिगीतिका छन्द :—

निरधार सो आधार नहिं सबसे परे निज रूप है।
चेतन परे माया सदा सुषमा स्वरूप अनूप है॥
सब देव देवन का गुरू मानो अखंड सु भूप है।
व्यापक प्रभू सब देश में निश्चय करो नभ रूप है ॥१॥

दोहा–धूप छाँह से रहित है, नारायण सुख रूप।
संतत कीजै ध्यान वही, सब भूपन के भूप ॥१॥

पद्धरि छन्द :—

तोय गले न समीरण शोषण, कृसानु दहे नहिं काल न ग्रासन ॥१॥
सायक आदि नहीं सो नाशन, वज्र समान कहा अत्रासन ॥२॥
रूप अरूप कहो कछु नाहिं, एक समान सबन के माँहिं ॥३॥
हार न जीत करे भगवान, पूरण ब्रह्म सुजान महान ॥४॥
नहिं अति निकट नहीं है दूर, नहिं अति सरल वक्र नहिं पूर॥५॥

पद्मभूषण छन्द:—

हेरे मिले नहिं भ्रान्ति कहीं है, देखो सभी घट माहिं वही है।
पारख दृष्टि रहे जिनकी सो, बूझि परे सु प्रमाण यही सो ॥१॥
कीट पतंग प्रभृत्ति समान, एक स्वरूप विलोक महान।
राग न द्वेष रहे निर्दोष, शत्रु न मित्र न का पर रोष ॥२॥

हरिगीतिका छन्द:—

रोष किस पर कीजिये नहिं शत्रु विश्व महान में।
देखो सदा सु विचारि के आवे सभी इक ध्यान में ॥
साक्षी अकल सर्वत्र है मानो विभू नभ रूप में।
निर्गुण निरञ्जन नाम है गुरुज्ञान पंथ सुरूप में ॥१॥

सोरठा

उपमा रहित स्वरूप, कहे वेद मुनिवर ऋषि।
पुनि पुनि संत निरूप, रहित वासना पाव सो ॥१॥

जयकरी छन्द:—

अगम अगोचर आवत नाहिं, शेष सहस मुख वरनत ताहिं ।
अज्ञ अतीत निर्वाण स्वरूप, ज्ञानी लहे परम बुध भूप ॥१॥
शान्ति निरंतर हो सो पाव, मूरख पापी जन्म गँवाव ।
द्वन्द्व न फन्द वही को होय, माया मोह गया मन जोय ॥२॥
तुष्ट रहे सु अमीरस चाखत, विषया गरल पास नहिं राखत ।
पुरुष सुध्यान करे शुभ ठाम, अनुभव गम्य कहे मुनिमान ॥३॥
सोवे न जागे असम्भव होय, व्याकुल तन काया नहिं धोय ।
डोले न बोले चले नहिं धाव, उन्मुनि रहनी गुरुजन गाव ॥४॥
महा अकाश वहीं चित लाग, सुस्थिर ज्ञान वासना भाग ।
नाम न रूप निरञ्जन देव, श्रुति पुराण कहे कर सेव ॥५॥
मोद स्वरूप सु ब्रह्म अभेद, माया मोह न ताको खेद ।
वेद कहे वह परम अतीत, सुधा स्वरूपी मन परतीत ॥६॥
सर्वं प्रकाश दिवाकर तेज, आकर अन्धकार नहिं सेज ।
महा देव प्रभु भजिये सोय, जो चाहो मन में सो होय ॥७॥
ब्रह्मा विष्णु महेश धनेश, नारद शारद सिद्ध गणेश ।
सुर सुरेश यम शेष जलेश, सर्व ईश गुरुदेव परेश ॥८॥
विश्वस्वरूप अद्वैत जान, करो ध्यान सब पाप नसान ।
वन्दौं चरण हरण भव खेद, रक्षक दीन बतावे वेद ॥९॥

गंगेय छन्द :—

पुरुष प्रकृति नहीं वह राम ।
अकल अनीह वेद का धाम ॥ १ ॥

राजा छन्द मुक्तक :—

कर्ण हीन नेत्र हीन देखे भूरि सुने राम,
रसना न घ्राण महानाद श्वाँस आँधी नाम।
त्वचा नास्ति मांस हीन करे सु स्पर्श सर्व,
ऐसी बात बूझि के विचार आप कछु कर्व ॥१॥
पाद नाहीं गात माहीं धावत सहस्र कोश,
मारुत प्रमाण नाहीं औरो नाहीं कोई जोष।
पाणिहुँते हीन प्रभु शैल सर्व तौले आप,
ताहि को कहत मुनि हरे सर्व जीव पाप ॥२॥

सुमेरु छन्द :—

वाकहुँते हीन बड़ा ज्ञान वक्ता,
मानो सदाहिं जगद्गुरु मुक्ता।
उपस्थहुँ नहीं सो विषय रस भोगी,
तासो रहित सो पुनः ज्ञान योगी ॥१॥

जयकरी छन्द :—

दश गोमें कोइ गो नहिं जान, ऐसो रूप रहित भगवान ॥१॥
रूप से हीन रूप की राशि, कोटिमदन शत सम नहि भाखि ॥२॥
आनन्द हीन पियूष समान, सत् चित् आनन्द सो भगवान ॥३॥
ऐसो देव कबीर कृपालु, साँच गुरु सत नाम सुवाल ॥४॥
भवनिधि सेतु कहे हम जान, ताहि भजे दुख कोटि परान ॥५॥
दोहा—सब को जानत आप प्रभु, तोहि न जानन हार।
भाँति बहुत हम सोचिया, गो गोचर से पार ॥ १ ॥

सवैया छन्द :—

पोचन दूरि किया जग जीवक , नाम प्रभू कर पास बतायो ।
आतम एक अखण्ड अनादि , सु आपन रूप अपार दिखायो ॥
एक समान सभी घट देखत , धूपन छाँह सु भिन्न रहायो ।
सत्य स्वरूप निरञ्जन भाषत, ताहि कि ज्योति म ज्योति समायो ॥१॥

आव न जाव मरे नहिं जीवन, काल कराल से होत नियारा ।
राम प्रसाद दया गुरुदेव कि , पार भयो भव सागर धारा ॥
भासत एक अनेक रहे तब , द्वन्द्व कि बात जु कष्ट अपारा ।
ढूँढ़त देश विदेशन धावत , तीरथ मूरति में जल ढारा ॥२॥

पावत नाहिं कहूँ जगदीश्वर , दौरत दौरत जन्म सिराना ।
पूजन पाठ किया बहुते विधि, शान्ति नहीं सपनेहुँ न ज्ञाना ॥
जैस कुरंग फिरे दिग चारिहुँ, अन्दर वस्तु रही नहिं जाना ।
तैसहिं जन्म अनेक गयो मम, मोद नहीं बिनु राम सुजाना॥३॥

कीन्ह दया गुरुदेव कबीर सु, भीतर आप सुवस्तु समाना ।
जाकहँ मानि रहे अवरो पुनि , आपहिं आप भयो मनमाना॥
सत्य असत्य करे निरनै मन , अन्तर माहिं मिलैं भगवाना ।
चेतन रूप अनूप अनामय , राम रमा घट माहिं भवाना ॥४॥

अल्ला न ईस नहीं चतुरानन, अञ्जन देवन नाहिं ठिकाना ।
सिद्ध स्वतः सबहीं सुप्रकाशक, देव अदेव न भेद बखाना ॥
शान्तनिराश्रय मोदमयी वह, ओमहुँ गाडक आदि सु जाना ।
काह कहूँ कछु बोल न आवत, मौन रहूँ कि करूँ गुण गाना ॥५॥

तोमर छन्द :—

ज्योति है महान रूप, जाने कोई सन्त भूप।
असत्य नहीं सत्य है, अनेक संत मत्य है ॥१॥

मथान छन्द :—

जेते सर्व प्राणी, तेते सर्वज्ञ जानी।
भने विधि वेद, भजे सु अखेद ॥ १ ॥

दोहा—सागर बीच अनेक विधि, उदक एक का एक।
तिमि जिव ईश न भेद कछु, यहि विधि करे विवेक ॥१॥
यहि विधि से जो रहित हैं, मनहि चाहना और।
चेला गुरु दोनों कपटी, मिले यमालय ठौर ॥२॥

सार छन्द :—

कितने जाते हैं शरणों में स्वारथ हेतु मुड़ाते हैं।
ऊपर भक्ति बहुत दिखलावें अन्दर आश लगाते हैं॥
कब मिलिहैं वह माल खजाना जिसको गुरू कमाते हैं।
कछुक दिवस जब बीत जात हैं मनही मन पछताते हैं॥ १ ॥
पाप नरक की शंका नाहीं निति उठि निन्दा करते हैं।
लोभी गुरू त्याग नहिं इनको मृत्यु नहीं यह जीते हैं॥
नाना वचन दोषयुत भाषें भाव भक्ति नहिं करते हैं।
आशा गीध काग की जैसी इधर उधर मडराते हैं॥ २ ॥
स्वारथ होत नहीं जब देखें गुरु को गरल खिलाते हैं।
उस शठ की हो कौन गती अब ऐसो पाप कमाते हैं॥

जैसे बग वायस सचान सब जठर भये दुख पाते हैं।
उभय लोक से हाथ नशावें महा नरक में जाते हैं ॥ ३ ॥
जब लग चन्द्र विभाष रहेंगे भरमि भरमि पछताते हैं।
जेते नरक परेंगे उसमें कष्ट अनेक सों पाते हैं ॥
गुरु-हत्या का दोष बड़ा है सन्त मुनीश्वर गाते हैं।
विदित सभी को है जगमाँहीं याते नहीं बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥
इससे बुद्धिमान सज्जन जो सो पहिले करि लेहिं विचार।
स्वारथ की इच्छा नहिं मन में सो लेवें निश्चय मन धार ॥
अतिसय इच्छा होय मुक्ति की सो तो जाहिं गुरू के द्वार।
छल प्रपंच कपट नहिं राखें मन में श्रद्धा करहिं अपार ॥ ५ ॥
नहिं तो भला गिरस्तन माँहीं क्योंकी कष्ट होत बहु भाइ।
निज अनुभव मैं कर के देखा सेवा सन्त गुरू कठिनाइ ॥
होय परीक्षा जब गुरुअन की जियरा तहाँ बहुत घबड़ाइ।
जो कोई हो बीर बाँकुरा सो तो गुरू-शरण में जाइ ॥ ६ ॥
रहनि गहनि की होय परीक्षा मन दृढ़ राखे करे सुप्रेम।
गुरू-आज्ञा को कबहुँ न टारे चरण सेव नित राखे नेम ॥
यहि विधि प्रिति करे गुरुवर से दैहिक किरिया करे बनाय।
पूछे कथा तत्व की नितहीं विनती करे चरण शिरनाय ॥ ७ ॥

सोरठा

जिनको सोच न पोच, सन्त सोई सर्वज्ञ हैं।
जन का बन्धन मोच, जेते जीव सु लोक में ॥१॥

कवित्त :—

जेते जीव जग माँहीं सम भाव देखे आप,
सोई गुरु सन्त का अनादि भेष मानिये।
भ्रम भेद खेद नाहिं जग में मराल जिमि,
सोई ब्रह्म प्राप्ति कहँ लक्षण बखानिये॥
दम्भ दोष रोष नाहिं राम को भजन निति,
वाहि के शरण जाय आतमा पिछानिये।
ठग चोर वृत्ति बक काम क्रोध जासु माँहिं,
भाग भाग वाके साथ तुरत सु त्यागिये॥१॥

सवैया :—

काक समान सदा मन की वृति चंचल है अतिसै मतिमन्दा।
पावन शून्य विषै नित ढूँढ़त ताहिसु मानि रहे जु अनन्दा॥
तुष्ट नहीं क्षणहीं क्षण दौरत जैस कुरंग सदा भ्रम फंदा।
लोकसु हेत चपेट बड़ा अति भोगत रोग महा जन गंदा॥१॥
मात पिता सुत बांधव नारि जु ताहिसु नेह कियो दिन राती।
ए सब हैं निज स्वारथ के हितु झूठहिं आइ फँसे किस भाँती॥
अन्त सभी नहिं काम करे कछु हाथ पसारि चले कुलघाती।
जो घर सम्पति अर्थ धनालय कौड़िहुँ एक न होत सँघाती॥२॥
क्योंकर दर्प कियो नर देह सु आजहिं काल में प्राण तजोगे।
जाइ पड़े चवरासिहिं खानिहिं नीचहिं नीच में बास करोगे॥
प्रेतक योनि मिले तुम को शठ राच्छस वृत्ति सदाहिं रहोगे।
ए जग देखु सदा सपना सम काल कराल क चोट सहोगे॥३॥

डोलन बोलन की नहिं बुद्धि विवेक विचार लगे नहिं अंगे।
राम भजा नहिं काम तजा शठ झूठन संग किया मति भंगे ॥
जावत स्वारथ पावत इन्द्रिन तावत भूलि गयो इन संगे।
जो तुम कर्म कियो जग माहिसु भारि सु संकट नित्य भुजंगे ॥४॥
ईश भजे न करे सत संगति नाहिं मिले तब ज्ञान अनंदा।
जापऽरु यज्ञ करे नर कोटिन शुद्धि नहीं अति मानस गंदा ॥
हेतु यही गुरु के पद को भज होत पवित्र सदाहिं अफंदा।
जो परमारथ भाषत साधहु ताहि करे सब दोष निकंदा ॥५॥
सो भव रोगक भेषज भूरि सुदूर करे तम मोह अपारा।
ते प्रभु की शरणागत होकर मारग सत्य सदा सुखकारा ॥
मात पिता गुरु इष्ट महा धन सेवन सत्य करो व्यवहारा।
नाथ निरञ्जन भंजहिं सो सब जो जग माँहिं सभी दुख धारा ॥६॥
बारम्‌ बार पुकार करूँ नित चेत करो नर जीव सुजाना।
दौरत कल्प अनेक फिरे तुम राम बिना यम हाथ विकाना ॥
पोलक आश करे नर मूरख मुक्ति नहीं तहँ देश बिराना।
डोलत डोलत थाकि परे नर शून्यहिं शून्य धरे जु धियाना ॥७॥
तत्त्वहिं त्यागि अतत्त्वहिं धावत व्योम प्रसून लगावत आशा।
भ्रूकुटि मध्य सुमानत ईश्वर सन्तन को यह है परिहासा ॥
भेद उपासक मोक्ष निरूपत लोक विशेष सुजीवन बासा।
मानव जन्म बड़ा जग दुर्लभ झूठ प्रपंच सुप्राण विनासा ॥८॥

दोहा—रतन गमायो मूढ़ने, ऐसो सुलभ सुवार।
भवसागर मँह डूबते, भोगत विषय विकार ॥१॥

आवत जात सदा सो , स्वर्ग नरक के माँहि ।
सद्गुरु बिनु भरमहि नर, अमिरित तजि विष खाँहि ॥२॥

जयकरी :—

विषय विकार गँवार के संग, राम बिना नर भयो कुरंग ।
पाप परायण दम्भ कियो बड़ , मान घमण्ड धरे नर तुमड़ ॥१॥
बारहिं बार मरे जन्मे जग , नित्य प्रयान कियो यम के मग ।
सूझि परे नहिं तोहिं कछू अब, यम धूरि दिये मुख काह करो तब ॥२॥

हरिगीतिका :—

संसार है यह कुञ्ज बन मारग कहीं नहिं दीखता ।
उलझा रहे सुलझे नहीं पाठीन सम कर मीसता ॥
उस मानवी की सी दशा बन मध्य के वह कूप में ।
चाखत विषय मधु जानि के नहिं ध्यान था यम रूप में ॥१॥
यहि भाँति मेरी जानिये मैं भी पड़ा बन गर्त में ।
सन्तुष्ट नहिं होता कभी आश्चर्यकारी मर्त में ॥
पागा विषय रस में सदा जागा नहीं हरि ध्यान में ।
दम्भी महा छल छद्म में पापी महा अज्ञान में ॥२॥
ताते न जाना धर्म को दूषित किया बहु काम हो ।
इससे सदा दुख पावता मिलता नहीं विश्राम हो ॥
जग पतित पावन आप हैं ऐसा सुना तव नाम हो ।
जो जायगा तव शरण में सो प्राप्त अविचल धाम हो ॥३॥
यह शब्द सुनि मैं कान में करि हैं गुरू कल्याण हो ।
दौड़ा सुना लिपसा लगी बिनती सुनो भगवान हो ॥

तन तप्त ज्वाला मेटिये दुख देत है अतिसय महा।
निज ज्ञान अमिरित छिड़किये तव शरण छाया सुख कहा ॥४॥

तोटक वृत्तम् :—

जन रञ्जन भञ्जन खेद कली, गुरु देव सुब्रह्म सदा सुबली।
मम प्रार्थन को सुनिये सुनिये, प्रभु आदि अनादि महा गुनिये॥१
सुप्रकाश विभाष प्रचण्ड महा, निशि रोग समं कलि दोष दहा।
विमलं शुभराज मराल समं, तजि मोह जलं पयज्ञान गहम् ॥२॥
जग जीवन मूरि महा सुखमै, गुरुदेव कबीर हरैं दुख भै।
भव रोग असाधि सुवैद्य महा, वह मर्दन गर्दन वीर अहा ॥३॥
सुविचार करे मन पाँच तजे, परमारथरूप हिया में भजे।
सु प्रयास विना भव से तरणं, जु निवास गुरू चरणं शरणम्॥४॥
इस हेतु सदा विनती सु करूँ, उर वास करो भव पार तरूँ।
मम सोच विमोचन काल हनो, सब कालन के तुम काल भनो ॥५॥
अवतार सदैव भजे जिसको, निगमागम आदि कहे तिसको।
विधि आदि पिपील स्वरूप अहा, वह आतम मोर अनूप महा॥६॥
विभु व्योम समान बखान मुनी, यहि बोध सदा हमने सु गुनी।
भव सिन्धु अपार गया तर सो, निज बोध हितं जपता जप सो ॥७॥
वह आप भजूँ सु नमो नितहीं, नहि काल कराल डरुँ यमहीं।
जब ज्ञान सुध्यान जगे मन में, नहिं मोह रहे भय हो तन में ॥८॥

हरिगीतिका :—

यह प्रथम पाठ समाप्त करि पुनि चलत आगे जानिये।
जो प्रेम से इस को पढ़े नहिं रोग दुख हो मानिये ॥

धन धाम सुख त्रयलोक का निश्चय मिले नर हो सदा ।
यह कामधेनू सुर विटप है जान भज ले तैं मुदा ॥१॥

दोहा—मनसा वाचा कर्मणा, अहनिश सुमिरे नाम ।
राम राम नित राम कह, राम राम कह राम ॥ १ ॥
आदि अन्त अरु मध्य में, धर्म विमुख नहिं देव ।
यही कृपा नित कोजिये, करूँ चरण तव सेव ॥ २ ॥

❀ इति श्रीगंगाशरण कृत प्रथम सोपान ❀

* द्वितीय अध्याय समाप्तः *



❀ श्री कबीराय नमः ❀

द्वितीय सोपान आरम्भ

तृतीय अध्याय

मुक्तक रूपकला छन्दः—

संत सदा अति सौम्य भूप ज्ञानिन जन ,
संतत रहे निमग्न फंद सब जीवन को हरै ।
गुणागार संसार असार भनि रमत सकल ,
के माँहिं मान अपमान कछु ना धरै ॥
बोलत बैन रसाल साल शंकाहनि ,
उपदेशत हरिनाम सदा देशाटन करै ।
परम उदार सार समदृष्टि यार पश्यन्ति ,
सर्व में एक ब्रह्म शुभ ज्ञान वरै ॥१॥

दोहा—यह लक्षण है संत का , वरणत गंगादास ।
और बहुत गुण जानिये , आगे करूँ प्रकाश ॥ १ ॥

मानसिक रोग वर्णन

जयकरी छन्द :—

लोभ मोह मद गहरा कूप , मार कोह भय ताकर रूप ।
तीनहुँ ताप जानिये शूल , मारे ताहि गुरू प्रतिकूल ॥१॥

राग द्वेष दुख देत अनन्त, भोगे कष्ट महा मनमन्त।
मोह नदी वैतरणी रूप, ताहि मध्य बोरे यम भूप ॥२॥
जेते योनि सभी में जाय, बार अनेकन भोगे भाय।
यातुधान के कर्म करोति, चंचल वृत्ति यथा मधु रौति ॥३॥
सत्यासत्य नहीं कछु ज्ञान, मूरख माया माँहि भुलान।
राक्षस कर्म सदा दुख देत, शान्ति नहीं नित रहे अचेत ॥४॥
यह जग सिन्धू अगम अपार, दुखहिं दुख नहिं दीशे सार।
मन मनुजाद सभी का ईश, जो चाहे सो करे बलीश ॥५॥
मनोज वासव अरि रणधीर, सिद्ध मुनीश्वर करे अधीर।
क्रोधी कुम्भकरण विकराल, महिपा वृति इमि मात व्याल ॥६॥
मोही कालनेमि का रूप, विरचित कुटिया विश्व अनूप।
अमित विवेक अछय अरि वीर, भूलि सजीवन ज्ञान गँभीर ॥७॥
लोभ महा मारीच समान, कुबुद्धि सीता मनहिं भुलान।
माया मृग पाछे मैं राम, ताते नष्ट भयो सब काम ॥८॥
कपट लोभ मारीच करंत, मति प्रेरित वैराग चलंत।
शुन्य गेह दैवी सम्पत्ति, महा घोर आई आपत्ति ॥९॥
गई सुबुद्धि लोभ के हेत, मन दशग्रीव महा दुख देत ॥१०॥

शंख नाड़ी छन्द :—

कुबुद्धी मलीने, सदा पाप लीने।
वही सूर्पणेखा, हुई जक्त लेखा ॥ १ ॥

कारण यही सो सीता हरण को।
ताते फिरूँ वन धोखा दियो मन ॥ २ ॥

मुक्तक शशिशेखर छन्द

तृष्णा कैकई विपिन-कारण हुई,
करोरों संकट जाते भयो।
भक्षण करे त्रयलोक नहिं अघात,
कभी ऐसी विकराल महान गायो ॥
दिनो दिन बढ़ी जात विपत्ति की,
निस्थिनी घटे न तृष्णा आयो।
गंगा परी पीछे व्याकुल भया,
ठौर नहिं पाय ताते शरण आयो ॥ १ ॥

मात्रिक-मुक्तक-द्रुतविलम्बित छन्द

जीव रक्षा कारणम्, गुरु आप विग्रह धारणम्।
मम शुद्ध मति अब कीजिये, सब दोष हरि हर लीजिये ॥१॥
बिनती सुनो इस दीन की, दोषी अधर्मी पीन की ॥
वर एक मुझको दीजिये, हरि वास हिरदय कीजिये ॥२॥
भव-भोग की नहिं कामना, धन धाम भुक्ति न चाहना।
परिवार भव का जो अहा, तव वास अन्दर भग रहा ॥३॥

मुक्तक संजीवनी छन्द

मती विहीन सो नरा, भजे न त्यागि क्यों वरा।
पशू समान सो नरा, भरे जो नित्य ऊदरा ॥१॥

मलीन दीन है सदा, अजान रूप सर्वदा।
अनेक जन्म से लगे, कुपाप ताप में पगे ॥२॥
भजा न राम देव को, किया न संत सेव को।
अहार मृत्यु का भयो, कृतान्त द्वार पै गयो ॥३॥
सु देत कष्ट हैं बहू, महान नर्क में रहू।
तु जागु-जागु रे नरा, भजो कबीर सत्वरा ॥४॥
जगत सदा असत्य है, मुरारि सेव सत्य है।
तु त्यागु मोह मत्सरा, विचार सार उर धरा ॥५॥
तु छोड़ सर्व तस्करी, न सेवना तु मस्करा।
कबीर धीर राम है, भजो सदा महान है ॥६॥

हरिगीतिका छन्द

भव फाँस कठिन कराल है यमराज घोटत है गला।
सुविवेक बुद्धि न रामरति किस भाँति अब होवे भला ॥
डरता अरक-सुत काल से मन में सदा दुश्चाहना।
सुरता लगी संसार में कामिनि कनक की भावना ॥१॥
कैसे तरूँ भवसिन्धु से धारा महा कु भयावनी।
नहिं नाव बेरा घाट पर नहिं पास में उतरावनी ॥
ताते पुकारूं राम को अब आइये घनश्याम हो।
आती अँधेरी रात है बीते सकल दिन-याम हो ॥२॥
जग-जीव की रच्छा करो यमजाल बन्धन तोड़िये।
यह दास गंगा की विनय निज चरण में मन जोड़िये ॥

व्याकुल यथा झष नीर बिनु तेहि भाँति नित्य उदास है।
गुरुदेव मोहिं न भूलिये केवल तुम्हारी आस है ॥३॥
सेवा करूँ गुरु राम की औरो नहीं कछु चाहिये।
कहता हुँ गुरूवर से सदा भव-सरित पार लँघाइये॥
चलता रहूँ फिरता रहूँ बैठा रहूँ भूला कहीं।
तव ध्यान में मैं नित रहूँ नहिं और मुझको कछु कहीं ॥४॥

दोहा—तोय कमल जिमि जगत मँह, यहि विधि मोको राख।
निशिदिन हिरदय में बस, सत्य सत्य प्रभु भाख ॥१॥

❀ इति श्रीगंगाशरण-कृत द्वितीय सोपान
तृतीय अध्याय समाप्तः ❀



❀ श्रीकबीराय नमः ❀

श्रीकबीर-आलोचना-खंड

तृतीय सोपान

चतुर्थ अध्याय

दोहा—निर्विकार निर्दोष प्रभु, सुस्थिर परम सुधीर।
ताको लिखेउ सदोष युत, बुद्ध महा नहिं धीर ॥१॥
कितने मुनि जन द्वेष बस, लिखेउ दोष की खान।
इमि संसारी जीव है, तैसे ताहि बखान ॥२॥
मन में भरम समाइया, लिखा जो ऐसा लेख।
नहि जाने नाहीं सुने, सत्य कहूँ नहि देख ॥३॥
अनुभवगम्य न ज्ञान कछु, नहिं हरि संतन-सेव।
शरधा नहिं विश्वास कहीं, पूजा पाठ न देव ॥४॥
ताते कियो अलोचना, तर्क-हीन मति-हीन।
सुनी सुनाई बात को, लिख के बने प्रवीन ॥५॥

सार छन्द

कितने जोलहा जाति लिखे हैं, औरस पुत्र बताते हैं।
कितने वृषली द्विज-वामा से, मिथ्या दोष लगाते हैं ॥
कितने योगी गोरख कुल के, निश्चय बोध कराते हैं।
कितने निश्चय कुछ भी नाहिं, जिसी किसी का गाते हैं ॥१॥

कितने गिरह आश्रमी कहते, किया विवाह जताते हैं।
लोई अरु रमजनिया साथे, दृढ़ सम्बन्ध बताते हैं॥
पुत्र कमाल कमाली पुत्री, ऐसा कहि समझाते हैं।
कितने कहते बिने सुपट को, सबको दान लुटाते हैं॥२॥
कितने कहते शेषतकी गुरु, ईश्वर एक दृढ़ाया है।
कितने कहते पढ़ा लिखा नहिं, झूठहिं लोग रिझाया है॥
वेद-शास्त्र कि निन्दा करिया, खिचड़ी भाषा गाया है।
कितने कहते चोरी करते, मुकों में पकड़ाया है॥३॥
कितने कहते शाह सिकन्दर, भय से मगहर जाया है।
यहि विधि दोष बहुत जन हिल मिल, निज निज ग्रन्थन गाया है॥
और बहुत से बात लिखे हैं, पढ़ि-पढ़ि मन दुख पाया है।
थोड़े में दर्शाया मैंने, मिथ्या जानि भुलाया है॥४॥

चौपाई

औरस पुत्र कौन सु प्रमाणा। जाति जुलाहा कैसे जाना॥
वृषली सुत पुनि कैसे कहते। नहिं प्रमाण यामे कछु रखते॥१॥
गोरख कुल तुम कैसे कहिये। सत्य प्रमाण नहीं यह रहिये॥
जैसे तैसे कैसे मानू। नहिं प्रमाण कछु आप बखानू॥२॥
पुनि गृहस्थ कैसे लिख मारा। लेख पुरान न और अधारा॥
पुनि रमजनिया लोई बाला। जिससे भयो कमालि कमाला॥३॥
बुने सुअम्बर कैसे मानू। किए तर्क नहिं यह ठहरानू॥
शेषतकी गुरु कैसे कहिये। ईश्वरवाद एक जो लहिये॥४॥

विद्या-हीन कौन विधि जाना। सर्व शास्त्र की बात बखाना ॥
निन्दा वेद कहाँ वे कीन्हा। कारण और कोई नहिं चीन्हा ॥५॥
जो उपरोक्त कहा सब ज्ञानी। नहीं प्रमाण लिखा मनमानी ॥
नहिं कछु लेख पुरातन भाई। सत्य बात हम तोहि बताई ॥६॥
सब अनुमान कल्पना जानो। झूठि बात सब साँच नमानो ॥
याते खण्डन सब कर लेखा। बहु प्रमाण खोजा नहिं देखा ॥७॥

हरिगीतिका छन्द

पढ़ि वेद सद्वृत हीन जो, सत् कर्म से पुनि रहित हैं।
सो वेद-दूषक मूढ़ जन, यह भाव गुरुवर कहित हैं ॥
खर लादि मलया भार को, शुभ गन्ध गुण नहिं जानई।
उसके लिये वह गरल सम, इमि निगम तिसको मानई ॥१॥

दोहा—काल कूट सम वेद भी, पढ़े चले नहि चाल।
सो संसारी जीव जग, तिन्ह कहँ वेद जवाल ॥१॥
आगे पुनि मम प्रश्न हैं, जो तस्कर की बात।
कहिये लेखक बुद्धिवर, ऐसा क्यों कह तात ॥२॥
देखा था या सुना था, या कोउ निजी प्रमाण।
सज्जन को लज्जा नहीं, ऐसा किया बखान ॥३॥
अब भी चोर अनन्त हैं, दस्यु कर्म दिन-रात।
मूरख भी नहि साधु कह, कितनहु नाहि बुझात ॥४॥
उनको तो बहु कहत हैं, कोटिन सन्त महान।
दरिया नाभा नानका, दादू कह भगवान ॥५॥

दास मलूक गरीब जी, और अनेकन सन्त।
परम पुरुष सब मानते, कहूँ सत्य नहिं दन्त ॥६॥
महावीर बलवान प्रभु, शक्ति समुन्दर रूप।
सो किमि डरेउ सिकन्दर, जो यह कहे कुरूप ॥७॥
बहुत परीक्षा तासुकी, किया अनेकन बार।
अन्त हारि चरणे परा, अस्तुति किया अपार ॥८॥
नानक स्वामी ने लिखा, पुनि गरीब मुनिदेव।
सत्य वचन यह मानिये, किया सिकन्दर सेव ॥९॥
कारण मगहर जो गये, सुनो कहूँ विरतान्त।
काशो मरे तो मुक्ति मिले, अपर द्वार कृतान्त ॥१०॥
ऐसा सुनि गुरुदेव ने, कहा झूठि यह बात।
ज्ञानी जन कतहूँ मरे, मुक्ति होय सुन तात ॥११॥
करन सिद्ध इस बात को, मगहर गये दयाल।
काशी मग कछु भेद नहिं, ज्ञानि न व्यापे काल ॥१२॥
पुनि जो कह्यो विवाह किया, ई सब झूठी बात।
अनुजा तनुजा नारि सब, औरो मानत मात ॥१३॥
देखत सबमें रूप निज, जहँ विलोक तहँ आप।
देहभान दूजा नहीं, ताहि लगावे पाप ॥१४॥
द्वैत बिना नहिं दोष हो, यह जाने मतिमान।
उसमें दूजा है नहीं, एक रूप भगवान ॥१५॥
जो अपने जैसा रहे, तैसे सबको जान।
चोर कहे सब चोर हैं, संत साधु सब मान ॥१६॥

शेषतकी गुरु है नहीं, तिसमें स्वयं प्रमान।
निज वाणी में भाषिया, रामानन्द सुजान ॥१७॥
इसमें तो संशय नहीं, झूठ कहे सो अन्ध।
मूरख हतमति मानिये, विषयी माया बन्ध ॥१८॥
राम नाम का पट बुने, ईश्वर एक अनन्त।
पालन करता जगत का, परम दयालू सन्त ॥१९॥
कितने गोरख वंश के, औ बृषली के पूत।
जैसे तैसे बहु भयो, सो भी बने सुपूत ॥२०॥
यदि ऐसाहि कवीर गुरु, तो यामें क्या दोष।
किये कर्म परशस्त सो, लहे अभय पद मोष ॥२१॥
श्रीविष्णु भगवान ने, रूप अशुद्ध धरन्त।
ताहि भजे सब लोक हैं, दीनवन्धु भगवन्त ॥२२॥
हीरा जो मल में पड़ा, मोल न ताहि घटन्त।
तैसे यह सब जानिये, जग में भयो बढ़न्त ॥२३॥
प्रभु तो ऐसो हैं नहीं, जैसे लोग बनाय।
द्वेषभाव से कहत नर, दोषबुद्धि सब गाय ॥२४॥
कारण यह सो जानिये, सत्य कहा गुरुराय।
पक्षपात नहि राखिया, जैसा जो तस गाय ॥२५॥
चोरन को जो चोर कहे, कहै ठगन को ठग्ग।
उस को रुचिकर ना लगे, भगे रहे नहि लग्ग ॥२६॥
जिसका मत खण्डन किया, देखा दोष अनंत।
सो मतवादी सकल मिली, लावहि संत कलंक ॥२७॥

चौपाई

सो जन महा पाप कर भागी । लावहिं दोष अनन्त अभागी ॥
परहिं नरक महँ कल्प अनेका । करहिं जो यामें रञ्चक टेका ॥१॥
दुख भोगहिं बहुतक अभिमानी । भये भूत नहिं पावहिं पानी ॥
मुक्त न होहिं कबहुँ सो जानो । करि अपवाद पाप लपटानो ॥२॥
जो गुरु निन्दक मूरख सोई । गिरिहिं रसना कोढ़ी होई ॥
जो दुखरूप सृष्टि बतलाया । सो कैसे ताको उपजाया ॥३॥
ई सब बात कबीर विरुद्धम् । कहहिं जुगुप्सक जाको शुद्धम् ॥
कलपि कलपि शठ जलपहिं बानी । रवरव नरक परहिं अभिमानी॥४॥
यह गाथा संक्षेप बखाना । निन्दा कियो जो लोगन नाना ॥
कारण होय बहुत विस्तारा । बाढ़े कथा न पावें पारा ॥५॥
आगे सत्य बात सुनि लीजै । सो विश्वास हिया में कीजे ॥
जिस प्रकार सब सन्त बखाना। उन प्रसाद मैं भी कछु जाना ॥६॥
सार अंश हम कहवे सोई । जाते कथा विशेष न होई ॥
गत विकार प्रभु दीन दयाला। सदा एकरस हत जंजाला ॥७॥

सवैया छन्द

बाल मुकुन्द यथा प्रकटे प्रभु, दीन-दयाल कबीर कहायो ।
कारण कारज हेतु गुरू मम , जाति सु तांतव के घर आयो ॥
सो परसंग कहौं हम आपसु, मोह महा भ्रम आदिक जायो ।
जीव उधारन तारन कारण, मुक्त स्वरूप सु संतन गायो ॥१॥
चौबिस तत्त्व पचीश प्रकृत्तिहुँ, पाँचहुँ कोश ते आप नियारा ।
इन्द्रिन देव चतुष्ठन के नहिं , झीनिहुँ पंच गुणत्रय पारा ॥

तीनअवस्थ चतुष्थ न विग्रह, देव कबीर सदा निरधारा।
सर्व प्रपंचन ते गत ईश्वर, जानहु इष्ट अहा सु हमारा ॥२॥
दोहा—सर्व रहित पुनि सहित सब, करत अकरता होय।
ज्ञान दृष्टि से मुष्ट महँ, इष्ट अलख मम सोय ॥१॥

—०—

श्रीसद्गुरु बन्दीछोर कबीर साहबका

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

चौपाई

वन्दौं सत्य कबीर कृपाला। चरण कमल धरि निज मैं भाला॥
शंकर नगर त्रिलोकी सुन्दर। पश्चिम दिशा सरोवर अन्दर॥१॥
वनज पुष्प पर नीमा पावा। दम्पति महामोद घर आवा॥
भया शोर जग हरि अवतारा। उदय भानु तम नाश अपारा॥२॥
भक्ति हेतु प्रभु दर्शन दीन्हा। जन्म सुफल दम्पति कर कीन्हा॥
वर्ष एकादश के जब भयेऊ। गुरू ढिग ज्ञान हेतु तब गयेऊ॥३॥
रामानन्द गुरु लियो विचारी। विश्व दोष पाखण्ड निवारी॥
आर्य यवन मत जेते जगमें। तजि स्वधर्म सब चले कुमगमें॥४॥
करि उपदेश सबन के हित का। चलहु सत्य पर डारहु भटका॥
पर उपकार हेतु धर देहा। लीला बहुत कीन्ह बुध नेहा॥५॥
हरि के पण्डा जरत उबारे। तत्त्वा जीवा भरम निवारे॥
भूप सिकन्दर अति डेरवाया। अन्त हारि चरणे शिर नाया॥६॥
शेषतकी बहुतक अभिमानी। हारे सकल दास पद मानी॥
विप्र-मण्डली अति दुखदाई। झूठ निमंत्रण सकल पठाई॥७॥

माया प्रेरि सकल सुख दीन्हा। असन बसन सब इच्छित लीन्हा॥
करि पद सेव सभी भो मुक्ता। नाम कबीर भजहिं अनुरक्ता॥८॥
जिमि प्रकाश भानू जग तैसो। अन्धकार भ्रम भञ्ज्यो वैसो॥
सकल विश्व महँ भव उजियारा। सत्य कबीर ज्ञान परचारा॥९॥
गोरख आदि सिद्ध जग जोई। हारे सभी नाम जप सोई॥
सेतु रूप भव माँहिं विराजे। दर्शन किये मोह भ्रम भाजे॥१०॥
जो जन चढ़े पार सो लागा। मोक्ष अभय पद निश्चय पागा॥
जनम मरण गत भयो सुप्रानी। बंदीछोर मिले जब ज्ञानी॥११॥
बहुत काल तक पर उपकारा। मोक्षहेतु बीजक उच्चारा॥
साखी ग्रन्थ बहुत से बानी। जीवहेतु गुरुदेव बखानी॥१२॥
है निष्पक्ष पक्ष नहिं कोई। सत्य ज्ञान कल्पित नहिं होई॥
सत्य धर्म संस्थापित कीन्हा। आये शरण अभय पद दीन्हा॥१३॥
शुभ स्थान कबीर कि चौरा। मात-पिता घर रह जिस ठौरा॥
सुरतिगोपाल तहाँ बैठाये। पथ के नेता ताहिं बनाये॥१४॥
सकल भार तेहिं ऊपर छोड़ा। जगते नाता आपन तोड़ा॥
चौदह सौ पचपन अवतारा। शंकर-पुरी कियो उजियारा॥१५॥
पन्द्रह सौ पचहत्तर सम्वत। अन्तर्धान भयो गुरु सम्मत॥
जनपद बस्ती मगहर ग्रामा। आमी नदी बहे सो ठामा॥१६॥
शुभ सम्वत् विक्रम में जानो। अंकित किया तिथी सो मानो॥
तहाँ गुप्त जिमि भयो तमारी। वहाँ की लीला विस्मयकारी॥१७॥
गुरु-चरित्र संक्षेप बखाना। महिमा भूरि बुद्धि नहिं जाना॥
पाठ करे नित नियम से जोई। संकट छुटे महा सुख होई॥१८॥

दया करहिं गुरुदेव कबीरम् । हरहिं कलह भव जाल शरीरम् ॥
देहिं बुद्धि वैराग्य सु ध्याना । सदा मोद घर सम्पति नाना ॥१६॥
राग द्वेष निरुआरे सब ते । करे सु कर्म रहे वपु जब ते ॥
भजे सदा हरि-नाम अनन्ता । मोह नदी तब होवे अन्ता ॥२०॥

❀ इति श्रीसद्‌गुरु कबीर साहब का जीवन-चरित्र समाप्त ❀

---

* श्री कबीर चालीसा *

दीन जानि अपनावनि हारा । करुणा-सिन्धु कबीर उदारा ॥
बन्दीछोर ज्ञानवर संता । हरहु काल भव-जाल तुरन्ता ॥१॥
दया स्वरूप विलंब न कीजै । विनती मोर आप सुनि लीजै ॥
प्रणत-पाल दीनन पर दाया । रक्षा करो बहुत दुख पाया ॥२॥
धर्मदास गुरु सुरतिगोपाला । कियो युगल को ज्ञान नृपाला ॥
श्री जागु भगवान गोस्वामी । किये विगत भ्रम चरण नमामी ॥३॥
युगल विप्र बन्धुन को तारे । सूखा वट हरियर करि डारे ॥
मान भंग राजा के कीन्हा । पुनि उपदेश ज्ञान तेहि दीन्हा ॥४॥
जगन्नाथ पुर जन दुख टारे । हरि का पण्डा जरत उबारे ॥
पादपद्म पर ढारे बारी । नाथ बुझायो अनल अपारी ॥५॥
जय-जयकार मचे तेहि धामा । देखि तुम्हारो यह बड़ कामा ॥
परम प्रसिद्ध सभी जग जानत । भक्तमाल में श्रीप्रिय भानत ॥६॥

यवनराज कसनी बड़ लीन्हा। तापर कोप न रक्षक कीन्हा ॥
डारि कृसानु देवसरि डारे। पुनः मत्त गज आनि प्रचारे ॥७॥
सिंह रूप तहँ आप विराजे। सिन्धुर देखि ताहि सो भाजे ॥
देखि प्रबल परताप तुम्हारा। डरा सिकन्दर जो परचारा ॥८॥
परा चरण प्रभु किया सनाथा। तव समान को है जग नाथा ॥
क्षमा कियो प्रभु सब अपराधा। परम दयाल हरत जन बाधा ॥९॥
लहर सरोवर आसन मारा। कमल-पुष्प वागी विस्तारा ॥
बालक रूप तमारि समाना। शमन किया सब द्वन्द्व महाना ॥१०॥
उभय पाद पुनि युगल सुपाणी। नयन उभय पंकज सहिदानी ॥
बदन प्रकाश भानु द्विजराजा। महामोह-तम निशि सब भाजा ॥११॥
मगहर आमी नदी बहाये। बिजली खाँव को तहाँ चेताये ॥
मुनिवर शाप कियो प्रभु भंगा। महा-वृष्टि कीन्हो गुरु गंगा ॥१२॥
रूप अनन्त दिखावनिहारे। ब्राह्मण गर्व दूर करि डारे ॥
हाहाकार मचा पुर भारी। परे चरण सब कहहिं मुरारी ॥१३॥
मिरतक जीवित किया कमाला। बहुरि कमाली भूमि निकाला ॥
नाम तुम्हार परम सुखदाई। भवहर्ता ऊँकार कहाई ॥१४॥
सकल विश्व का रक्षक धारक। विगत विकार सभी भवभारक ॥
पूरणहूँ का पूरण कहिये। ज्ञान अमर पद शरणे लहिये ॥१५॥
निरगुण निराकार अविनाशी। भक्त हेतु हरि प्रकटे काशी ॥
जो यह गावहिं चरित तुम्हारा। सो भवसागर पावहिं पारा ॥१६॥
आधि व्याधि कबहूँ नहिं होई। पाठ करे नित नियम से जोई ॥
नाम सुनत कांपे यमकाला। भूत पिशाच जले वैताला ॥१७॥

वैरी वैर करै नहिं कोई। कारज सिद्ध सकल तेहि होई ॥
राम नाम चालिस चौपाई। यम का फन्दा काटे भाई ॥१८॥
मिथ्या नहीं सत्य यह मानो। साखी गुरु कबीर की जानो ॥
कृपा करहु गुरु हरहु विकारा। पद सरोज मस्तक मैं धारा ॥१९॥
नाम तुम्हार नमामि नमामी। गुरुवर बसहु हृदय मम स्वामी ॥
सर्व पाप का आप दहन्ता। प्रभु रक्षक सन्तन अरु भक्ता ॥२०॥

दोहा—रक्षक साधू सन्त का, दीन-बन्धु कहलाय।
पद-सरोज की वन्दना, करूँ सदा शिरनाय ॥१॥
दीन जानि अपनाइये, हे कबीर भगवान।
बुद्धि विवेक न मोहि कछु, रहित योग-मख-ज्ञान ॥२॥

* इति श्रीकबीर चालीसा समाप्त *

श्रीसद्गुरु कबीर प्रशस्ति

कवित्त छन्द

जीव जग त्रास सब मोह भ्रम दूर कियो,
नाम सो कबीर गुरुदेव सुखराशी हैं।
नीरू के सुलाल बाल दीन के दयाल जानो,
कोटि काम रूप छविभानु से प्रकाशी हैं ॥
रामानन्द शिष्य भयो ज्ञान को विकास कियो,
भेद भाव दूर करि मृदु सत्य भाषी हैं।

गुण चारू सारु तेरो सकल कहत जन,
सोइ सुनि मेरो मन प्रभु तेरो वासी हैं॥ १॥
काशी में तो आये राम तव पंथ अहे जहाँ,
देखि संत-पुञ्ज को तो उपमा न आयो हैं।
कोई ज्ञानवान् ध्यान मगन रहत निति,
कोई बड़ पंडित सुजान मन भायो हैं॥
कोई पूजा पाठ करे कोई हरि गुण गावे,
कोई सन्त सेव में तो मन को लगायो हैं।
कोई कर्म शुभ करे इन्द्रिन को जीति लियो,
कोई गुरुदेव के तो सेव में समायो हैं॥ २॥
कोई साधना समाधि साधि मन से उदास रहे,
कोई कोई सुख लहे आतमा विचारि के।
कोई कोई दुई चारि मिलि के सतसंग करें,
कोई कोई फिरत जगत उपकारि के॥
यहि विधि काशीपुरी सुन्दर स्वरूप लागे,
जहाँ मेरो मन निति रमत हकारि के।
गुरुदेव देव जु कबीर राम आप हैं सु,
कैसे कहूँ शोभा तेरी नाथ मैं पुकारि के॥ ३॥
जग में प्रपंच बहु विरधि विकार लाग,
खात सब जीव को तो ठग मग लूटि के।
वेद वाक्य मानें नाहिं गुरु गिरा ज्ञान नाहिं,
धर्म आदि ज्ञानहूँ से भागे लोग टूटि के॥

सन्त सेव द्विज नाहिं देवन ते क्रुद्ध रहे,
करे उतपात नर ठग वग जूटि के।
कहीं जो हों सन्त गुरू ताकी निन्दा निति करें,
बाले अति वैन हूँ कुठार सम कूटि के॥ ४॥
यवनाक राज रहे करे नीच नीति शठ,
हिन्दु क देवालय तोड़ि ग्रन्थ को जलावहीं।
कहे मेरो धर्म मानो नाहीं तो कृपाण दंड,
तेरो धर्म झूठ सब मेरे में तु आवहीं॥
घर को जलावें शठ कपिला को बद्ध करें,
हिन्दुन की बहु अरु बहन चोरावहीं।
करत अधम-कर्म यहि विधि औरहूँ,
भारत के लोगन को क्रन्दन करावहीं॥ ५॥
हाय हाय करे सब दुख के समुद्र माँहीं,
धर्म रूपी पोत अब डूबे-डूबे भई है।
पंक तोय भरि गयो कोई न खेवार दीशे,
करत रुदन सब रुजतमी आई है॥
रहे जो सयान सब यहि विधि कहे नित,
जब जब भीर भयी धर्म-धारी धाई है।
आवो सब मिलि के पुकार करें ताहि को,
विना दीन बन्धु के न मेरो दुख जाई है॥ ६॥
बाल बृद्ध बनिता जवान मिलि सब कहें,
आँसु आँखि भरि भरि राम को सुनावहीं।

दीनबन्धु नाथ हे विलम्ब अब काहें कियो,
आवो आवो प्रभु अब देर न लगावहीं ॥
यहि विधि ध्वँनि गुंज भुतल व्योम माहीं,
भयो हड़कम्प अति दुख को सुनावहीं।
यवन नरेश कष्ट देत है अशेष नित,
बिन आप कौन मेरे प्राण को बचावहीं ॥ ७ ॥
आप के बनाये हुये पथ को नशावे शठ,
वेदहूँ अगम मत झूठ कहि गावहीं।
कहत कुरान मेरो खुदा ने बनाय भेजो,
भिस्त नाहिं बिना याको निति सो जतावहीं ॥
हिंसा को कहत करो मंदिर मसीद थापो,
ओम राम छोड़ि के तु अल्ला अललावहीं।
कहीं घरी घण्टा शंख पूजा में बजावे जब,
तहाँ जांय मारें काटें विघ्न को मचावहीं ॥८॥

दोहा—जबरन अशन खिलाय निज, कुक्कुट गो की मांस।
हिन्दु जाति से तुर्क करे, धर्म सुयश सब नाश ॥१॥

कवित्त छन्द

धन सब लूटि-लूटि भारत को हीन कियो,
जैसे भूसा अन्नहीन तैसे यह देश भयो।
जेते सुविज्ञान ग्रन्थ सब को जलाय दियो,
शिलपिन कर काटि द्रव्य सब लेई गयो ॥

जैसे बन आगि लागि विपिन भसम भयो,
बांची राख सार हीन जरि भूमि रहि गयो।
मानव सब पशु कियो बुद्धिहीन भयो सब,
विज्ञ वीर मारे गये दुख माहि सब भयो ॥९॥
ऐसो मेरो देश माहिं पाप करे निशदिन,
भोगत कलेश सब लेश नाहिं सुख को।
दीनबन्धु दयानिधि देखे जीव दुख भारी,
ताहि हेतु वपु धारे दूर किया दुख को॥
जैसे रवि उगि जग तम को विनाश कियो,
तैसे गुरुदेव की तो बात मानो मुख को।
महिमा अपार ताकी पार नाहीं पावे कोई,
आवे जो शरण में हरे सो सर्व दुख को ॥१०॥

ताटंक छन्द

नाम कबीर कृपाल भजो दिनरात सु आठहुँ यामा।
बन्दीछोर अहैं जग माहिं नहीं जाको सुत वामा॥
हैं विरक्त मति धीर विज्ञवर इष्ट सभी का जानो।
रोष न दोष कहूँ काहू से है सर्वज्ञ सु मानो ॥१॥
एक समान महान महा मुनि जीव चराचर वासी।
है कुटस्थ परकाश विभू सो ज्ञान अमर-पद राशी॥
सदा अनाश नाश नहिं होवे, चिदानन्द सुखरूपा।
देव कबीर अनामय स्वामी बन्दीछोर अनूपा ॥२॥

छेदन रहित दाह नहिं दाहे कहे वेद मुनि गीता ।
रक्षक धारक सकल विश्व का भेद भाव से रीता ॥
अपरम्पार नित्य पुरुषोत्तम है सबही से न्यारा ।
नाम अनाम दुनों से हीना निराकार निरधारा ॥३॥
भक्त हेतु अवतार धरातल सारशब्द परचारा ।
कोटि जीव जगमाहि दयाकरि आपहिं आय उधारा ॥
परदुख दुखी सुखी पर के सुख ऐसो लक्षण जाके ।
सो मम देव देव देवन का सदा शरण हम ताके ॥४॥

❀ इति श्रीगंगाशरण-कृत तृतीय सोपान
चतुर्थ अध्याय समाप्तः ❀



❀ श्रीकबीराय नमः ❀

चतुर्थ सोपान

(स्तोत्रावली)

पंचम अध्याय

सवैया छन्द

वन्दि गुरु-पद कञ्ज पराग सु जो सब देवन माँहिं अगारे ।
जासु गिरा हिरदै में धरे जन होत जनेश्वर वेद पुकारे ॥
भानु समान प्रकाश भयो जग तासु कृपा सु गयों भव पारे ।
ते गुरुदेव समान न आन सु तीनहुँ लोक तथा दश चारे ॥१॥
ताहिं प्रणाम अहे नित मोर जु पाद-सरोजन मस्तक धारे ।
आप समान किया जग जीवन कीटभिरिङ्गम नाद उचारे ॥
पारस हेम प्रमाण नहीं यह और नहीं जग में कछु सारे ।
ज्ञान विलक्षण शिक्षण दे वह लोक पुनः परलोक सुधारे ॥२॥
शान्ति प्रदान करे जन को वह आतम लीन सु आप अपारे ।
शारद शेष थके गुण गावत वेद पुराण न पावत पारे ॥
जाहि सु पाद सु सेवत राम सु बारमबार लिया अवतारा ।
ब्रह्म पुरारि सदा सब ध्यावत नाम गुरू जपि हो भव पारा ॥३॥
नारद आदि सदा शुक शारद जो मुनि सन्त सु ज्ञान विचारा ।
ते सब शोर किये जग माँहि सु देवन-देव गुरू करतारा ॥

शुभ अशुभ सदा शिखवहिं नित्य समाधि अखण्ड सुधारा।
दीन-सहायक नायक सो मम मानव रूप धरे वपु प्यारा ॥४॥
ताहि प्रणामकरूँ कर जोरि सु मातु पिता सम रोग निवारा।
मैं मति-मन्द अजान पशू जिमि ज्ञान सुधा तव कोश अपारा ॥
बोध प्रदान करे निरबोध सोधनन तत्त्व सभी सु प्रकारा।
काह कहूँ कुछ जानतहूँ नहिं नाथ दयामय पार उतारा ॥५॥
ना गुण ज्ञान न काव्य पढ़े कहुँ पिङ्गल भी नहिं मोर सहारा।
पाणिन के मत से हम वंचित वेद पुराण न काहु विचारा ॥
सन्त सभा नहि वास किया हम रामहुँ राम न राम पुकारा।
होहु सहाय क्षमो सब दोषन मैं प्रभु दास नमो बहु वारा ॥६॥

नाराच छन्द

सदा सुदेव आप हैं, अकाश रूप मानिये।
कला विहीन ज्ञान मैं, अनीह राम जानिये ॥१॥
लगो तु पास तासु के, विमोह भ्रान्ति त्यागिये।
अताप आप हैं विभू, कबीर-ध्यान आनिये ॥२॥
न जाइये कहीं कभी, समीप सत्य नाम है।
कहो-कहो लहो सदा, कबीर ज्ञान-धाम है ॥३॥
विहीन सर्व पास से, निरास हो प्रभू भजो।
न पाप ताप काल भी न, आप को लगे कभी ॥४॥

तोटक-वृत्तम्

जय तापविहीन अरोग रहे। मुनि ध्यान धरे दृग दोष दहे ॥
भव सागर से तरते नर ते। भजते तजते घर से परते ॥१॥

शुभ नाम कबीर कृपाल हरे। गुरुदेव सदा सबहीं सुपरे॥
निज आतम देव ककार कहे। ब बियापक सो भरपूर रहे॥२॥
सु प्रकाशक राम रकार परा। तिहुँ अक्षर केर सु अर्थ करा॥
तम लेश कलेश रहे न कहीं। सब शोक निवारक है नितहीं॥३॥
सब देश विदेश भजे वह सो। नहिं छाँह न धूप विभासक सो॥
पर शब्द स्वरूप अनूप अहे। मुनि वेद पुराण सुसन्त कहे॥४॥
मन गोचर ते परते वर ते। मति सार विचार नहीं करते॥
अज सत्य चिदात्म अखंडित ते। मति आगर सागर पंडित ते॥५॥
निरवाण स्वरूप अगाध अहे। मद मोहन द्रोह न कोह रहे॥
जन पालक घालक दुष्ट दले। मन सोच न पोच न मोह मले॥६॥
घृत ज्ञान सुचापहिं मान हरे। गुरुदेव कबीर कृपाल वरे॥
मुदमंगल कारक तारक हैं। भव दोष अमंगल हारक हैं॥७॥
अति धीर गंभीर दया उर में। सब जीव समान सदा मन में॥
नहिं दोष सरोष रहे कहुँ से। अज आदि पिपील सभी इकसे॥८॥
तुम देव सदा सरवज्ञ प्रभो। रवि कोटि प्रकाश अनादि विभो॥
परि मोह महान रहा न कदा। गुरुदेव कबीर कृपा शुभदा॥९॥
पुनि जानु सुधाकर आकर मैं। नहिं ताप तपे भव शीतल तै॥
तिसके गुण दिव्य सुधाकर के। वह जीवनऽमृत गुणाकर के॥१०॥
परितोष निरन्तर अन्तर में। निज रूप अनूप स्वतंतर में॥
नहिं नाथ अनाथ सदा सु निजे। गुरुदेव कबीर रहे अजिते॥११॥
मन मान अमान चहे सु करे। नहिं कारक घारक है उपरे॥
सब कालन के वह काल अहा। अति अन्त सुकालहिं वेद कहा॥१२॥

कर जोरि सदा तुम्हरे शरणे । यमराज खड़ा बिनती करने ॥
सुनु नाथ सनाथ करो हमहीं । करिये सुरता अबहीं अबहीं॥१३॥
हम मानत बात तुम्हारि प्रभो । क्षमिये सब दोष हमार विभो॥
तब हंस न फाँस हमार लहे । यमराज यहो विधि आप कहे ॥१४॥
सुन देव फँसे यम के जु फँसे । बगुला अरु बाउर बुद्धि नशे ॥
करि चोरि जुआरि सुजीव हते । परदोष निहारत मोह रते ॥१५॥
पितु मातु सुसाधुन को निदरे । तिनको दुख देवत जो झगरे ॥
पर नारि सुता दुरदृष्टि लखे । शत कोटिहिं मूरख जन्म नशे ॥१६॥
वह पापहिं पार करे रतिया । दिन नाम प्रभू न भजे यतिया ॥
उसको अति बन्धन मोर महा । निशिवासर घोर कुकष्ट सहा ॥१७॥
छुटना उसको नहिं है भव से । हम सत्यहि सत्य कहों तुम से ॥
यमराज कहा यहि भाँति सदा । नहिं त्राण मिले उनको सुखदा॥१८॥
गुरुदेव कबीर निरञ्जन हैं । जग दारुण-दोष विभञ्जन हैं ॥
करुणाकर आकर आप गुरो । धरमादिक रक्षक सन्त सुरो ॥१९॥
जग दम्भ प्रपंच अनेकन ते । नहिं ज्ञान रहा कछु एकन ते ॥
तुम कीन्ह दया गुरुदेव प्रभो । भव-भीति अनाति अनन्त विभो॥२०॥
सबको तुम नाश कियो सगरे । नहिं बानअसी नकिया झगरे ॥
गुरु-ज्ञान सुबान विराग धरे । सत आदि दया सु अनी अगरे॥२१॥
परितोष सु जोश सरोष करे । धिरती विरती उर माँहि धरे ॥
परताप अपार अहा जगमें । तव संग बसे सुख के मगमें ॥२२॥
शुभ चन्दन बास सुशीतल में । गुरु राम कबीर भजो मनमें ॥
तज मोह महा ममता मदना । भजु राम कबीर कृपा सदना॥२३॥

सुख सिन्धु अगाध अपार महा। भजुराम रमा पति नाथ कहा ॥
मम बात विचार करो उरमें । गुरु राम कबीर भजो सुरमें ॥२४॥
निशि ध्यावत ध्यान न आनकरी। भगवान सु जाप भवान करी॥
भव तारक हारक भार हरे । दुख दूर करे भव पार करे ॥२५॥
हरि-नाम भजे न जना सुमना। मति मन्द गँवार महा विमना ॥
जग बारहिं बार मरे जनमें । बहु शोक नितान्त सहे तन में॥२६॥
रविपूत विदार सदा उदरे। प्रहलाद पिता नरसिंह करे ॥
हिरणाकुश राक्षस जान वही। हरि भक्तन को दुख रूप कही ॥२७॥
सुख लेश मिले न कभी तिसको। उर ज्ञान विचार नहीं जिनको॥
तिन मारण कारण देह धरे। नरसिंह प्रभू वह नाश करे॥२८॥
दुख आकर सागर में नितहीं। नहिं शान्ति मिले सुख लेश कहीं ॥
पुनि हाथहिं छोड़ि गया भवमें। जगजन्म भया असुराधिप में॥२९॥
डमडोल खटोल भया नर ने। सुनिवास नहीं गुरु के शरणे ॥
मति पीन मलीन सुदीन नहीं। गुरुदेव विना सुख सिन्धु नहीं॥३०॥
भव सिन्धु अपार में डूबि गयो। यमराज-पुरी महँ बास भयो ॥
कल्पान्त अनेक सुकष्ट सहाँ। गुरुदेवन-देव कबीर कहा ॥३१॥
सबहीं मुनि वेद पुरान भने। गुरु-राम विना दुख-द्वन्द्व घने ॥
नहिं भक्ति मयंक किया जगमें। दुख दारुण भोगत हैं मगमें ॥३२॥
जग पामर जीवहिं ज्ञान नहीं। निति झूठि प्रपंच कुबोलतहीं ॥
नहिं जाप सुकर्म किया नर ने। भवसागर से दुर्लभ तरने ॥३३॥
नहिं दान दिया नहिं राम भजे। शुभ कर्म अराधन नीच तजे ॥
नहिं सज्जन को सनमान दिया। नहिं शुद्धमने वर धाम किया ॥३४॥

व्रत तर्पण नाहिं उपास नहीं। षट कर्म न ब्राह्मण आदरहीं ॥
मख आदि न होम न जाप करे। नहिं वैदिक कर्म हिया में धरे॥३५॥
सब कर्म उपासन ज्ञान तजे। त्रय ताप सहे नहिं राम भजे॥
यह पापिन की गति गूढ़ महा। जग जानत है मुनि वृद्ध कहा॥३६॥
हरि भक्त विलोकन ज्यों विपदा। कटु बैन कहे उन्मत्त मदा॥
कछु दर्शन वेद पुराण पढ़ो। अभिमान करे मति मान बढ़ो॥३७॥
हम जानत बात प्रभूत अहा। यहि भाँति कहे सुखहा कलहा॥
तुमते हम साधु गृहस्थ भले। अपनो कुल पोषत बाहुँ बले॥३८॥
तुम तो मठ बैठिहिं पेट भरा। परमार्थ विहीन सुदीन परा॥
यहि भाँति सदा शठ ताजनदे। पुनि रक्षक औगुण बाजन दे॥३९॥
पुनि काग समान रटे रटना। नहिं राम रमे उघटे घटना॥
रस हीन कथे मत मूर्ख जना। परि शान्त नहीं तिनको सपना॥४०॥
क्षुद मानहिं निंदक साधुन की। करि संगति दुष्ट असाधुन की॥
अपि मूरख लोग सुनो समझो। हरिभक्तन से न कभो अरुझो॥४१॥
निज भाग्य रहे वह पावत हैं। मन राम रमे गुण गावत हैं॥
नर जन्म सु पूरव भाग्य बना। निरखो जननी कुच मान मना॥४२॥
तु उलूक महा रवि दूषक हो। हरि सन्त जनादि विदूषक हो॥
अँधियार पियार लगे विषया। तम शत्रु बिवाध विना दुखिया॥४३॥
नित वाद विवादहिं कर्म रहा। भगवान भजा नहिं मोद लहा॥
पर को उपदेशत आप नहीं। सब वंचक भक्त कहावतहीं॥४४॥
निति छीजत भोजत रोग महा। विनु राम न औषधि आन अहा॥
पर के वसमें मरसे जरसे। यमराज कुफंद सदा गरसे॥४५॥

हरिगीतिका छन्द

यम-फंद कठिन कराल है, नहिं सूझता अल्पज्ञ को ।
यहि मोह तम रजनी महा, व्यापी सदा तिस अज्ञ को ॥
नहिं शरण सद्गुरु की लिया, सेवा नहीं हरि सन्त की ।
तेरांड़ सम हैं मूढ़ जन, होवे न गति बिनु कन्त की ॥१॥

दोहा—ईशकन्त बिनु मुक्ति नहीं, विधवा सम वह जीव ।
लख चौराशी भरमहीं, जो न भजहि हरि पीव ॥१॥
राम भजन सोभा महा, जो जन करे विचार ।
सो समान जग और नहीं, पार करे संसार ॥२॥
निगमागम सिद्धान्त यह, सुनिये ताकी बात ।
राम कृपा जबतक नहीं, तब तक नहि कुशलात ॥३॥
आदि अन्त जो जीव कहँ, अन्त ताहि गुरुदेव ।
परमारथ दरशावहीं, ताकी कीजै सेव ॥४॥

संसार-असार वर्णन चौपाई

सेवा गुरु की कीजै भाई । देत अमर पद अति सुखदाई ॥
गुरु समान जग में को देवा । मात-पिता इत्यादिक जेवा ॥१॥
नारि सुता सुत बान्धव काई । दुखस्वरूप जानो सब होई ॥
निज स्वारथ बस सब संसारा । बिना लाभ को पूछनिहारा ॥२॥
तिसको त्यागि देहु नर दूरी । लीजै गुरु चरणन रज मूरी ।
करिये पान सो अमी समाना । शमन करे सब द्वन्द्व महाना॥३॥
करि अनुराग गुरू के शरणा । तब होवे भवसागर तरणा ।
चरणहिं सेवा चरणहिं पूजा । नाम समान और नहिं दूजा ॥४॥

निशि बासर कर ध्यान हियामें। तब सुख पावे दास जियामें॥
कुल परिवार जहाँ लगि नाता। बिनु हरि भजन सकल दुखदाता॥५॥
याते त्याग कीजिये येहा। गुरु हरि पद नित करो सनेहा॥
कुल परिवार गले की फाँसी। यहि साथे शुभ गुण सब नाशी॥६॥
उदय पूर्व पश्चिम को जाई। उसको भी राहू दुखदाई॥
बायें दच्छिण दायें उत्तर। वह भी देव नहिं रहें स्वतन्तर॥७॥
तुझे एक इतिहास सुनाऊँ। जग असार व्यवहार बताऊँ॥
रहा नगर इक परम विशाला। जन धन पूरण रूप भुआला॥८॥
नाम जासु मनमत्त बखाना। बसत मुक्ति पुर सब जगजाना॥
राज काजमें सदा भुलाना। धन उन्माद न जाय बखाना॥९॥
धर्म कथा परमारथ हीना। छात्र कर्म में नहिं चित दीन्हा॥
सदा बिलास पुत्र सुख बाला। डरत न मूढ़ माल पर काला॥०१॥
सैनागार अनन्त करोरा। रच्छक सब चहुँदिश रह घेरा॥
मघवा अरि सम सब बलधामा। कालहुँ जीति करहिं संग्रामा॥११॥
धनुष बाण कर सब हथियारा। खड़े रहे सब द्वारन द्वारा॥
नहिं पिपील तहँ जाने पावे। ऐसो भय सब बीर दिखावे॥१२॥
ताहि समय आये यम दूता। सूक्षम गात यथा जग भूता॥
पैठि गये नृप मंदिर अन्दर। राज भवन पहुँचे सब जाकर॥१३॥
शूल कुलीश चलावन लागे। अंग अंग असु बहुदुख पागे॥
महा त्रास व्याकुल अति राजा। रच्छा नहिं करि सका समाजा॥१४॥
राव पुकार सभी को कीन्हा। ते रच्छक अवकाश न दीन्हा॥
तब यम दूत निकासे प्राना। चले राव मग बिनु पदत्राना॥१५॥

जो गढ़ भीतर सोवत राजा। सुमन सुगंधित आसन साजा॥
स्वलपहुँ तहाँ बैठि नहिं पावे। लिये चवँर चर सदा डोलावे॥१६
विपुल दास दासी रह पाछे। देखत राव लाग बड़ आछे॥
तेज तासु जिमि सहसाबाहूँ। लोक ईश सम मानो ताहूँ॥१७॥
इन्द्र यथा सब देवन राजा। आज्ञा देत करे सब काजा॥
तिमि नर नाह जानिये भाई। अति अभिमान संत दुखदाई॥१८॥
तेहि यम दूत फाँस महँ डारे। पहुँचे जाय मृत्यु के द्वारे॥
खम्भ बाँधि यम पूछन लागे। कौन कर्म तुम कीन्ह अभागे॥१९॥
नहिं उत्तर कछु दीन्ह नरेशा। धर्म गणित जब कीन्ह मरेशा॥
नहि शुभ धर्म कर्म नृप केरे। कर्म तालिका सब यम हेरे॥२०॥
तब दिनेश सुत कहा रिसाई। महा नरक में देहु गिराई॥
यह मति मन्द महा सो नरकी। संत सेव गत धर्म कुतरकी॥२१॥
भूलेहुँ कीन नहीं कछु धर्मा। सदा पाप रत माया मद मा॥
मानव जन्म दीर्घ भव बेरा। तारन तरणं जीव नर केरा॥२२॥
तन बोहित नहिं कीन्ह सवारी। बहन लाग भवसागर वारी॥
यह शठ कीन्ह बहुत अपराधा। भक्षण करहिं काम मद व्याधा॥२३
बारहिं बार भर्म चौरासी। पायो तन बराह दुखराशी॥
महा घोर अपराधी राजा। नरक मध्य में जाय विराजा॥२४।
रौरव कुम्भि पाक जो अहई। भूरि कष्ट भोगहिं तँह राई॥
जिमि जल हीन मीन अति दीना। धर्म बिना नर काल अधीना॥२५
सदा दुखी संतत दुख पावहिं। तरणि तनय चर अति डेरवावहिं॥
मारहिं काटहिं प्रतिदिन डाटहिं। विनय किये पुनि मारहिं लातहिं२६

यहि विधि बहुत कल्प तहँ बीते। तन पायो जग तिरजग भीते ॥
महा नरक वह कूप कहावे। वेद पुराण संत सब गावे ॥२७॥
ता महँ वास करत सो राजा। धनासक्ति परिवार विराजा ॥
अस राजा की यह गति होई। अल्प जीवकी कह पुनि कोई ॥२८॥
जो धनहीन मलीन कुअन्धा। विषय पोट महँ निशदिन बन्धा ॥
सदा करे पशुवत व्यवहारा। मानव जन्म जीव सब हारा ॥२९॥
नहिं शुभ कर्म संत सेवकाई। गुरु हरि भजन नहीं दुखदाई ॥
काल कला भव चक्कर माँहीं। कुल परिवार सदा दुख आँहीं ॥३०॥
सपनेहुँ सुख नहिं निति संतापा। नारि पुत्र लगि नाना पापा ॥
सो कारण हम कहते त्यागा। सुनत नहीं मतिमन्द अभागा ॥३१॥
जागो रे नर अज्ञ भूलाना। भजहु राम सुख-सिन्धु सुजाना ॥
बन्दीछोर हरे दुख नाना। प्रेम प्रीति से करिये ध्याना ॥३२॥
विघ्न कोटि सो मरदनिहारा। करणधार वह खेवनिहारा ॥
मन वच ताकी सेवन कीजै। सुखसागर महँ वास करीजै ॥३३॥

दोहा—रामनाम सम और नहीं, महा मंत्र सो जान।
मौन भाव हिरदय धरो, हर्रहि कोटि अज्ञान ॥१॥

चौपाई

तजिये सकल लागिये साथा। निर्भय पद देवे जन-नाथा ॥
बारम्बार धरो पद भाला। जो इच्छा सो देत दयाला ॥१॥
कल्प विटप सम जानो तेही। बसिय छाँह तरु सब सुख देही ॥
पुनि सो काम धेनु सम जाना। पूरन आस भक्त भगवाना ॥२॥

दोहा—मुक्तिभुक्ति सब पावते, जो इच्छा मन माहिं।
सुरतरु सुरभी जानिये, तिन सम औरो नाहिं ॥१॥

चौपाई

सो समान को है संसारा। जन रक्षक गुरुदेव उदारा ॥
चरित अपार बरनि नहिं जाई। मैं मतिमन्द कहाँ गति पाई ॥१॥
ज्ञान कला नहिं मोरे भाई। विद्याहीन न कछु प्रभुताई ॥
नहिं उपकार न संतन सेवा। हत वैराग विषय रस देवा ॥२॥
नहिं श्रधा कछु धर्म कहानी। परम विदूषक मुनिवर ज्ञानी ॥
सो मैं कैसे करौं बखाना। गुरु महिमा वेदहुँ नहिं जाना ॥३॥
जिमि सुमेरु पर हत पद चढ़ई। तिमि मति मोरि शक्ति नहिं अहई॥
गुंगा नर किमि बाँच पुराना। मलया बास न रासभ जाना॥४॥
लघु पिपील कहँ सागर पारा। जाना चह सो मन्द गँवारा ॥
तिमि मति मोरि थोरि लघुताई। गुरु महिमा सागर सम भाई ॥५॥
रवि महत्त्व जुगुनू क्या जाना। शशि शीतल कहँ कौन प्रमाना॥
भूतल कौन तौल सक भाई। नभ का अन्त कहो को पाई ॥६॥
यथा असम्भव सकल कहानी। गुरु-महिमा को सके बखानी ॥
बडवानल अति सोष बरीशा। ताकर अन्त कहो केहि दीशा॥७॥
अति अपार सागर जो सोषत। महिमा अमित अंत को पोषत॥
सो समान सद्गुरु को जानहु। बड़वानल सम ताहि प्रमानहु॥८॥
सकल उदधि जल अपरम्पारा। बड़वानल सबहीं को जारा ॥
जग समस्त का विषय विकारा। दहन करे सब गुरुवर छारा ॥९॥

महा मोह ममता तम रजनी । किये भस्म हरि योग सुअगिनी ॥
बचन तासु पूषण सुप्रकाशे । सकल अविद्या कारज नाशे॥१०॥

हरिगीतिका छन्द

नाशे अविद्या काज सब, गुरु-ज्ञान वान महान है ।
लहि आत्म पद जग जीव हम, सो रूप परम बखान है ॥
ऐसा गुरू मिलना कठिन, शत कोटि मे नर एक है ।
हत बासना जनको करे, देते सु परम विवेक है ॥१॥
शम दम सकल साधन सहित, सब भेद निर्गुण ध्यान का ।
इस भाग के अलोकने में, नाश हो अज्ञान का ॥
गुरु राम से जो रहित हैं, उनको न यह सुन्दर लगे ।
मृत्यू सदा भक्षण करे, यमराज मुगदर शिर लगे ॥२॥
निन्दा करे इस ग्रन्थ की, अटपट बयन बहु बोलते ।
सो जीव जग में रह सदा, बेचैन हो वह डोलते ॥
उनके लिये यह है नहीं, गुरु ध्यान पूजा वन्दना ।
निति भक्त जन इसको भजे, गंगा मिटे सब कल्पना ॥३॥

नित्योपदेशाचरण

दोहा—गंगा यह संसार में, कोइ बात नहि सार ।
राम भजन निति कीजिये, तजिये विषय विकार ॥१॥
पंच विषय दश इन्द्रियां, मनको सदा बचाय ।
गंगा हरि के ध्यान में, सुरता देहु लगाय ॥२॥

गंगा मूरख की सभा, कहो न बड़की बात।
भाव अर्थं जाने नहीं, बचनन करे कुघात ॥३॥
गंगा परमत ज्ञान बिनु, जो जन सामिल होय।
ताको मूरख जानिये, रहे अपन पौ खोय ॥४॥
विनु पूछे जो जगत में, देत और को राय।
सहे बहुत अपमान को, जन गंगा यह गाय ॥५॥
गंगा मूरख से कभी, कहो न हित की बात।
अपनी को त्यागे नहीं, टेढ़ा हो बतरात ॥६॥
गंगा अपने को सदा, जो जाने मति मान।
ताको मूरख जानिये, करे और अपमान ॥७॥
गंगा सबसे हम गये, जो नहि करूँ विचार।
सदा पराई बात में, बोलूँ नहीं सम्हार ॥८॥
गंगा मूरख से सदा, दूर रहो दश कोश।
मौन रहे कछु ना कहे, कितनहुँ होय सरोष ॥९॥
गंगा मूरख की सभा, चतुर न पूछे जाँहि।
बगुला पण्डित कहत सब, हँस मान तहँ नाँहि ॥१०॥
ढूढ़त निति पर दोष को, निज का नहि परिज्ञान।
सुतुर्मुर्ग सम जानिये, बदन छिपावे आन ॥११॥
श्वान दूम सम मूर्ख सदा, रहत नित्य निज रूप।
सीधा कबहुं न हो सके, मलो घृत दश कूप ॥१२॥
जलनि बुद्धि जो जगत में, सो उलूक मति हीन।
शुभ गुण से परिचय नहीं, रहत जगत में दीन ॥१३॥

बुद्धिमान छोटो सदा, मूरख बड़का होय।
गंगा अपने ज्ञान को, छोट कहत नहिं कोय ॥१४॥
मूरख से नहिं बोलिये; देवे खरा जबाब।
सहन-शक्ति वाके नहीं, जावे अपनो आब ॥१५॥
डेढ़ बुद्धि संसार में, यह जानत सब कोय।
आधी में सब लोग हैं, पूरा अपने होय ॥१६॥
गंगा अपने कष्ट को, राखो सदा छिपाय।
जासो कहिये सुने नहीं, और और बतराय ॥१७॥
गंगा अपने भेद को, राखो नितहीं गोय।
कहे कभो भण्डा फुटे, कहो न मित्रहिं होय ॥१८॥
गंगा पर व्यवहार में, हाथ बटावे जोय।
अमर गुरू सम बुद्धि भी, तो भी बाउर होय ॥१९॥
गंगा यहि संसार में, नीको हैं धनमान।
दिवस निशी जो पाप करें, तो भी इन्द्र समान ॥२०॥
रहत अकिञ्चन जगत में, सो अवगुण की खान।
चाहे साधु सु ब्रह्मसम, तो भो होय न मान ॥२१॥
उलटो रीती जगत को, चमर चतुर सतकार।
दोन लक्ष्मी हीन जो, तिन को नहिं संसार ॥२२॥
ओछर पल्ला जगत में, जाको होवे भाय।
तिनको सब नीचो कहे, कपटिन को बड़ गाय ॥२३॥
निज स्वारथ बस लोग सब, ताते भलो न जान।
कर्म सकल विपरीत करे, सत्यासत्य न मान ॥२४॥

तातै सुनिये सुजन जन, करिये बुद्धि विवेक।
यथा उचित व्यवहार कर, तजिये मनकी टेक ॥२५॥

सत्संग महिमा द्रुतविलम्बित छन्द

सरस पावन संत समाज है, विमल बुद्धि सुराजत आप की।
विलसती निज रूप अनूप में, छविवती विकसी मणि सी यथा॥१॥
बरसती घनरूप सुधावली, गरजता नभ बादल से महा।
धरणि नाचत मोर विभोर हो, गगन को मन छू इमि लेत है ॥२॥
तिमि सु संत सदा पद में रमें, अटल धर्म महान सु वेद का।
निखिल कर्म कठोर मुनीश के, करत साधन भारत वर्ष में ॥३॥
सकल लोग सुयोग स्वदेश के, सतत ध्यान महान सु आर्य का।
बहत प्रेम प्रवाह प्रमोद में, सबहिं भारत भार नरेश को॥४॥
धरत ज्ञान समाधि स्वरूप में, जनन शोक समूह विनष्ट भा।
पुनि सु दुर्लभ है जग भावना, लहि सु आत्म महा सुख सिन्धुको॥५॥
भगत से भगवान मिले अहो, करि सु संग सदा गुरु-संत की।
कमल को सुख शोक समान है, भगत भी यहि भाँति अमान है ॥६॥
सुजन दुर्जन में अति भेद है, दुखद एक न एक अखेद है।
अब सु आस यही गुरुदेव जी, करि सुपूर अदूरहिं राखिये ॥७॥
कछुक भेद न भाव करीजिये, सकल दोष विसारि स्वपाद में।
सतत मोरि मती गति दीजिये, कलुष से गुरुदेव न भाजिये ॥८॥
हम कुदास अविज्ञ अधीन हूँ, परम क्रोध विलीन मलीनता।
सब प्रकार अबोध कुघातिनी, निज स्वरूप विभ्रान्ति विमूढ़ता॥९॥

जनन मृत्यु प्रवाह निमग्नता, अति दुखी हम शोक समूह से।
तुम सु जानत हो विपदा अहा, भवहिं डूबत आस तुम्हारि हो॥१०॥
अवन दास निरास करीजिये, शुभ मती गति ज्ञान अखण्ड हो।
हम तुमार दुआर विलोकता, निकट साँझ सकार पुकारता॥११॥
अति बली यह काम सुचाहना, चरण में मन है गुरुदेव हे।
तव पुरी सब पाप विनाशिनी, सकल कीर्तिकला सुख दायिनी॥१२
भगति भाव सदा मन आवनी, कहत हैं मुनि मुक्ति-प्रदायिनी।
चरण धूलि सुधारि स्वशीश में, घसत नित्य सुप्रेम उमंग से॥१३॥
खुल गया शुभ ज्ञान कपाट हो, यह दया गुरुदेव कबीर की।
इसलिये अनुरोध हमार है, जगत में तुम नाथ हो महा॥१४॥
सब क्षमा कर दोष समूह को, शुभद मैं वर माँगत आप से।
प्रथम दोष अनेकन मैं किया, कछु विचार नहीं मनमें हुआ॥१५॥
सुनत हूँ हम नाथ दयालु हो, इस लिये हम आपहिं से कहा।
तव सुनाम प्रख्यात ईसीतले, किसलिये अब देर किये प्रभो॥१६॥
जन अधीन परा तव आस में, निबल को प्रभु हे अपनाइये।
तव सुद्वार सुपाद तले अहा, गगन में जिमि ध्यान चकोर का॥१७॥
पपिहरा जिमि स्वाति सुनीर को, पतिव्रता पति को भजती सदा।
तिमि रहूँ तव पादप में मुदा, कर सुपूर महा इस आस को॥१८॥
सतत दोषन से हम ने डरा, दुख कभी न किसी कहँ मैं दिया।
कलुष कर्म न जानन में किया, सकल पाप विरुद्ध सदा रहा॥१९॥
तव भला यह दण्ड मुझे मिला, किसलिये अपराध न मैं किया।
रहित न्याय प्रभो किमि भयो, अब विश्वास न आपक हो रहा॥२०॥

नरहरी वपु धारण आपने, जब किये प्रहलाद उबार को।
समय क्या वह भूलि गयो विभो, जब निजी कर से हरिणाक्षको॥२१
वध किये तुम थे अति वेग से, डर गये सब लोक निनाद से।
ध्वनि रही चहुँओर भयावही, असुर के मनको तुमने हरा॥२२॥
समझि के यह मैं तव आस में, निश-दिना तुझको सुपुकारता।
मन सदा करता यश गान को, हरि हरे जय हे जय हे हरे ॥२३॥
नरहरी हर दोष जनेश हे, कर सुसार्थक नाम अभी प्रभो।
अभय सत्य स्वरूप सुदावली, परम देव दया युत हों महा ।२४॥
परम द्रुत-विलम्बित छन्द से, अति मनोरम अस्तुति आपकी।
विमल बोध सुबुद्धि प्रदायिनी, इति हुई यह गीति सुहावनी॥२५॥

ईश उलहना प्रभाती छन्द

मन हरि नीति न सुन्दर जानो, यह दुर्नीति बुझाती है।
सत को असत असत को सत करि, अति विपरीत सुहाती है॥
दुख स्वरूप जग सो उपजायो, सकल जीव भरमाती है।
इतते उत नित करत जीव को, कबहुँ नहीं कुशलाती है ॥१॥
बार-बार धन जन के बस में, जरत बालु जिमि तात सुनों।
रहत फँसाय मुझे यह जग में, हरि माया दुखदात गुनों॥
जैसे आप बनाय जगत को, तामे सो फँसि जात घनों।
लोग कहे प्रभु मेरी जननी, निति पोषत जनगात तिन्हों ॥२॥
मुझ को तो हरि ऐसो लागत, जिमि विषधर की मातु अहा।
जाहि जनत तिन्ह भक्षण करती, दया नहीं उर आय कहा॥

तिमि जग को उपजाय नाश करि, निज जाया पर घात महा।
मैं इस हेतु कहा सुन जग जन, हरि व्यवहार कुढंग रहा ॥३॥
पापिन का निति पल्ला पकड़े, भगतन से इतराय बड़ा।
सदा सु मोद रहत पापिन के, लूटि मारि जो खात खड़ा ॥
संतन को सूखी भौरी नहिं, जो हरि जपि दिन जात अहा।
करत कुकर्म सेज सुख दीन्हो, मालामाल देखात महा ॥४॥
द्रोपद चतुष्पाद से पूरण, टेढ़ा हो वतरात सदा।
सुख के अयन चैन में राजत, नित्य मलीदा खात मुदा ॥
धर्मिन को सुख सपनेहुँ नाहीं, दुखहीं दुख दिन-रात लदा।
सदा जगत में रहत न्याययुत्, तो भी खाते लात खुदा ॥५॥
सब विधि से दुख भोग भगत जन, छिण छिण तिनकर पात हुआ।
विषयिन को हम मोटा देखत, साधुन का दुबरात हुआ ॥
वेश्यन के तन मलमल सोहे, सती उघारे गात हुआ।
न्यायहीन हरि मुझको दीखत, उलटी रीति लखाय सुआ ॥६॥
जैसे इस भूतल के शासक, तैसे प्रभु परिज्ञात भला।
लै उत्कोच न्याय को नाशत, त्यों पापिन भी देत भला ॥
खात घूस पापिन का हरि हैं, मैं नहिं देत सो देत जला।
भय पंचायत-राज वहाँ भी, कोउ नहिं नाह देखात भला ॥७॥
लेत घूस वाहूँ के मंत्रिन, करि नीचन पछपात सुना।
ताते अब यह दशा बीतती, मोद महा उनको दुगुना ॥
नाना कष्ट देत भगतन को, जो चाहे सो करे घना।
देखि-देखि मन चकित हमारो, जन हरि देखि परात सुना ॥८॥

पति-विहीन अबला दुख भारी, मनही मन अकुलाय रही।
दुख के वारिध आय परे हम, लहरन माँहि बिगाय रही॥
वारापार दिशा नहि सूझत, अस्त उदय चलि जात गिरी।
अब नहिं पार लगे यह नौका, ऐसो मोहि जनात हरी॥९॥
मध्य सिन्धु में भवर अमित करि, ऊपर झँझावात महा।
घोर निशा में नक्र भयानक, रजनी नहीं सिरात अहा॥
युग सहस्र सम रात भई यह, नहिं प्रभात अब दीख रहा।
नहिं कहुँ ओट न रच्छक दीशत, मेरी कुछ न बसात कहा॥१०॥
क्या हम करूँ कहाँ अब जाऊँ, संशय घोर निपात हुआ।
पूर्व कर्म का जो फल भाषत, संस्कार कहि जात हुआ॥
तो हम भी तस्करहीं होते, दुष्ट कर्म करते दिन रात।
ऐसो तो हम देखत नाहीं, ताते यह हरि बात जनात॥११॥
धर्मी भी धर्मन के फल का, संस्कार होता जो प्राक।
उभय मार्ग अनुगमन करत युग, पर ऐसा नहिं देखा भाक॥
जो अभ्यास रहा पहले का, पुण्य पाप दोनों में एक।
सो अभ्यास आज भी होना, सुनिये इसका आप विवेक॥१२॥
जन्म जन्म पापी जन पापहिं, पुण्यी पुण्य करत दिनरात।
पापी को फल बूरा होता, पुण्यी पुण्य बले दुख जात॥
पर ऐसा जग में कछु नाहिं, संस्कार जो कहे मुनीश।
उलटी रीति राम की देखा, न्यायान्यायी कुछ नहिं दीश॥१३॥

हरि जग नीति भीति परिपूरण, अब नहिं कछु कहि जात अहा।
है अज्ञात बात जगमें यह, सुनिये संत सुजान महा॥
दोष अदोष नहीं फल दीशत, हरि माया जग जाल कहा।
जन गंगा यह देखि अनीती, मनहीं मन मुसकाय रहा॥१४॥

❀ इति श्रीगंगाशरण-कृत चतुर्थ सोपान
पञ्चम अध्याय समाप्त ❀



❀ श्रीकवीराय नमः ❀

पंचम सोपान

षष्ठ-अध्याय

उत्त रार्धस्वदेश-महत्व-माला

हरिगीतिका छन्द

प्रणमामि पद पंकज सदा, सुरनाथ जो परमेश हैं।
कमलोद्भवो माया रहित, परित्यक्तमद विबुधेश हैं॥
सुनिरीह अज निर्गुण विरज, परब्रह्म परमानन्द हैं।
गत द्रोह राशि विकार सब, नहिं पाप तापाद्वन्द्व हैं॥१॥
शुभ बोधमय परिशान्तचित्त, पुनि श्रेष्ठ ज्ञान महान है।
व्यापक विभुं नभ सम महा, सु प्रकाशमय भव-यान है॥
अक्षर अमल हरि एक वह, सुख-राशि मंगलकार है।
शिव रूप नित्य भजाम्यहं, जन-नाह जग करतार है॥२॥
अघ दूर करता जीव का, सु अचिंत अनुपम नाम है।
शिव चरित परम विचित्र अति, सो ब्रह्म नित्य भजामहे॥
पर से परे सु अकार नहिं, जगदेव सो नारायणम्।
त्रय-काल का द्रष्टा कवी, तेहि पाद-पद्म परायणम्॥३॥
कलि पाप विघ्न विध्वंस कर, सानन्द शीतलता निधी।
गम्भीर सतत उदार है, सब कार्य की कीन्ही विधी॥

प्रेरक सभी संसार का शुभ , मूर्ति महिमामान है ।
हित सर्व जीवन के लिये , करुणामयी भगवान है ॥४॥
इश विश्वको सुसमेटि कर , इसके परे सो देव है ।
उसको न कोई जानता , बिनु भेद कैसे सेव है ॥
नहिं उर्ध्व में नीचे नहीं , नहिं मध्य में गरहण विभू ।
नहिं तासु की प्रतिमा कोइ , ऐसा विलक्षण सो प्रभू ॥५॥
निर्वाण रूप दिनेशवत , निष्कल अखण्ड अरूप है ।
पाथोजरवि निजदास कहँ , सारे भुवन का भूप है ॥
सु प्रचण्ड वायु में वही , सुपयोधिमें लहरा रहा ।
रवि तेज में शशि में वही , पुष्पों में सोई हँसि रहा ॥६॥
निर्भेद इन्द्रिय रहित यह , मम आतमा सुनिरञ्जना ।
इस विश्व का सु प्रकाश करि , कृत प्रलय में पुनि भञ्जना ॥
सब में वही वामें सभी , ऐसा गुरू मम जानिये ।
सब का वही साक्षी सदा , अति गुप्त है वह मानिये ॥७॥
इस विश्व परमस्वरूप की , करता सदा मैं बन्दना ।
यहि मध्य भारत वर्ष है , मुनिदेश सुन्दर पावना ॥
महिधर हिमालय विन्ध्य जो , सुप्रचीर चँवदिश मानना ।
चहुँ ओर खाईं सिन्धु वर , बैठक सुमेरू जानना ॥८॥
गंगा सु यमुना सरस्वती . गढ़ माँहि स्रोत सुहावना ।
सरिता अनेकन और जो , नलकूप सम तिरषा हना ॥
बहु रंग पुष्प सुवाटिका , जेते विपिन सुन्दर महा ।
असुरारि वन मुनि संघ है , देखत महा रमणिक अहा ॥९॥

रहते जहाँ तत्त्वज्ञ थे, विज्ञान बल सब देश में।
जाते विचरते थे वहाँ, नहिं रोक था सद्वेष में॥
महिमा महा इस देश की, राजा जहाँ का धर्म था।
परजा सकल शुभ कामना, मंत्री जहाँ का कर्म था॥१०॥
उड़ते जहाँ के मनस्वी, कैसा भला वह देश था।
अन्तिम कला के शिखर पर, पहुँचा हुआ उपदेश था॥
गढ़ रूप भारत भवन शुभ, सुप्रकृति विरचित कर्म था।
शम दम सतत हरि भजन रत, मन संत भारत वर्म था॥११॥
इससे परे जो देश हैं, परजा यहाँ के थे सभी।
चेला गुरू का भाव था, सुप्रमाण भारत ग्रन्थ भी॥
सब को दिया संदेश शुभ, मानव धरम का जानिये।
पर आज हम मूरख बने, दुर्व्यसन आलस मानिये॥१२॥
चेला हुआ गुरुदेव अब, गुरु देव गुड़ से भी गिरे।
यह दोष है हंकार का, जो मोह माया से घिरे॥
शाशक कभी संसार का, हम थे सुनो नर मानि ले।
सारी मही मम वश रही, ईशा के पहले जानि ले॥१३॥
मिसिरी युनानी देश में, कुछ चिन्ह ऐसे हैं पड़े।
जिन पर लिखा मम शब्द है, सदिओं पुराने हैं खड़े॥
होते अहिंसक लोग सब, सम जीव सब का जानना।
तन से बचन मन कर्म से, यह धर्म संतत पालना॥१४॥
जो पाप करते थे कभी, तिनको सुदण्ड कठोर था।
चहुँ मार्ग पर ले जाय कर, बहु सामने देते व्यथा॥

सब देखि के भयभीत अति, दुष्कृत को नहिं चाहना।
यहि भाँति मेरा देश था, सब की रही शुभ भावना ॥१५॥
होता जगत कल्याण जिस, करते सतत सो कामना।
पर नारि को माता यथा, पर द्रव्य माटी जानना ॥
होते निरामिष हीन मद, ब्रह्मचर्य को निति धारना।
निर्दोष सारे विश्व में, सब के लिये सद्कामना ॥१६॥
चोरी न निन्दा अन्य की, सब वस्तु पूरण सिद्ध थे।
होते सदाचारी सभी, नर नारि बालक वृद्ध थे ॥
पतिव्रत होतीं नारियाँ, शशि मातु सावित्री यथा।
ब्रह्मवादिनी भी थीं यहाँ, मंदालसा गारगि यथा ॥१७॥
थीं वीर भी इस देश में, सीता ओ दुर्गा देवियाँ।
जिन को सकल हम भारती, हैं मानते निज इष्टियाँ ॥
प्रह्लाद ध्रूव समान में, बालक यहाँ पर जन्मते।
पुनि राम कृष्ण समान में, नव युवक भी बहु झलकते ॥१८॥
भीषम पितामह द्रोण सम, थे वृद्ध भी इस देश में।
सुसप्त ऋषि भृगु आदि भी, राजा जनक उपदेश में ॥
गौतम कणादि सुकपिल मुनि, जैमिन पतंजलि व्यास थे।
विज्ञानियों में विज्ञवर, दर्शन रचइता भाष थे ॥१९॥

सार छन्द

संगीतज्ञ में नारद तुमरू, विद्वान में वृहस्पती।
नीति निपुण थे महर्षि उसना, परम विरागी शुक्य पती ॥

चाणक सुधी सम मंत्रीवर था, जिनकी ख्याति सकल संसार।
चन्द्रमौर्य सम शाशक थे बहु, पुनः अशोक महा बुधिसार ॥२०॥
जिनकी गाथा लिखी पड़ी है, शान्ति दूत भा बुध अवतार।
महावीर सम दयावान अति, सब जीवन पर एक विचार ॥
ज्ञानवान में ऋषभ देव थे, राज त्यागि जो संत हुआ।
परमहंस में भरत प्रभू थे, ब्रह्मज्ञान में नाम हुआ ॥२१॥
वकताओं में याज्ञवल्क्य थे, वाम देव गुरु सिद्ध महा।
मुक्ति क्षेत्र नचिकेता कहिये, कठोपनीषद गाय रहा॥
योगेश्वर में दत्त गुरू थे, बाल्मीक सम महाकवी।
वैद्यों में धनवन्तरि कहिये, रूपवान में उभय छवी ॥२२॥
ब्रह्मचर्य में सनकादिक अस, जाके बल से बालक थे।
सहज भोगमें शंकर योगी, जो हम सब के पालक थे॥
परमारथ में रहे दधीची, पितृ-भक्त में शरवन थे।
शिलपिन में विशकर्मा कहिये, बुद्धिमान में बावन थे ॥२३॥
दानीजन में हरिश्चन्द्र थे, शीवी जैसे राजकुमार।
क्षमावान में अम्बरीष थे, रन्तिदेव सम भक्त अपार॥
जन पालक में यथा प्रिथू थे, पूज्य पुरुष में मनू समान।
शूरों में थे परशुराम मुनि, सदाचार में राम महान ॥२४॥
यज्ञ कर्म में मरुत ययाती, परतापिन में नहुष बखान।
चक्रवर्तियों में थे ऐसो, मान सुधाता इन्द्र समान॥
लोमस जैसे परम तपस्वी, काल कर्म को जीत लिया।
अर्जुन जैसे शूर क्षत्री, विश्व विजय जो प्राप्त किया ॥२५॥

सत्य पुरुष में रघू युधिष्ठर, शक्तिमान में घटज बखान।
त्यागी जन में जरतकारु सम, ब्रह्मज्ञान में शंकर जान॥
शुभ सेवक में महावीर थे, लछिमन भरत भाई अस मान।
धर्म नीति में विदुर महा जन, जिनकी वाणी हरे मलान॥२६॥
रावन जैसे विज्ञानी थे, सर्वलोक की पता लगाय।
तार बेतार किया अनुवेषण, इन्द्र-लोक तक राज कराय॥
सर्व लोक अपने बस कीन्हा, था विज्ञान महा बल भाय।
वर्तमान नहिं इन सम कोई, नहिं आसा आगे कीजाय॥२७॥
भूत ब्रह्म गंधर्व धनुर्को, आयुर्अर्थ अश्व गणितान।
अभियंत्रण अरु शिल्प आसुरी, पैशाची उड्डयन महान॥
संहारण संरक्षण चित्रण, जल विद्या को वेद बखान।
अग्नि भूमि विद्या नभ केरी, चौषठि कला यही में मान॥२८॥
वायु पाक राज विद्या पुनि, अंक कला मानव इक होय।
पशु विद्या खग जलचर केरी, नाग यक्षिणी विद्या होय॥
गुप्तचरी अन्वेषक विद्या, त्रयकाली विद्या जो कोय।
संख्या फलित महेश्वरि विद्या, शैलज विद्या भारत सोय॥२९॥
ब्राह्मिहिर ज्योतिर्विद भारी, जिनको जाने सब संसार।
पंडित परमाचार्य भासकर, खं विद्या का गुरु पुकार॥
भूमि गोल के परम सुपंडित, बोव देव सम और न जान।
जेती विद्या सब के ज्ञाता, भारत बासी सच तुम मान॥३०॥
महा पुरुष थे और अनेकन, जिनका नाम लिखा नहिं जाय।
सभी पुज्य मेरे गुरुजन थे, जिन का चरित्र महा सुखदाय॥

बार-बार तिन ध्यान कीजिये, बाणी मनन करो मन लाय।
मिले सभी गुण उनका तुमको, जो चाहो सुख मिलिहैं आय ॥३१॥

हरिगीतिका छन्द

महिमा महा इस देश की, संक्षिप्त में बरनन किया।
आगे कहुँ कछु और भी, नहिं शान्त होता है हिया ॥
निज पूर्वजों के सुगुण का, कहने में अति सुन्दर अहा।
थे विमल सब सच्चरित वर, जेहि कीर्ति फैली जग महा ॥१॥
नहिं राग द्वेष विकार था, करते सभी निज कर्म को।
रहते सभय लज्जा सहित, करते सदा शुभ धर्म को ॥
माता पिता गुरु वृद्ध की, आज्ञा न वर की टारते।
वैदिक बचन विश्वास करि, विधि वाक्य उर में धारते ॥२॥
सविचार दोषादोष का, शुभ नीति से दंडित करें।
नारी पुरुष गुरु वृद्ध हो, माता पिता ब्राह्मण वरे ॥
जो पाप करते थे कभी, सब दण्ड के भागी बने।
नहिं दण्ड देते जो इन्हे, तो पाप बढ़ता जग घने ॥३॥
लाते परा धन मारते, ताला न घर में लागता।
साँचा सकल व्यवहार था, नहिं पाप उनको लागता ॥
जो काम करते सर्व मिलि, सबकी मती स्वेच्छित नहीं।
सब में सभी का प्रेम था, नहिं द्रोह दारुण था कहीं ॥४॥
नास्तिक मता को त्यागते, निज धर्म में चरते सदा।
रहते परस्पर लोग सब, रिपु भाव नहिं बरते कदा ॥

निर्लोभ मनसिज कोह गत, सद्भावना हिरदय बसे।
सब धूर्तताऽऽडम्बर रहित, पक्षपात नहिं उर में धँसे ॥५॥
त्रय बार संध्या होम करि, निज देश को निर्मल करे।
पुनि मातृ-भू से प्रेम अति, तत् ऊपरे मस्तक धरे॥
राजा प्रजा थे एक मत, चहुँ बरण का मत एक था।
वेदोक्त सर्व विधान था, सात्विक विरति सुविवेक था ॥६॥
डरते सभी थे पाप से, नहि घूस लेना काम था।
दुर्नीति सर्व अभाव था, उन्नति सकल सुखधाम था॥
निज कर्म अपना भोगना, नहिं छोड़ता तत्साथ को।
महियान पीछे लीकि जिमि, तरु संग छाया नाथ को ॥७॥
यह सोचि सकल सु कर्म रत, नहिं दुष्ट कर्म कि भावना।
नारी पुरुष नहिं भ्रष्ट थे, पति एक नारी जानना॥
सब थे विचारक अग्र के, कर्त्तव्य मेरा क्या अहा।
पशु कर्म को सब त्यागि के, मानव धरम संतत रहा ॥८॥
विज्ञान सब पूरण रहा, जो आज भी नहिं दीखता।
इतिहास मानस ग्रन्थ जय, विज्ञान वर को लीखता॥
रहती दया निर्मल सभी, नहिं कलह का कहुँ लेश था।
होते प्रथम मम देश के, नहिं कष्ट भारत देश था ॥९॥
याते कहावत आर्य सब, यहि नाम आर्यावर्त था।
थे सभ्य आदिम काल से, दुष्टत्व का नहिं वर्त था॥
इस देश के अतिरिक्त जो, कु अनार्य सकल कहावते।
करते सदा चोरी करम, इतिहास यहि विधि गावते ॥१०॥

वैदिक धरम के पूर्व में, कोइ धर्म नहिं था जगत में।
युग सहस सम्वत अल्प में, सब धर्म हैं पश्चात में॥
ईशा मुहम्मद पारसी, एहूदियन को जानिये।
जेते धरम संसार में, सो सर्व पीछे मानिये॥११॥
यूरोपियन विद्वान बहु, इस बात को सब मानते।
विज्ञान भाषा मूल ते, इस बात को सब जानते॥
सब से प्रथम मम धर्म है, इस बात का गौरव महा।
सुन्दर पुनीत त्रिलोकि के, मलहीन निति मुनि जन कहा॥१२॥
सब से प्रथम शुभ सृष्टि का, विस्तार भारत में भया।
औरो सकल भूभाग जो, सो सप्त सिंधव से नया॥
ऋग्वेद का सुप्रमाण यह, आना कहीं से है नहीं।
पश्चात के उल्लेख का, सुप्रमाण सत मिलता नहीं॥१३॥
हम जानते भी बात यह, पुरवज हमारे थे यहीं।
अन्यत्र भी जाकर बसे, जो देश उन्नत हैं कहीं॥
अदिती दिती के वंश का, सब देश में सु प्रसार है।
सात्त्विक सदा शुभ गुण सहित, सब ज्ञान में अधिकार है॥१४॥
सो वंश अदिती के सुजन, तिन शिष्य सब संसार है।
चोरी करम रत हिंसकी, वैदिक वचन नहिं धार है॥
सो पुत्र दिति के जानिये, मुनिदेश के जो पार हैं।
उनमें सुसद्गुण के सहित, सो आर्य हैं सु उदार हैं॥१५॥
सबकी सदा शुभ कामना, सबको जगाना चाहते।
इच्छा नहीं परराज की, तत कोष विष सम जानते॥

पर राज्य धन जो चाहते, दिति वंश सो कुअनार्य हैं।
सब के लिये दुखमय सदा, उनसे सुव्याकुल आर्य हैं ॥१६॥
सबको मिटावन चाहते, मनुजाद पक्के जानिये।
इनको निकालो देश से, चन्दन कुल्हाड़ी मानिये॥
रहने न पावें दुष्ट-जन, दुष्कर्म से झगरा महा।
बिनु एक पथ के सुख नहीं, मुनि वेद संतन ने कहा ॥१७॥
इस हेतु इनको दूर कर, ए पाप के भण्डा सदा।
जब तक रहेंगे मूर्ख ये, नहिं शान्ति होगी रे कदा॥
विकसित करम इनका नहीं, संकीर्ण है अति भावना।
लड़ना झगड़ना काम है, करते सदा अति जल्पना ॥१८॥
यह देश आर्यों का सदा, कुम्भी नदी तक मानिले।
प्राची में वर्मा सिन्धु तक, उत्तर हिमालय जानि ले॥
दक्षिण में कन्याकुवँरि है, इसके परे भी और है।
वह काल कर्म स्वभाव से, हमसे परे अब और है ॥१९॥
उसको तुँ त्यागो जान दे, इसको सँभारो ध्यान से।
जितने विधर्मी अज्ञ हैं, उनको मिलाओ ज्ञान से॥
रहने न पावें एक भी, जो दुष्ट कर्म स्वभाव के।
निज भवन में अहि दुष्ट हैं, जो ताकते निज दाव के ॥२०॥
इस आर्यों के देश में, नहिं दस्युओं का काम है।
भाई हमारे बन सके, उनके लिये भी धाम है॥
सो भी रहैं मम देश में, जो धर्म मानव मान लें।
मम धर्म परम पुनीत का, सारा रहस बे जानलें ॥२१॥

मानव सुधर्म विरोध में, रहने न पावें ये कभी।
महिराज वन्दा वीर की, है वेदना मुझको अभी॥
गोविन्द गुरु के पुत्र की, नहिं आह जाती है मुझे।
राणा कुँवर की चोपदा, नहिं दीखती है क्या तुझे॥२२॥
तुम पूत दुष्ट कुपूत हो, करि तात रिपु से मित्रता।
माता बहन अपमान को, तुम ने बिसारा भ्रातृता॥
तुम शत्रुओं से प्रेम तज, कल्यान होगा बाप का।
कहता सु गंगा दास यह, है मित्र भाई आप का॥२३॥
निज धर्म से भागो नहीं, कपिपूत सम पकड़े रहो।
समवाय सम्बन्धी बनो, तत् संग में संतत रहो॥
इसके परे जो धर्म हैं, मति दोष देखन में अती।
होती जुगुप्सा कहन में, याते न दुर्गुण कह मती॥२४॥
प्रत्यक्ष देखो बात यह, कितनी क्षती इस देश की।
करि नाश सो सद् ग्रन्थ बहु, विज्ञान पुनि उपदेश की॥
तसकर धरम सुप्रचार करि, जिमि जगत पशु व्यवहार है।
मानव धरम से रहित करि, पशु धर्म का कुप्रचार है॥२५॥
हम देव थे संसार में, सब जानते हैं विज्ञजन।
निज धर्म को तजना पड़ा, देना पड़ा सब धर्म-धन॥
निशचर करम करना पड़ा, करते नहीं शिर मार है।
इस हेतु हम करने लगे, तसकर सकल दुख भार है॥२६॥
सोऽनार्य से भी अधिक अति, सुअनार्यता विस्तृत्व में।

कु प्रभाव यह[1] दुर्देश का, विस्मृति भइ कर्तृत्व में ॥
परविष्ट हो मम देश में, बहु भाँति से हानी किया।
धन धर्म मम दोनो लिया, बिनु वीर भारत को किया ॥२७॥
दुर्नीति का कुप्रचार करि, मतभेद आपस में हुआ।
भाई से भाई जनक सुत, आपस में सबहीं लड़ मुआ ॥
व्यभिचार सारे देश में, नारी पुरुष में झागरा।
मनुजाद सम भारत हुआ, सब लोग दीशे बावरा ॥२८॥
निज देश कर्म तियागि के, पर धर्म में सब चरत हैं।
गुरु मातु पितु आज्ञा नहीं, इच्छा सोई नर करत हैं ॥
निज धर्म पर गौरव नहीं, पर धर्म गौरव देत हैं।
पतिव्रत वामा त्यागि के, निज द्रव्य वेश्यहिं देत हैं ॥२९॥
लज्जा न उनको लागती, अपमान करते देश की।
निज देश की हानी करत, उन्नति करत पर देश की ॥
आचार अपनी सभ्यता की, नीति भाषा त्यागते।
निज पूर्वजों की बात को, अशलील कहि समझावते ॥३०॥
थे जंगली अनभिज्ञ सब, नहिं ज्ञान था उनको कदा।
मण्डूक कूप समान थे, डूमर किटाणू इमि तदा ॥
अपवाद करते यहि विधी, नहिं योग्य था कोइ देश में।
पर सभ्यता अपनावते, जो श्वान वन्दर वेष में ॥३१॥
जो गिद्ध काग सियार सम, भक्षाभक्ष न ज्ञान है।
भगिनी सुता सब नारि सम, संतत विषय का ध्यान है ॥

१. अंग्रेज आदि विदेशी देशों से तात्पर्य है।

आकर अखेटक देश में, शृंगाल कछु को बस किया।
रंगा उन्हें निज रंग में, बाणी सिखा अपनी दिया॥३२॥
शृंगाल तो सब हैं वही, पर बोल अरबी[1] बोलते।
निज रंग अपना त्यागि के, पर रंग में वह डोलते॥
निज देश अपने पूर्वजों का, ध्यान उनको है नहीं।
जिनसे जनम उनका हुआ, कहते और हम औरहीं॥३३॥
वह पूजते पाषण थे, बहु देव देवी मानते।
हम तो सदा इक ईश को, नहि दूसरा कछु जानते॥
पर भूल अपनी क्या कभी, ऐ लोग भी हैं जानते।
पाषाण मक्का में पड़ा, सब बूष जाकर लावते॥३४॥
क्या है पषाण कि और कछु, गिरजा मकबरे में कहीं।
क्या ईश इनको दीखता, जो रूप में आता नहीं॥
अपने भी तो ओही करें, जो दूसरे सब करत हैं।
पर ज्ञान अपना है नहीं, जो भूल नितहीं करत हैं॥३५॥
पाषाण गैर पषाण में, जेते जगत के रूप में।
सब में वही अल्लाह है, भजते सदा सब रूप में॥
तुम को नहीं यह ज्ञान है, बस रंग ऊपर से रँगा।
भीतर भरा मणगार है, ऊपर से चुना में चँगा॥३६॥
लड़ते झगड़ते हैं सदा, निज धर्म कर्म के नाम पर।
उदण्डताही धर्म है, पर का गला नित काट कर॥

---

१. अन्य भाषा भाषीओं की बोली बोलना।

नहिं पाप इनको है कहीं, चाहे करें कोटिन बुरा।
निति कुफ्र अपने करत हैं, पर को कहें ए काफिरा ॥३७॥
बेटी बहन पर की हरें, कोटिन गला ए काटते।
घन धाम लूटें और का, उर में दया नहिं आनते॥
ए पीर बनते आप हैं, पर पीर क्या ए जानते।
निति पाँच बेर निवाज पढ़ि, अल्लाह को गोहरावते ॥३८॥
अन्जान क्या अल्लाह हैं, सब कर्म क्या नहिं जानता।
क्या मांफ कर देंगा इन्हें, जो कर्म बूरा बर्तता॥
ऐसा नहीं होगा कभी, क्योंकी सुन्यायी राम है।
वह पाप का फल दण्ड दे, उसका यही निति काम है॥३९॥
बदनाम करि इसलाम को, साहब मुहम्मद को सदा।
उनकी न माने बात ए, मन मानहीं चलते सदा॥
निज स्वार्थ अपने लुफ्त के, करते वही कम जानिये।
उनको सुधारें राम जब, सुधरे तभी ए मानिये ॥४०॥
बूरा न मानो भाइयों, यह बात सच्ची मैं कहा।
देखा सुना संसार में, नहिं ज्ञान इनको निज अहा॥
देखें पराये दोष को यह, भूल इनकी मानिये।
इनके सुधरने के लिये, मैंने कहा यह जानिये ॥४१॥
नर मूर्ख से कम हैं नहीं, बस लुफ्त लेना काम है।
भौतिक जगत मेहीं सदा, जिसमें नहीं अभिराम है॥
इस पेट भरने के लिये, हैं व्यस्त निशि बासर सदा।
रहते सदा उस ध्यान में, पर द्रव्य लूटन को सदा ॥४२॥

भारत पृथक जो देश हैं, सब हैं ऋणी इस आर्य के।
विज्ञान विद्या ज्ञान सब, कुहुनूर धन सत् कार्य के॥
विज्ञान पुस्तक लूट कर, निज देश भाषा में किया।
जो वस्तु सुन्दर देखते, रहने नहीं कुछ भी दिया॥४३॥
नहिं ज्ञान सूक्ष्म अर्थ की, नहिं तर्क युक्तीयुक्त है।
खंडन किया पर धर्म का, विध्वंस मूरति मुक्त है॥
पुरुषातमा ही पुरुष है, तैसे जगत हरि आतमा।
कुछ भी नहीं तत्भिन्न है, यह विश्व सब परमातमा॥४४॥
जो भी करो हरि जानिके, सबकी प्रभू निति सुनत हैं।
बहु भाँति की हरि अर्चना, गुनि के प्रभू सब सुनत हैं॥
सर्वज्ञ ईश महान है, वह प्रेम के रहता वसी।
चाहे भजो जिस भाँति से, जो नीति जिनकी जग असी॥४५॥
यह ज्ञान बिनु यवनादि हैं, जो धूम विष्टप में किया।
असि हाँथ से संसार में, बहु जीव को बलि सो दिया॥
हरि मूर्ति का खण्डन किया, विद्रोह की मूरति रची।
तब से जगत में शांति नहिं, चहुँ ओर हलचल है मची॥४६॥
अपने बनाये ग्रन्थ का, भगवान की वाणी कहा।
अल्पज्ञ जन भरमाय के, तत् ज्ञान को माना कहा॥
सो ज्ञान हँसने योग्य है, पढ़िके विलोका मैं जभी।
अन्धा का लकड़ी पकड़ि के, भवपार होंगे ये कभी॥४७॥
क्या भारतियों सम एक भी, इनका भी कहिये ज्ञान है।
जिसमें अहिंसा धर्म है, नहिं पाप करना ध्यान है॥

संसार की सब पुस्तकें, नहिं भारतियों सम एक भी।
वेदान्त गीता सम नहीं, जिसमें भग सु विवेक भी ॥४८॥
जिसमें बड़ाई सर्व की, सबके लिये सुस्थान है।
निन्दा नहीं पर धर्म की, सबका करत सनमान है॥
ऐसा धरम है वेद का, जिसमें भरा सब ज्ञान है।
संसार जिसका शिष्य है, तिसमें महा विज्ञान है ॥४९॥
अनुभव बिना नहिं मिलि सके, क्योंकि ए वाणी ब्रह्म है।
करता भजन जो ईश का, सो जानता तत् मर्म है॥
याते मनन जो शील मुनि, तिन के लिये सब प्राप्त हैं।
दुर्लभ नहीं उनके लिये, कहते महा मुनि आप्त हैं ॥५०॥
ऐसा उदार न धर्म कहुँ, संसार में देखा सुना।
लाखों भिखारी आज भी, हैं कोटिपति जानो बना॥
जो देश आज धनाढ्य हैं, पैसा बिना नहिं जल मिले।
जानो इसी से बात सब, जो फूल कागद के खिले।५१॥
जो बाल क्रीडा यंत्र सब, जिसमें करत अभिमान हैं।
जिसका महत् कुछ भी नहीं, मम देश देते मान हैं॥
पुरवज हमारे जानते, उनसे सिखे ए लोग हैं।
चेला हमारे हैं सभी, जो आज बनत सुयोग हैं ॥५२॥
निज मूर्खता के कारणे, सब गुण गँवाया हम सदा।
रे नीच पापी जाग तैं, नहिं भूल रे अब तै कदा॥
भारत विदेशिन को गुरू, अति प्रेम से अब मानता।
उनके पुरनिया पूर्वजों की, गीत लोगन गावते ॥५३॥

आचार उनहीं का सभी, अति चाव से गरहण करें।
पुनि रीति उनकी सभ्यता, व्यवहार हिरदय में धरें॥
निज देश के गुरु कुलन में, अब आँगली अनिवार्य है।
व्यभिचारणी यह मोहती, पतिवर्त गइ जो आर्य है॥५४॥
धर्मातमा सब चल बसे, बिनु धर्म का यह राज है।
इच्छा वही करते सदा, नहिं लाज इनको आज है॥
मतदान लेते रंक से, छल छद्म के व्यवहार से।
चाहो मिले तुम को वही, विश्वास दे शत बार से॥५५॥
पदवी मिली उनको जभी, वह भूल जाते दीन से।
शिर त्राण शिरपर आँगली, मानो बड़े परवीन से॥
बस पेट भरना आपना, निज भवन रम्य बनावते।
करते सु चोरी राज से, मंत्री बने सुख पावते॥५६॥
इस देश की बातें नहीं, पर देश की सिखलावते।
जो यवन आँगल रूस में, संयुक्त राज कहावते॥
सु फ्रांस आदि विदेश की, अब चाल मोहि पढ़ावते।
इसका करूँ प्रतिकार जब, भूसुंडि कर डेरवावते॥५७॥
ए सिख रहे उनसे भला, तो ओ सिखें किन से कहो।
अनुभव किया मेहनत किया, संतत लगे उसमें अहो॥
उनको मिला तुम को मिले, भाषा न देश महान हो।
पर तुम महा अहदी अहा, अनुभव न मेहनत ज्ञान हो॥५८॥
विनती करूँ जब पेट हित, नहिं नयन इधर घुमावते।
कर-वृद्धि करि मम रक्त को, भय भाव से सुखलावते॥

दुख रोग गरसित हम सभी, लड़ते परस्पर में कभी।
जाते युगल निरणय भवन, जँह न्याय होती है सभी ॥५९॥
उत्कोच बिनु सुनते नहीं, फटकारते बहु जोर ते।
देता बड़ा उत्कोच जो, तत् पक्ष धारण मोर ते ॥
निर्दोष दोष विचार नहिं, उत्कोचहीं सु विधान है।
लिखते नियायी भवन पर, उत्कोच का नहिं मान है ॥६०॥
सुप्रतक्ष्य रचना जाल है, नहिं जीव जग कल्यान है।
चहुँ ओरहीं दीशे कलह, कलि रूप काल महान है ॥
चल चित्र गाना यंत्र जो, जीवन हमारा हर लिया।
हम काम के कीड़े बने, जब गीत भद्दी सुन लिया ॥६१॥
धन धर्म हम दोनों दिया, इस दूरध्वनि के कारणे।
इसको न कोई रोकता, धन लोभ स्वारथ कारणे ॥
सब देखते अति चाव से, गिरही तियागी जन भला।
लाते समाधी हाट में, माला भरी उनके गला ॥६२॥
भूले सकल जन देखि के, पूजा चढ़ाते हैं सभी ॥
बाबा खरच करते कहाँ, इसको सुनो कहता अभी।
अहिफेन गाँजा भाँग में, चल-चित्र में भी जानिये ॥
झगड़ा फुटा उनका जभी, नहिं द्रव्य मिलता मानिये ॥६३॥
पूछे कभी उनसे कोई, पीते हो बाबा क्यों नशा।
कहते हैं बाबा क्या सुनो, शंकर से योगी भी फँसा ॥
विष खाय सर्प लपेटते, शंकर सुयोगी थे सुनो।
ए क्यों नहीं करते वही, जो जो किये शंकर सुनो ॥६४॥

वह तो नहीं ए कर सके, करते वही जो मन कहा।
भण्डा खुला नहिं द्रव्य पा, दुर्गति हुई इनकी महा॥
तब रूप साधू छोड़ कर, करने लगे सब भिरतई।
गृह वेष में रहने लगे, शत द्रव्य के सो मानई।।६५॥
सो अनर्थ अब करने लगे, चल चित्र गीतें सूनि के।
अति अल्प में मैंने कहा, बहु बात को हम गूनि के॥
सब संत ऐसे हैं नहीं, जो हैं उन्हीं को मानिये।
व्यवहार अपना त्यागि के, पर में रहत सो जानिये॥६६॥

सार छन्द

यह वेद संत की वाणी से, सुन्दर अधिक लगे हमको।
इसके कारण चोरी करता, पैसा लो देखन दे हमको॥
करम धरम मुझको नहिं चाहें, मुझे चाहिये बस चल-चित्र।
जिसमें सब दुष्कृत विराजे, वही हमारा बनता मित्र॥१॥
ऐसो लोग होहिं कलि माहीं, गो हत्या भखैं गो मांस।
बुद्धिमान की बात न मानें, नास्तिक बयन करैं परकाश॥
दोष कोश रोषन में राजें, यह भविष्य-बाणी गुरु जान।
सप्तमऽरोहण में पुनि भाषब, कलिक विवरण तहाँ पर मान॥२॥
मातृ-भूमि भाषा पर गौरव, देश नीति में प्रेम नहीं।
सो पशु मानव रूप जगत में, चरत फिरत हैं जहीं तहीं॥
तिनका जीवन दीर्घ अल्प है, बदन छिपाने योग्य कहा।
नैन देखते निज माता को, कामी पुरुष घसेटि रहा॥३॥

भू भाषा मम धर्म मातु है, तत् अपमानी दुष्ट महा।
इसमें प्रेम नहीं जिस जन का, सो पशुअन से अधिक कहा॥
खाते पीते परवस रहते, ज्ञान नहीं सो मूर्ख महा।
खाकर टुकड़ा मातृ-भूमि का, कुम्भकरन इमि सोय रहा॥४॥
धिक धिक जीवन तेरा जगमें, जो नहिं अपना प्राण दिया।
भला कौन ऐसा जग होगा, करे सहन दुर्बुद्धि हिया॥
मातृ-भूमि भाषा अपमानित, जो देखे निज नैनन से।
दशा दैनीय देखि मातु की, हास्य करे निज बैनन से॥५॥
मातृ-पच्छ को त्यागि जो मूरख, कामी नर का साथ दिया।
ताहि बधे में दोष नहीं है, जो जननी अपमान किया॥
पिया पयोधर जिसका तुमने, अन्न खिलाती उपजाती।
दसों मास जो गर्भ सुअन्दर, धारण करती जन्माती॥६॥
तव पोपण करि किया सयाना, नाना कष्ट सहा तन में।
चेरी सम तव सेवा किन्हा, तव पुरीष घिरणा नहिं मन में॥
सो गुण गौरव भूलि गया तुम, साथ किया वेश्या का नीच।
मिथ्या देखि भुलाना मूरख, भूलि गया अपना कुल मीच॥७॥
किया पूर्वजों ने जो करतब, क्यों नहिं तत् अनुसरण किया।
शुद्ध बुद्ध जो धर्म आपना, क्यों नहिं पालन ध्यान दिया॥
धर्म त्याग करना असभ्य का, दुख स्वरूप दुर्बुद्धि महा।
आपस में क्यों प्रेम न करता, पर प्रज्ञा में राचि रहा॥८॥
तुम्हें नहीं कुछ लज्जा आती, देखि दयनीय दशा देश की।
नाना मत पथ किया देश में, भूलि गया शिक्षा रमेश की॥

महा छली पश्चात् भूमि के, मीठी बात सुनाते हैं।
अति लोभन दिखलाय तुझे, जो घर में झगरा लाते हैं ॥९॥
बगुला बिल्ली मूस कहानी, मिथ्या ध्यान दिखाते हैं।
काल रूप हो मछली खाते, दम्भी रूप बनाते हैं ॥
जाका जौन कर्म नहिं छूटे, गिद्ध मांस का त्याग न जान।
तिन से करैं मैत्री पशुअन, अपना कर्म न तजे सचान ॥१०॥
तत् समान जानो छलियन को, मूषिक कर्म करैं दिन रात।
देखि किसानन की वस्तू वह, जलें सदा नहिं तिन्हें सोहात ॥
खटमल काग गँवासा जैसे, मारे गाय बिना अपराध।
सकल विश्व की जननी जो है, परहित करे यथा जिमि साध ॥११॥
तैसे यह भारत भू माता, सबकी रक्षा यही विचार।
सावधान हो याकी रक्षा, करिये यही कर्म निज सार ॥
बगुला बिल्ली मूस गीध से, काग बाज से हो हुसियार।
परम गाय यह मातृ-भूमि है, देखु गँवासा याहि न मार ॥१२॥
खटमल मच्छर डंसि न पावें, धर्म मसहरी याहि लगाव।
ज्ञानबाण से दस्युन मारो, निज हिंसा से देश बचाव ॥
पथ अनेक मत रहन न पावे, सब में करो एकता भाव।
देश विनाशक इसको जानो, जाति-पाँति का भर्म भगाव ॥१३॥
धर्म एक हो जाति एक हो, ईश एक हो भाषा एक।
कर्म एक हों बुद्धि एक हो, चाल एक हो एक विवेक ॥
ध्यान एक हो ज्ञान एक हो, सत्य एक हो एकहि टेक।
एक राज्य हो एक कार्य हो, एक नियम हो नहीं अनेक ॥१४॥

एक नारि हो एक पुरुष हो, एक दृष्टि बरते सब लाज।
एक बोल हो एक डोल हो, मारग एक सनातन राज॥
हिन्दू यवन खृष्टियन तोड़ो, आर्य जाति का कर निर्मान।
अँगल यवनी औरन त्यागो, आर्य संस्कृत का परिज्ञान॥१५॥
धनी अकिञ्चन भेद भगावो, सबको कर दे एक समान।
सब के लिये सभी कुछ होवे, भेद-भाव का नाम न आन॥
छुआछूत जो पाप देश का, उसको जल्दी देहु भगाय।
मानव-मानव सभी एक हैं, पाप-पुण्य सबहीं में गाय॥१६॥
कर्म स्वभाव जवन है जिसमें, उसकी जाति वही जग मान।
इसमें दुविधा कभी न करना, सबको रचा एक भगवान॥
कुत्ता स्यारन से नहिं डरपो, भूकन बोलन देहु हजार।
सिंह आर्य हैं वन के राजा, इनकी महिमा अगम अपार॥१७॥
घुड़कतहीं सब भागन लागे, शक्ति आसुरी काम न आव।
दैवी-शक्ति महा महिमा युत, वाणिक एक सकल सु प्रभाव॥
तत् विलोकि वक आदिक भागे, उसका संचय करो बनाय।
आपस में सब भाई-भाई, कपट खोट सब देहु बहाय॥१८॥
हिरदय खोलि मिलो आपसमें, प्रेम-भाव से लोग जगाव।
प्रेम-भाव से स्वाति पपिहरा, नभ मण्डल से पास में आव॥
यथा चकोरहिं सोम समझ कर, बरत अनल को जात चबाय।
कीट भिरिङ्गहिं प्रेम के बल से, लेवे अपनो रूप बनाय॥१९॥
प्रेम समान और नहिं जग में, लोहा लकड़ी संग तिराय।
प्रेम-रज्जु में सब को बाँधो, राग-द्वेष मन दूर कराय॥

देश-विनाशक जो जग माँहीं, दण्ड नीति से उसे मिलाव।
लोभी लम्पट कामी क्रोधी, निज स्वारथ रत दूर भगाव ॥२०॥
न्यायहीन अन्याय करत जो, सदाचार नहिं प्रेम लगाव।
निर उद्यम सह आलस में जो, मन्द बुद्धि नहिं सत्य कहाव॥
हिंसा कपट नारि पर चाहत, आपस में मत-भेद कराव।
पर दुख से जो दुखी न होवे, संतत जिसका क्रूर स्वभाव ॥२१॥
धर्म-हीन विश्वास-हीन जो, भ्रष्ट बुद्धि परदोष देखाव।
मादक मांस सकल का भक्षक, चरित्र विहीन सदा जेहि गाव॥
सो पापी हैं देश विनष्टक, दूषित सों व्यवहार बढ़ाव।
सह उत्कोच न्याय जो करता, प्रजा सु नाशक पाप कराव ॥२२॥
देश शत्रुवर उसको जानों, तिसको राज्य निकाशन न्याय।
क्षुद्र मानवी नीति न जाने, साहस रहित न संग लगाय॥
जड़वादी चितु विकाशवादी, भौतिकवादी का परित्याग।
सुन्नऽरु जीव उभयवादिन को, वेद ज्ञान से जो जन भाग ॥२३॥
धर्म रहित जो सभ्यवाद है, दुराग्रह हठवाद बखान।
पर सभ्यता का जो हैं प्रेमी, उनकी बात एक नहिं मान॥
गत प्रसाद दुष्कृत करत जो, मोह जनित जग जिसको त्रास।
प्रथम शत्रु पुनि मित्र होन चह, पर भूतल पर जाहि निवास ॥२४॥
सत्यासत्य विचार न करता, दोषादोष न जिसको ज्ञान।
जड़ प्रज्ञा कृतघ्न जो होवे, देश काल की बात न जान॥
दुष्ट स्वभाव संग दुष्टन का, नहिं ममता निज देशक मान।
चंचल मन मेधा हो दूषित, निज इन्द्रिय दमन नहिं ज्ञान ॥२५॥

राजनीति में इन्हें न लीजै, भूलेहुँ नाहिं करो विश्वास।
पूर्व कहे दोषन से गत जो, सभा काज में उसका वास॥
जिससे भला प्रजा-जन का हो, विज्ञानी सो करे विचार।
धर्म युक्त बिनु धर्म न होवे, देश काल सब बात निहार॥२६॥
धर्म अर्थ सुनिये मन लाई, सत्य शील संतोष क्षमा है।
दया विवेक धैर्य अक्रोधी, दान श्रद्धा दम मृदुल शमा है॥
ईश्वर भजन अहिंसा पालन, अन्तर बाहर शुद्ध रहाय।
मात पिता गुरु सेवा करना, वेद पठन संध्या सुकराय॥२७॥
सरल स्वभाव दम्भ दर्प गत, अहंकार अहमित नहिं जान।
पर अपवाद न पैशुन चोरी, रत वैराग्य आतमा ज्ञान॥
देश-भक्त मद मांस न खाता, न्याय युक्त सब हो व्यवहार।
सर्व मैत्री लोभ न जिसमें, पक्षपात नहिं परम उदार॥२८॥
ब्रह्मचर्य इत्यादिक् आश्रम, बाहर भीतर एक समान।
आलस निद्रा भोजन मैथुन, सब में करें विचार महान॥
सौम्य-भाव निति शान्ति जहाँ हैं, धर्म यही जानों नहिं आन।
मुनिजन यही धर्म कहि भाषा, यहि पालन होगा कल्यान॥२९॥
धर्म समान और नहिं जगमें, धर्महिं जानो मुक्ति दुआर।
चमत्कार में कभी न भूलो, जो विज्ञान विचार असार॥
व्यर्थ व्यय करना नहिं सुन्दर, जाते देश नाश हो जाय।
जिसमें रुचि नहिं हो जनता की, शासक उसको दूर भगाय॥३०॥
छोटे से छोटे दोषों पर, शासक संतत ध्यान लगाय।
छोटे से बड़ होत सभी हैं, बड़े भये तत् मूल मोटाय॥

अन्तर भीति खने जिमि मूसक, शनैः शनैः तत् देत गिराय।
यहि विधि छोट दोष है खोटा, लघु पिपील कुञ्जर मरिजाय॥३१॥
यथा गहेजुआ सर्प सिंह को, छोट कुल्हाड़ी विटप नशान।
समुचित यह राजा को चाही, रहे सतर्क सर्व में ध्यान॥
नीति निपुण सब गुण का ज्ञाता, जेते कला सकल का ज्ञान।
सिल्पादिक विज्ञान महा कृत, जेते सब को सिखे भवान॥३२॥
वैदिक धर्म तजे नहिं कबहूँ, चाहे प्राण रहे चलि जाय।
मीठा बैन कहे सबहिन से, सुन्दर नीति सर्व सुखदाय॥
मातृ-भूमि भाषा पर गौरव, कारज हेतु और सिखलाय।
भूषण वसन स्वदेशी पेन्हें, पर अनुकरण न करिये भाय॥३३॥
परकी चाल करे जो गरहन, सो बनता वाही का दास।
बने ऋणी नर वह भूतल का, दीन भाव रहता तिन पास॥
सो परतंत्र स्वतंत्र न होवे, निज पुर्वज का हो अपमान।
रहते सदा दासता माहीं, तिनका करे कौन सनमान॥३४॥
ते गंत्री जन पोट के वाहक, भृत्य अगंतुन के वह जान।
अर्ध रूपया के वह कारण, सो शठ को नहिं अपना ज्ञान॥
ऐसे को जीनाधिक जग में, जो नहिं गौरव अपना जान।
गौरवान्वित का यह लक्षण, कहता हूँ सुनिये करि कान॥३५॥
जो संतुष्ट रहे निज घरमें, रहे विधाता भाग्य विधान।
आपन कष्ट कभी नहीं बागे, सुख दुख माहीं एक समान॥
पर की आश न करता कबहूँ, निज बाहूँ बल कर्म महान।
इच्छा करे शैल मरदन की, काम कोई भी छोटा जान॥३६॥

प्राण रहे चाहे चलि जावे, शत्रुन आगे हार न मान।
नहिं अपमान सहे निज भू का, अपमानिन का हते कुप्रान॥
क्योंकि भूमि माता धाता मम, गुरु गोविन्द सबहीं कुछ जान।
बैठा रहे उठे वाहीं से, निज गुण से आपन कल्यान॥३७॥
अपने पूर्व पूज्य पुरुषों की, उन्नति करे अवन्नति हानि।
मात पिता गुरुजन की पूजा, प्रातः साम करे सनमानि॥
अवगुण तजे सुगुण को गहना, किसी जीव का नहिं अपमान।
नाना द्रव्य व्याप्त भू अन्दर, पता लगावे सह विज्ञान॥३८॥
कमी नहीं कोई वस्तुन की, रचा विधाता सर्व समान।
आवश्यक जो बात जगत में, मिले साधना से सच मान॥
नहिं निराश होना कबहीं तुम, भू माता का करो अराधन।
जानि अशरधा तेरी रे जन, रही छिपाये सब कुछ वह धन॥३९॥
निज करतव्य परायण हो तुम, पेट भरेगा जन्म जो देत।
जन्म नहीं तबहीं सब दीन्हा, तत् पद संतत प्रेम करेत॥
रूखा-सूखा खाकर अपना, पर पूवा पर करो न ध्यान।
पर से दीन-भाव नहि रहना, करे न रञ्चक सो अभिमान॥४०॥
जीर्ण-शीर्ण हो भवन आपना, उसमें वास करे सुख मान।
निज जन की रक्षा जो करता, गौरवान्वित उसको जान॥
त्याग करे कुप्रमाद व्यसन को, उद्योगहिं मन करे विचार।
श्री सुबुद्धि होत घर अन्दर, सकल बीपदा करत निवार॥४१॥
बने धनाढ्य देश उन्नत हो, औरन को सिखलावे सार।
सर्व विकार देश से भागे, मूरख बुद्धिमान हो पार॥

रहे स्वतंत्र नहीं पर के वश, पर का अर्थ सुनों इन्द्रिय गन ।
जो इनके अधीन रहता नर, सो संतत बहु कष्ट भोग जन ॥४२॥
होत पतन जो पर का चर है, निज स्वरूप का भूला ज्ञान ।
परमारथ गत सो भूतल पर, हो न कभी उसका कल्यान ॥
पर बल बुद्धि थहावन चाहे, सुस्थिर हो बैठो निज गेह ।
उसको उड़न देहु नहिं छेड़ो, अपना भेद कभी मत देह ॥४३॥
सहन-शक्ति को दृढ़ करि राखो, नहिं उबाल मन सदा सँभाल ।
तुम जानोंगे सब कुछ ताका, कपट खोट मन रचता जाल ॥
जो तुम अपनी उन्नति चाहो, दमन करो सब का हो नाथ ।
रुद्र के ऊपर बनो तुँ विष्णू, तब होगा भव महा सनाथ ॥४४॥
यह परतंत्र स्वतंत्रहिं जानों, इसका भाव यही सच मान ।
सदा सरलता सत्य रूप में, परहित में दुख मोद महान ॥
दैन्य-भाव हिरदय में जिसके, उतपन हाता धन्य वही ।
राम-राज्य उपलब्ध सदा तत्, सुख से सोता संत सही ॥४५॥
दीन-भाव से रोदन करता, अश्रू वाकी पोछत राम ।
धन्य पुरुष जो प्रेम से गाता, राम रिझाता लह विश्राम ॥
विनयी पुरुष सत्य का खाजी, विश्व विजय तत् प्राप्त हुआ ।
धर्माचरण करत जो संतत, अभिलाषा अति मान हुआ॥४६॥
पूरणता को प्राप्त सदा वह, धन्य दयालू पुरुष जगत ।
दया करत हैं राम उसी पर, जो दीनन का होत भगत ॥
जैसे राम कबीर कृष्ण थे, बुद्ध शंकराचार्य बताय ।
तिन समान तुम भी बनना जन, गाँधी जैसे बीर कहाय ॥४७॥

तभी भलाई होगी तेरी, जन्म-मरण से मुक्ती पाय।
सदा अछल पर के हित में रह, दया-भाव उर माँहि रहाय॥
अन्तःकरण शुद्ध जिनका है, राम मिलन का मारग सोय॥
पर उपकारी जग में जेते, तिन्ह समान और नहिं कोय॥४८॥
शान्ति स्वभाव प्रचारक जो जग, कृतिवान इमि पुष्प खिले।
वैर भाव से रहित सदा जो, जग का नेतृत्व ताहि मिले॥
धर्म सनेह सदा जिनको है, ईश कृपा करि पार उतार।
दम्भ दोष नहिं जाके उरमें, सहन शील कर राम पियार॥४९॥
मार खाय जो ताहि न मारे, वाके हित की बात बिचार।
प्रेम भाव संतत उर माँही, सो निश्चय होगा भव पार॥
जो नहिं घिरणा किसी से करता, परम प्रभु सब माँहिं निहार।
बैठि राम के दरवाजे पर, खट-खट करता राम किवार॥५०॥
मिले प्रेम की कुञ्जी वाको, खुले कपाट पिया सन भेट।
आदि अन्त औ युग-युग प्राणी, नारि पुरुष दोनों सह लेट॥
अपने को तुम देहु मिटाई, शुभ अरु अशुभ उभय का त्याग।
साधु गँवासा में सम प्रज्ञा, निन्दा विनय उभय से भाग॥५१॥
करे अमंगल जो नर तेरा, तिन प्रति मंगल भाव दिखाय।
दायें मलपट पर जो मारे, बायाँ भी तिन देहु बताय॥
तव मारग में बूने कंटक, तिनि मारग तुम कुसुम बिछाव।
जग की चाल चलो नहिं भाई, तुम नव मारग नित्य बनाव॥५२॥
करे शत्रुता प्रेम दिखावो, लूटे सम्पति क्षमा स्वभाव।
गाली देत अशीश तुँ दीजै, निज स्वभाव सब दोष बचाव॥

जो अनार्य तिन आर्य बनाओ, भेद भाव तहँ करो अभेद ।
पर की हिंसा कभी न करना, पाप कर्म पर करिये खेद ॥५३॥
दीन दुखी पर करुणा कीजै, सकल संत कह वरनत वेद ।
अपराधिन पर कोप न कीजै, बालक रूप न ताको छेद ॥
तुम बन शैल भूमि वन सागर, सुस्थिर रहिये एक समान ।
कोटिन झंझावात जु आवत, ते नहिं डिगते बड़े महान ॥५४॥
जौन कर्म जिनका है भाई, सो-सो करते निश्चय जान ।
साधु कर्म संत नित करता, हत्यारा हत पर का प्रान ॥
अग्नि जलावे वारि बुझावे, इत्यादिक जग का व्यवहार ।
आगे कहूँ प्रमाण मुनिन का, जिनको जाने सब संसार ॥५५॥
मुनि वशिष्ठ का करो अनुकरण, पुनः विष्णु भगवान को देख ।
कौशिक वरुणज की जो करणी, अतः पुरातन देख तुँ लेख ॥
यहि पालत सब पूज्य भयो हैं, आर्य मुनिन का यह उपदेश ।
गुप्त रूप में करतब करना, जानि न पावे कोई देश ॥५६॥
ताको देखि सभी भय खाते, जो नहिं अपना देवे भेद ।
राजनीति यह परम सुदृढ़ है, याको बरनन करते वेद ॥
पर अनुकरण नीति नहिं कीजै, जो म्लेच्छ मुनि वेद विरोध ।
जो अभाव अपने में देखो, तामें संतत करिये सोध ॥५७॥
हिंसा दो प्रकार की जग में, ताका सुनिये सकल विचार ।
एक स्वभाविक होत सतत है, अस्थावर उद्भिज संसार ॥
करने से होती जगमें इक, तामें दोष कहा गुरु राय ।
मत्स्य अजा सुत मानव पशु जो, बिनु कारण यह दोष बताय ॥५८॥

हिंसा और अहिंस भाव को, ताको सुनो पुनः चित लाय ।
सह कारण हिंसा जो होती, सो तो धर्मरूप जग भाय ॥
देश विध्वंसक जो दुख दायक, लूट-पाट जो लोग मचाय ।
देश विनष्टक यथा मलेच्छन, तिन्ह मारे नहिं दोप बताय॥५६॥
जिस विधि पावे उस विधि मारे, राज विनष्टक जो जग भाय ।
सदा सतर्क रहे दुष्टन से, विना दोष नहिं तिन्हें सताय ॥
जिस विधि रक्षा देश आपनी, बुद्धिमान सो करैं विचार ।
क्योंकि धर्म अहिंसा जो है, बिनु रक्षा नहिं तासु उबार ॥६०॥
जिस प्रकार हो सत्य कि रक्षा, वह भी जानु अहिंसा गाय ।
याते यह विचार निति राखो, बिनु कारण हिंसा कहलाय ॥
बिनु हिंसा के नहीं अहिंसा, बच सकती सुनिये मम भाय ।
याते हिंसा परम अहिंसा, जो रक्षा सब देश कराय ॥६१॥
हिंसा दोष रहित जो प्राणी, ताको कभी कष्ट नहिं होय ।
हिंसक से हिंसक भी प्राणी, तत् समक्ष हो शान्त जु कोय ॥
हिंसा बड़ी नीच वस्तु है, सदा भयंकर दे दुख भूरि ।
सर्प सिंह चोर हत्यारा, जन समूह से रहते दूरि ॥६२॥
क्योंकी भय इनको निति व्यापे, निज कृत को रखते हैं ध्यान ।
सावधान हो रहते जग में, भला बुरा का इनको ज्ञान ॥
प्रति सोधिन से सदा डेरावें, हिंसक प्राणी जो जग कोय ।
याते हिंसा कभी न करना, इनसे ज्ञान आप को होय ॥६३॥
सहन शक्ति को सदा बढ़ावो, कोटिन कष्ट आप सहि लेय ।
काइक बाचिक और मानसिक, तीनहुँ से कुछ दुख नहिं देय ॥

तिन सम जग में और न कोई, निज बैरी को देवे मान।
सर्व तीर उसकी सह लेवें, सदा बचावें आपन प्रान ॥६४॥
काम क्रोध मद लोभ ईर्ष्या, राग द्वेष इच्छा इत्यादि।
मन के धर्म स्वभाविकये सब, सदा अकारण होते आदि ॥
इन धर्मन में लिप्त न होना, वास्तविक ज्ञान वही का जान।
फेन बुद्बुदा जल विकार ज्यों, तैसे यह मनके सब ज्ञान ॥६५॥
इन तजि परम रूप में राजो, सुस्थिर जलनिधि जैसे होय।
चारि मास कितनो जल वर्षे, घटे बढ़े नहिं समचित सोय ॥
इस सुमार्ग पर चले सतत जो, मातृभूमि से प्रेम सदा हो।
सदा सुखी सम्पति घर माहीं, हो दरिद्र नहिं देश कदा हो॥६६॥
नारि पुरुष वह नहीं नपुंसक, सत्यासत्य विलक्षण रूप।
यह चिन्तन नर अब तुम कीजै, नहिं दरिद्रता होगे भूप ॥
आदि अन्त नहिं परम शाश्वत, वन्दीछोर कबीर महान।
रामनाम तत् नाम पड़ा है, महा मंत्र जानो बलवान ॥६७॥
मेटत कठिन कुअंक भाल के, करता जप निशिवासर जोय।
सकल पाप मन तनके जाते, राम रमा संतत जो होय ॥
दया धर्म यह परम भजन है, कवि की वाणी परम ललाम।
विषय व्याल कछु करि नहिं सकता, धन-सम्पति दैवी हो धाम॥६८॥

सोरठा

हो दरिद्र नहि देश, यहि सुमार्ग जो पाँव धर।
गंगा कह उपदेश, महिमा भारत भूमि की ॥ १ ॥

❋ षष्ठ अध्याय समाप्त ❋

सप्तम-अध्याय

अमर वाणी

मुक्तक छन्द

वन्दौं दीन-दयालु दीन को पालनहारा।
स्वामी ज्ञानागार मोह भव सकल विदारा॥
आवागवन विमुक्त नित्य आनन्द उदारा।
बार-बार पद कमल नमोहम जो पूरण करतारा ॥१॥

वीर छन्द

भारत देश पुनर्जीवित कर, मुनिन धर्म का हो सु प्रचार।
वैदिक धर्म मुनिन प्रभु निर्मित, ताका पुनः होइ उद्धार॥
देश सुखी करुणामय कीजै, सत्याचार सदा व्यवहार।
जन गंगा की विनय यही है, गुरु कबीर हो भव पतवार ॥२॥

हरिगीतिका छन्द

अति अगम यह संसार है, जैसे जलधि जग दीपता।
यहि देखि के भयभीत हम, बिनु नाथ के कर मिशता॥
कहिये कृपा करि हे गुरो, किमि आसरय हम डूबता।
दुर्वासना लहरी विषय, नितान्त मन मम ऊबता ॥१॥
परमातमा परमेश जो, गुरुदेव को तुम जानि ले।
नौका उभय पद कमल है, भव-सिन्धु में दृढ़ मानि ले॥
कर प्रेम तुम निति चरण में, तर जायगा संशय नहीं।
मुनि पुंगवों का बचन हैं, पुनि पूछ ले जाकर कहीं ॥२॥

गुरुदेव की किरपा बिना, कुछ भी न हो सकता कभी।
जप-तप करे कोटिन करम, साधन करे जग में सभी॥
गुरुदेव बिनु निस्फल सकल, भगवान भी मिलता जभी।
अज्ञान बंधन नहिं कटे, सुश्चित गुरु करुणा तभी॥३॥ (५॥)
है वद्ध को संसार में, विषयादि में जेहि राग है।
निरबंध पुनि को है गुरो, विषरूप विषयन त्याग है॥
को घोर निरयो है कहो, निज देह में अभिमानता।
पुनि स्वर्ग पद क्या वस्तु है, तृष्णा सकल जो नाशता॥६॥
जन्मादि दुख का नाश कब, जब आतमा का ज्ञान हो।
है कौन साधन तासु का, सत्संग में करु ध्यान हो॥
को नरक द्वारा कामिनी, दुख देत कौन सु योषिता।
निर्वैर को हिंसा रहित, अप अन्न से वपु पोषिता॥७॥
सुखनीद में को सोवता, सुनि मग्न हरिपद गत्य में।
को जागता दिन रैन है, सु विवेक सत्यासत्य में॥
बैरी बड़े को इन्द्रियन, को मित्र-गण परिरक्षकम्।
को आपना को अन्य है, सुख देत जो निति भक्षणम्॥८॥
को है दरिद्री जगत में, जिसको महा तृष्णा लगी।
धनवान को संसार में, जिसकी सभी इच्छा भगी॥
जीतेहिं को शव सम अहा, निरउद्यमी को जानिये।
गत प्राणमय जीवित कवन, शुभ कीर्तिवानहिं मानिये॥९॥
वास्तव में फाँसी कौन सी, मैं तोर मन का भावना।
क्या हैं सुरा समकक्ष में, बाला जना मुनिवर भना॥

जग में अविद्या कौन सी, मन मोह माया कामिनी।
नहिं सत्य में सद्भावना, दिन मानता जो निशथिनी॥१०॥
अज्ञानियों में अज्ञ वह, रहता सतत संसार में।
दामिनि यथा चंचल रहे, मद मोह के व्यवहार में॥
अंधा कौन संसार में, जो मार के वश में रहे।
गत अक्षि किस को नेत्र है, अज्ञान पट उर के दहे॥११॥
बैराग्य में रहता सदा, संसार की नहिं चाहना।
गृह में रहे त्यागी रहे, सम भाव संतत जानना॥
देखे सकल संसार को, वैराग्य के उन्माद से।
अविचल रहे वैराग्य जब, बचता तभी कुप्रमाद से॥१२॥
को हैं गुरू कहिये भला, उपदेश हित का जो करे।
को शिष्य है गुरु-भक्त जो, तत् वचन मारग उर धरे॥
क्या भक्ति है गुरुवर कहो, अनुराग से हरि को भजे।
तबहीं मिले परमातमा, जब मोह माया को तजे॥१३॥
को दीर्घ रोग भयावना, भव एव साधो जानिये।
तत् रोग भेषज कौन सी, सु विचार सार सुमानिये॥
आभूषणों में प्रेय भूषण, कौन है सो भी कहो।
निज चरित जो अति शुद्ध हो, वह श्रेष्ठ है उसको गहो॥१४॥
सब तीर्थ में वर तीर्थ को, परिशुद्ध निज मन आतमा।
क्या है सुव्रत उपवास शुभ, निति वचन बोले उत्तमा॥
क्या-क्या त्यजन के योग्य है, नारी कनक विषरूप जो।
क्या श्राव्य नितहीं चाहिये, गुरु वेद वाक्य अनूप जो॥१५॥

क्या साधना ब्रह्म-प्राप्ति का, सद्वस्तु संतन संग है।
पुनि तोष सात्त्विक दान है, ईश्वर भजन तत् अंग है॥
को है महा मुनि शांतिवर, अज्ञान जिसका नाश है।
संतत स्वतत्त्व विचार में, परमातमा की आस है॥१६॥
आशा न बासा कल्पना, रह मुक्त सारे दोष से।
देखे जहाँ हरि आप को, नहिं बोलता जो रोष से॥
सब से सबल को सत्य है, झूठा लघू जग जानिये।
त्यागी कवन आशा नहीं, उन्मत्तता गत मानिये॥१७॥
पञ्चक विषय को जीत कर, साक्षी बना संसार में।
मु विदेह उसको जानिये, फँसता नहीं व्यवहार में॥
किन संग में सुख प्राप्त हो, पंडित विमल मति मुनिवरा।
तिन साथ संतत कीजिये, बोले बचन सुन्दर खरा॥१८॥
सबके लिये क्या ज्वर अहा, चिन्ता महा दुखदायिनी।
अनभिज्ञ कौन विवेक गत, निज मृत्यु क्या अपकारणी॥
अति रम्य क्रिया कौन है, शिवरूप ईश्वर भक्ति जो।
जीवन कौन सुखमय सदा, संसार में नासक्ति जो॥१९॥
कर्तव्य क्या मेरे लिये, बुध वेद में करु प्रेम रे।
उपदेश तिन पालन करो, संतत करो पुनि नेम रे॥
अपशब्द नहि बोलो कभी, इसके लिये साधन करो।
सब इन्द्रियों को बाँधकर, सनमार्ग में चित को धरो॥२०॥
हिरदै पिछानो सर्व का, मानव कौन कैसा अहा।
परिचय बिना बुध लोग को, जग जीव देते दुख महा॥

सनमान करना सर्व का, जिस योग्य जो मानव सदा।
विद्या पढ़ो ज्ञानी बनो, अपमान नहिं करना कदा ॥२१॥
वास्तव में विद्या कौन सी, निज रूप प्राप्त करावती।
है ज्ञान उत्तम कौन पुनि, जो जन्म-मरण मिटावती॥
को लाभ परमातम मिले, नहि कष्ट का कहुँ लेश है।
विजयी कौन संसार में, मन जीत कर अकलेश है ॥२२॥
पुनि बीरहूँ से बीर को, झखकेतु सर व्यथितो नहीं।
धीमान समदर्शी कवन, नहिं खेद तन व्यापे कहीं॥
पुनि धीर परम गँभीर को, वामा कला नहिं प्राप्त हो।
मानव कौन सुविचार युत्, शीतल सदा नहिं ताप हो ॥२३॥
विष से भी भारी बिष कवन, सारे विषय जो भोग हैं।
संतत दुखी को पातकी, सासक्त भग जो लोग हैं॥
को धन्य हैं संसार में, करते जो पर उपकार हैं।
के पूजनीया हैं अखिल, शिव तत्व निष्ठाधार हैं ॥२४॥
मरणान्त तक विद्वान को, क्या-क्या नहीं करना अहा।
संसार से नहिं नेह हो, नहिं पाप करना मुनि कहा।
बढ़ता प्रथम को जगत में, जो पाप करता घोर है।
पुनि नाश होता अन्त में, जो मूल शाखा चोर है ॥२५॥
प्रथमे अवृद्धी कौन की, धर्मातमा हरि भक्त की।
वह स्वर्ग गामी अन्तमें, जिसको न आशा मर्त की॥
क्या करन को अनिवार्य है, सत कर्म जो निज धर्म का।
सद्ग्रन्थ वचन विचार नित, पाले धरम निर्दम्भ का ॥२६॥

जनि-मरण का क्या मूल है, संसार चिन्ता वासना।
विज्ञानियों में दक्ष को, जिसको न नारी भावना॥
काहेंक नारी निन्दिये, यह तो पिशाचिन रूप है।
इसके जु बन्धन रहित हैं, सोई महा बुध भूप है॥२७॥
क्या शृङ्खला सब के लिये, नारी जु हँसिके बोलती।
मोहे बड़े बड़ लोग को, जप योग तिनका खोवती॥
उत्तम महा व्रत कौन है, सबसे विनय सद्भावना।
हरि रूप सबमें देखते, दासत्व उर में आनना॥२८॥
क्या जानना सम्भव नहीं, बाला चरित को जानिये।
क्या त्यागना अति कठिन है, जग भोग वामा मानिये॥
वह सार कौन असार है, संसार माया जाल जो।
मन मोहनी किमि कामिनी, प्रत्यक्ष यह जम काल जो॥२९॥
को हैं वृषभ संसार में, विद्या रहित सद्ज्ञान से।
पापी महा को कामरत, भूला हुआ अज्ञान से॥
किन-किन के संग निवास नहिं, नहिं साथ करना चाहिये।
मूरख महा जो नीच है, खल पापरत से जानिये॥३०॥
सुखिया सदा को है कहो, षट दोष से जो रहित हैं।
जो मद्य पैशुन दम्भ चोरी, वाम पर से रहित हैं॥
सु प्रकाश को संसार में, वह आठ गुण जिस में रहा।
बल दान प्रज्ञा श्रवण दम, मौनी सुकुल सुयश कहा॥३१॥
जो चाहता निर्वाण पद, करना त्वरित क्या सो कहो।
सत संग ममता त्यागना, गुरु राम पद हिरदै गहो॥

क्या जाल है सब के लिये, जग मोह माया भामिनी।
यह जाल से नहिं छूटता, भक्षण करे इमि बाघिनी ॥३२॥
छोटेपने का मूल क्या, जो मागनों कुछ माँगता।
अति श्रेष्ठ जनका चिन्ह यह, गहि मौन नहिं कछु जाँचता ॥
किसका जनम सुन्दर सुखद, जो गर्भ में नहिं आवता।
किनका मरण सु सराहिये, जो मृत्यु नहिं पुनि पावता ॥३३॥
जो मुक्त होता कौन है, निज रूप का शुभ ज्ञान है।
संसार से रहता विमुख, बस राम का ही ध्यान है ॥
गुंगा कवन है हे गुरो, बधिरा पुनः बतलाइये।
कहता उचित जो बैन नहिं, आये समय भग जाइये ॥३४॥
सुनता यथारथ वाक्य नहिं, हितकर भी है तो भागता।
है बधिर से भी बधिर वह, पुनि पुनि नरक में जावता ॥
विश्वास पात्र न कौन है, नारी वो चुगुला नृतका।
किन किन नहीं घर राखना, तनुजा वो वैरी मृत्तका ॥३५॥
इक तत्त्व क्या है सो कहो, परमातमा गत द्वैत हरि।
उत्तम कौन सब में सदा, शुद्धाचरण सुसर्व परि ॥
दूषित कौन सब त्याज्य है, इत उत लगाता झागरा।
संदेह रखता मित्र में, विश्वास नहिं वह बावरा ॥३६॥
क्षण रुष्ट हो क्षण तुष्ट हो, बिनु दोष प्रेमी त्यागता।
कृतघन कुटिल खल कामरत, दूषित वही सब भागता ॥
पुनि कौन सा वह सुख अहा, जिस को तियागन चाहिये।
जो काम क्रीडा वाम सुख, उससे सदा मन मारिये ॥३७॥

को आर्य और अनार्य हैं, किं कर्म गतऽदुर्व्यसन में।
क्या सत्य और असत्य किमि, परमातमा जो कथन में॥
नारी कौन को पुरुष है, स्वामी कौन को दास हैं।
निजतंत्र स्वामी पुरुष हैं, परतंत्र नारी दास हैं॥३८॥
क्या दान उत्तम देन को, करते अभय संतत लिये।
क्या लेन नीचहुँ से कहो, उत्तम जो गुण होवे हिये॥
को शत्रुओं से शत्रु वर, सब से बड़ा विघटक अहा।
सहकाम तृष्णा लोभ मद, अश्लील मन माया महा॥३९॥
वचना कौन विधि खलन से, चुपचाप तिन बानी सहे।
उत्तर नहीं देवे कभी, मधुरे बचन संतत कहे॥
जेते सुप्राणी जगत के, सबहीं करेंगे प्यार रे।
जग देव का सुमिरन करो, सब कामना को मार रे॥४०॥
शुभ गुण सदा शुभ कर्म में, संतोष नहिं करिये कभी।
जितना करो सब थोर है, नव वस्तु होगी प्राप्त भी॥
किसमें जगत सुस्थिर कहो, नभ में कहा यह मानिये।
यह शुन्न सुस्थिर कौन में, पर ब्रह्म में तुम जानिये॥४१॥
वह ब्रह्म सुस्थिर कौन में, सो आप अपने में कहा।
हैं सोम रवि दृष्टान्त में, जलधर यथा नभ में अहा॥
तिरपित विषय अरु भोगमें, होता नहीं सो कौन है।
वह काम युत मन मोह में, दुर्बुद्धि में रत जौन है॥४२॥
दुख मूल क्या है जीव को, ममता जो नामक दोष है।
तुण्डाभरण क्या वस्तु है, जो विद्वता प्रद मोष है॥

क्या एक होना चाहिये, नारी पुरुष हो एकहीं।
क्या लाभ इससे है कहो, ब्रह्मचर्य बुद्धि विवेकहीं ॥४३॥
पर बस कौन को चाहिये, नारी सु बेटा भृत्य को।
इस नीति में जो निति चरें, नहिं प्राप्त होता मृत्य को ॥
सच्चा करम क्या जगत में, कहिये मुने करुणामये।
सब प्राणियों के हित लिये, संतत जु अपना मन दिये ॥४४॥
संसार का उपकार करि, वह मुक्त होता है सदा।
करते करत निज प्राण गत, नहिं गर्भ में आता कदा ॥
मुनि कौन ऐसा कर्म है, करि के नहीं पछतावना।
भगवान मंगल रूप का, पूजा सदा मन लावना।४५॥
क्या नाश से सद्गति मिले, मन मूर्ख पापी नीच के।
किस में न संतत भय अहा, जो मुक्त होता ऊँच के ॥
पुनि कौन ऐसी वस्तु है. सब से अधिक जो चूभती।
उपकार गत निज मूर्खता, भव सिन्धु मध्य डुबावती ॥४६॥
समुपासना के योग्य में, को को अहा गुरुवर कहो।
परमातमा गुरु वृद्ध जन, मुनि सेव सज्जन की लहो ॥
असुहरन वाले काल के, आनेप करना क्या अहा।
धीरम्य है जिनकी महा, वर यत्न से गुरु क्या कहा ॥४७॥
सुख का भवन सुख देत जो, निज दास का यम बल हरे।
उस देव की कर वन्दना, पद कमल रज हिरदय धरे ॥
तस्कर कौन दुर्वासना, को संत है निर्मल मना।
शोभा सभा में को लहे, चारू सु कोविद मल हना ॥४८॥

माता यथा इस जगत में, किसका सुसुख अघटित अहा।
विद्या सुरम्य संजीवनी, ब्रह्म प्राप्ति जो मुनि वर कहा॥
विद्या कौन जैसे गरल, जिसमें सुबुद्धि अभाव है।
बक बक करे वायस यथा, नहिं बोध अपने भाव है॥४९॥
कर ज्ञान भाषा शब्द का, नहिं अर्थ का शुभ बोध है।
उसके लिये विष रूप है, नहिं ज्ञान गो जो सोध है॥
सनकादिकों से शिव कहा, यह बात साँची मानिये।
कर्तव्य बिनु नहिं मोक्ष हो, यह वेद वाणी जानिये॥५०॥
देने से बढ़ती क्या सदा, चारू जो विद्या ज्ञान है।
सब पाप ताप विनाशनी, करि पार सो भव यान है॥
किससे सदा डरना कहो, संसार वन अपवाद से।
किससे अभय रहना प्रभो, हरि-भक्ति गत उनमाद से॥५१॥
अत्यन्त प्यारा बन्धु को, दुर्दिवस में सुसहायका।
को जनक है पालन करे, पोषण करे सुखदायका॥
क्या समझने के बाद में, कुछ भी न बाकी समझना।
कश्मल रहित आन्नद घन, विज्ञान रूप कहावना॥५२॥
कल्यानमय परमेश जो, तिनको समझि नहिं समझना।
क्या जान लेने पर जगत, होता सुसत में जानना॥
सर्वातमा परिपूर्ण जो, पर ब्रह्म के निज रूप को।
तत जानि के जाना जगत, सब देव देवन भूप को॥६५॥
क्या है सुदुर्लभ जगत में, सत संग सद्गुरु देव हो।
सब त्यागि मंगल रूप का, चिन्तन भजन सत सेव हो॥

यह बात दुर्लभ लोक में, हरि ज्ञानमय से रहित जो।
सन्त के लिये क्या कठिन है, दुर्जय मनोभव कहित जो ॥५४॥
पशुओं से भी बढ़कर पशू, को है कहो करुणामये।
वेदादि का अध्ययन करि, नहिं धर्म पालन में भये ॥
कर-पाद से नहिं पुण्य भी, उपकार नहि बचनन किया।
सतसंग नहिं भगवान भज, गुरु को नहीं मन को दिया ॥५५॥
नहिं साँच शीतल बैन भी, नहिं शान्ति से जग में रहा।
नहिं प्रेम गुरुजन वृद्ध में, नहिं मातु पितु सेवा अहा ॥
नहिं ज्ञान भा निज रूप का, वह बैल से भी बैल है।
मेधा रहित तिन जानिये, पकड़े न आतम गैल है ॥५६॥
वह कौन सा वर विष अहा, जैसे अमी तस लागता।
देखे से नर मरि जात हैं, कामिनि कनक मन भावता ॥
बैरी कौन ऐसा कहो, जैसे सु मित्रहिं ज्ञात हो।
देते महा दुख को सदा, पुत्रादि हैं सुन तात हो ॥५७॥
क्षणभङ्गु क्या दामिनि यथा, धन यौवनायु जानिये।
क्या दान उत्तम सर्व में, सत्पात्र को दे मानिये ॥
उर प्राणगत होनेप भी, करना न क्या-क्या चाहिये।
नहिं पाप कर नहिं झूठ वद, शिवरूप अरचन धाइये ॥५८॥
निशदिन विशेष सु रूप से, चिन्तन करन को क्या अहा।
संसार मिथ्या नित्य नहिं, शिवरूप हरि चिन्तन कहा ॥
क्या कार्य उत्तम है सही, भगवान को जो हो प्रियः।
उसको प्रभू अपनावता, परत्यक्ष हो उसके हियः ॥५९॥

किस में सतत विश्वास नहिं, भूले भी करना चाहिये।
भव-सिन्धु धोखेबाज से, हुसियार संतत चाहिये॥
राजा कौन शुभ नीति युत, परजा दुखी नहिं तासु की।
को पूत है प्यारा सदा, अज्ञा न टारे जासु की॥६०॥
शरवण यथा निज प्राण तजि, माता पिता के कारणे।
निज देश रचा के लिये, धन धाम तन मन वारणे॥
निज पूर्वजों कि कीर्ति का, संसार में विस्तारता।
अभिमान रखता देश में, वह पुत्र पितु को भावता॥६१॥
नहिं हास्य करना भूल कर, अपशब्द नहिं बोले कभी।
माता-पिता गुरु सामने, शुचि शून्य नहिं रहना कभी॥
को भामिनी सुखदायिनी, पतिवर्त जो पालन करे।
सरिता कौन सुन्दर सुखद, सब काल में तिरषा हरे॥६२॥
पंडित कवन जो सर्व हितु, क्या साधुता निष्पक्षता।
उपदेश दे हरि को भजे, संतत रहे गत द्वन्द्वता॥
को शूद्र है भगवान रत, सुमिरन करे निति प्रेम से।
को वैश्य है व्यवहार सत, पालन करे निति नेम से॥६३॥
को देश सुन्दर पावना, भारत गुरू संसार का।
को धर्म चारू आर्य का, जो वेद है कर्तार का॥
यह है कहां तक देश मम, सु प्रधान प्रथमे जो रचा।
उत्तर हिमालय शैल है, बंगाल वर्मा पूर्व चा॥६४॥
पश्चिम अरब सागर महा, दक्षिण में सागर हिन्द है।
तेहि बीच आर्यावर्त्त है, पावन सदा निर्निन्द है॥

आते जहाँ पर देव गण, इस भूमि के दर्शन लिये।
करते बड़ाई भूरि सब, आनन्द होता अति हिये ॥६५॥
भगवान का यह देश है, अवतार लेते हैं जहाँ।
उनके सभी हम पुत्र हैं, देते सुदर्शन जो यहाँ॥
पावन करत इस भूमि को, निर्मल सभी होते यहाँ।
इसके लिये लोभी सभी, कुअनार्य जन जो हैं कहाँ ॥६६॥
सबहीं धरम अरु सभ्यता, जननी सु भारत वर्ष है।
इसका सदा संसार में, मानों बड़ा उत्कर्ष है॥
उत्तम कौन सा सुख अहा, हरि प्रेमपद सुखदायिनी।
गज गामिनी जस चाल है, कोकिल बयन मन भावनी ॥६७॥
को है विटप बिनु नाथ हितु, बट पाकड़ी पीपल कहा।
दुग्धावती में श्रेष्ठ को, है दुग्ध अमिरित गो अहा॥
चहुँ सृष्टि में को श्रेय है, मानव सु उत्तम जानिये।
कर्तव्य क्या तिनका कहो, साधन समाधी मानिये ॥६८॥
बसना कहाँ दो चारि में, मन मैल नहिं व्यापे कभी।
क्या खाद्य तिन के योग्य है, शुभ अन्न इच्छा हो जभी॥
पालन करन को क्या कहा, निति नियम सत्य विचार से।
कहना न किन किन से बहुत, छोटे बड़े कु गँवार से ॥६९॥
को धर्म गरहन चाहिये, जिसमें न हिंसा हो कदा।
मनसा बचन निज कर्म से, निर्दोष रहता सर्वदा॥
वह परम पावन धर्म है, सब जीव देखें राम मय।
सोई सनातन धर्म है, उसको गहो आनन्दमय ॥७०॥

किस झूठि में नहिं पाप है, जो जीव रक्षा अन्य की।
किन को नहीं दुख व्यापता, जो संग रह हरिजन्य की॥
किनकी जगत सु सराहना, जो धाय के मिलते सदा।
सच्चा कौन जो कपट नहिं, झूठा कौन निष्कर्मदा॥७१॥
वर सिन्धु से भी श्रेष्ठ को, सम भाव रहते सर्वदा।
कोटिन विपति शिर ऊपरे, उद्विग्न नहिं होवे कदा॥
पापो महा को हिंसकी, मानव-जनम असफल गया।
पुनि कौन ऐसा पातकी, जिसने सुगति को पा गया॥७२॥
जो रुद्र को भी बस किया, पुनि तीस पर धावा किया।
पुण्यात्मा को नरक में, जो भोग सब में मन दिया॥
है नरक क्या सो भी कहो, निशदिन सदा दुख में पड़ा।
सुख का कर्म नहिं लेश है, दुख रूप नरकहिं में सड़ा॥७३॥
मीठा कौन दुख रूप है, छल की बचन उर घातिनी।
कडुआ कौन सुख रूप है, हित की बचन शुभ दायिनी॥
कण्ठस्थ क्या निति चाहिये, यमदूत गर्भक कष्ट को।
खाने से क्या झगरा गया, गम रूप अमृत मष्ट को॥७४॥
किस नगर में सुख है सदा, जहँ पाँच का बासा अहा।
राजा वैद्य पंडित नदी, जहँ साधु का वासा कहा॥
बूरा कौन सब निन्दकी, को श्रेष्ठ गत परपंच से।
सुखरूप को परमातमा, दुख लीन कौनऽबिवेक से॥७५॥
नहिं मित्र करने योग्य को, कौटिल्य धी हो शूद्रता।
विश्वास नहिं हो मित्र में, अन्तर भरी हो छुद्रता॥

वेश्या यथा निज भाव को, नहिं एक से हो मित्रता।
नहिं मित्र करने योग्य है, अति द्रव्य मन लालूपता ॥७६॥
आश्रम कौन सब से बड़ा, ब्रह्मचर्य अरु संन्यास है।
जिस में न कोई पाप है, जग दोष सर्व विनाश है॥
किस भाँति रहना जगत में, जैसे कमल जल में रहे।
किस भाव मनकी भावना, रवि सोम भूतन ज्यों कहे ॥७७॥
सुसतर्क रहना कौन विधि, जिस भाँति वायस रहत हैं।
गुण कौन विधि धारण करूँ, शुभ हंस जैसे गहत हैं॥
किस भाँति सब से मेल हो, सद्भावना सद् प्रेम से।
को धन सदा जो नष्ट नहिं, सत पंथ खर्चे नेम से ॥७८॥
उत्तम कौन सब वरण में, जो कर्म उत्तम करत हैं॥
को पार हैं भव-सिन्धु से, निज रूप में जो रमत हैं।
निज रूप अपना क्या अहा, परमेश पूरण ब्रह्म सो॥
रहता सकल संसार में, पुष्कर यथा निरभरम सो ॥७९॥
सब ओर मुख कर पाद है, पुनि आँख श्रुति सर्वत्र है।
सब पर प्रभू की स्वामिता, गुरुदेव आप स्वतंत्र है॥
जो भूत में व्रतमान में, जु भविष्य में पुनि होयगा।
सो सर्व पुरुषाकार है, देखा जहाँ तक जायगा ॥८०॥
त्रय पाद में सुस्थिर सदा, सब ओर देखो ब्रह्म को।
यह ज्ञान जब होगा तुझे, तब मेटिहो सब कर्म को॥
उगता सु प्रातः कौन है, प्रत्यक्ष मानों ब्रह्म है।
सब लोक को धारण किया, नाशे तिमिर जो भ्रम है ॥८१॥

यह रात्ति पति सो कौन है, इसको भी जानो ब्रह्म है।
सिंचन करे सु पियूष अज, परमार्थ रूपी कर्म है॥
यह नील क्या जो ऊर्ध्व में, अवकाश देता सर्व को।
वह भी कहा मुनि ब्रह्म है, जो बास देता खर्व को॥८२॥
यह मेदिनी भी कौन है, इसको भी जानो ब्रह्म है।
पोषण-भरण करती सदा, इसका यही शुभ धर्म है॥
यह शैल क्या सब से बड़ा, जिसमें रतन नाना अहा।
इस को भि जानो ब्रह्म, न्यारा नहीं हरि से कहा॥८३॥
यह कौन है वैश्वानरः, जो प्राण देता दान है।
इक भूत करता सर्व को, सनुमानिये भगवान है॥
यह मातरिश्वा कौन है, जिसके बिना जग शून्य है।
इस ब्रह्म का बाहुल्य गुण, सबको करे निष्खिन्न है॥८४॥
यह दण्डधर भी कौन है, करता निरीक्षण कर्म का।
सब से बली यह ब्रह्म है, अभिमान चूरण धर्म का॥
यह सर्वतोमुख कौन है, सब को जिलाता है सदा।
यह ब्रह्म पुष्कर नाम है, नहिं दोष इसमें है कदा॥८५॥
यह गहन घोर समूह क्या, सब रोग मर्दन जो करे।
यह बनस्पति जग ब्रह्म है, निन्नानवे गद को हरे॥
वह एक वृक्ष सु कौन है, जेहि तीनि शाखा जानिये।
सो ब्रह्म परमानन्द है, द्वै भूमि बलि पुर मानिये॥८६॥
हम तुम कवन सब ब्रह्म है, सारा जगत जो दीषता।
सब आप मेहीं आप हैं, पुनि आप अपने पीशता॥

चेला गुरू माता पिता, नारी पुरुष सब ब्रह्म है।
इस का बिलक्षण कर्म है, नहिं जानता कोउ मर्म है।८७॥
प्रथमे प्रकट सबसे कवन, यह घोर कर्मा जानिये।
यह विश्वकर्मा बीस है, रहता अकेले मानिये॥
नहिं दूसरा तेहि पास में, सूक्ष्म स्वरूप महान है॥
नहिं जानने में आवता, गोचर रहित भगवान है॥८८॥
संसार इस के पेट में, पुनि जगत से यह रहित है।
इस को जु कहता जानते, निज आतमा का बधिक है॥
विज्ञान यह सब था कहाँ, महतत्त्व में प्रनिविष्ट था।
महतत्त्व किसके आसरे, जो जगत सब का इष्ट था॥८६॥
यह जगत परलय काल में, होता विलीन सो कौन में।
उस ब्रह्म में वह कौन में, निज रूप भूम्नि विमौन में॥
अनुभव हमारा जानिये, नहिं बात यह परिकल्पना।
कीजै मनन निज धर्म में, तबहीं सकल को जानना।९०॥
जग धर्म क्या सो भी कहो, जिसमें सकल आनन्द हो।
बाधा न दे पर धर्म को, फूले फले स्वच्छन्द हो॥
वह धर्म नहिं किं धर्म है, पर को मिटावन चाहता।
उस को निकालो देश ते, सब धर्म नाशन चाहता॥६१॥
सुख दुःख कर दाता कवन, निज कर्म कोहीं जानिये।
बैठा हुआ चलता कौन, हरि भक्ति में रति मानिये॥
पहुँचा वहाँ त्रय घाट है, मन धोय के निर्मल भया।
त्रय काल का द्रष्टा बना, सत लोक में सहजे गया॥६२॥

चलते हुये बैठा कवन, संसारियों को जानिये।
नहिं भाव भक्ती राम की, संशय ग्रसित तिन मानिये॥
दोषी कवन सब से अधिक, पर वाम धन को हड़पता।
निस्तार किसका है नहीं, दम्भी सकल जग ठागता॥६३॥
किस राज माँहि प्रभूत सुख, दुर्नीति करहिं अभाव है।
राजा वो परजा एक मत, वह देश स्वर्ग कहाव है॥
को है व्याधि अनेकता, मतभेद आपस में जहाँ।
दिन-रात रुज के भवन में, नहिं नींद आती है तहाँ॥९४॥
उस देश की अति दुर्दशा, दुर्बुद्धि रहती है जहाँ।
अविलम्ब में वह नष्ट हो, सुख धर्म नहिं रहता वहाँ॥
याते कुमति को त्यागि दे, सब एक होकर काम कर।
शुभ बुद्धि को अपनाइये, अज्ञान आलस दोष हर॥६५॥
सु अजाद बैरी कौन है, जेहि राग-द्वेष न पर्श है।
सु प्रकाश वह आदित्य सम, करना ललित तेहि दर्श है॥
करना न दर्शन कौन का, मतसर असुइया निन्दकी।
निज मित्र में दुर्भावना, नहिं बुद्धि सुस्थिर मन्द की॥६६॥
कर मित्रता स्वारथ लिये, करता बड़ाई आपनी।
उस का न दर्शन कीजिये, जो ज्ञान ध्यान नशावनी॥
चिन्ता रहित को साधु हैं, सु अगाध मत जिनका अहा।
वह पूजनीये हैं सदा, करने लिये मुनिवर कहा॥६७॥
क्या जीव अरु परमेश में, अन्तर अहा सो भी कहो।
माया वशी सब जीव हैं, उससे रहित परमेश हो॥

सब कामनाओं से रहित, यह जीव मानों शीव है।
कहता अथरवण वेद ऋषि, नहिं भेद ईश्वर जीव है ॥९८॥
सु हिरण्यगर्भ स्वरूप धरि, करता जगत विस्तार है।
तेहि शक्ति है माया नटी, त्रयगुण्य रूपाकार है॥
तिसकी अनुज्ञा से वही, सरजन अवन नाशन करे।
गुरुदेव साक्षी रूप में, सब बात को देखा करे ॥९९॥
क्या रूप हैं भगवान का, सद्भावना सद्रूप सो।
तिस को भजो माया तजो, हरि-ज्ञानगम्य अनूप सो॥
देवाधि देवानन्द है, कारण निमित संसार का।
जैसे त्रयो उपलब्ध है, दृष्टान्त है कुम्भार का ॥१००॥
जो मूल कारण होत हरि, विनु नाश सब जग दीषता।
याते निमित अनिवार्य है, क्योंकि न तत्नद्रूपता॥
उसके प्रथम में क्या रहा, कुछ भी नहीं यह दृश्य था।
नहिं भूत पंचक दिवस निशि, रवि सोम नहिं जग शून्य था॥१०१॥
बिनु स्वाँस लेता स्वाँस वह, बिनु प्राण वह जीता रहा।
निज रूप में सुस्थिर सदा, नहिं खेद उसको मुनि कहा॥
तब जगत यह सब था कहाँ, कहिये गुरो करुणामये।
सूक्षम स्वरूप उस ब्रह्म में, पुनि ताहि से परगट भये ॥१०२॥
इच्छा किया मैं एक हूँ, बहु रूप होना चाहिये।
निज शक्ति को उत्पन किया, जगती सँवारन चाहिये॥
लीला महा उस देव की, कैसे कहूँ किस रूप में।
चिन्तन करूँ तेहि रूप को, विचरण करूँ उस भूप में ॥१०३॥

वह रूप बनना जो चहे, तेहि ध्यान संतत कीजिये।
हो जायगा संशय नहीं, सु प्रमाण कोटहिं लीजिये॥
क्या चाहिये सब को सदा, ब्रह्मचर्य साहस वीरता।
संतति जनन को अल्प करि, सब काज में धर धीरता॥१०४॥
भागो नहीं पीछे कभी, आगे बढ़ो रवि रूप में।
कर भूत भस्मी दुष्ट को, रक्षा करो महि भूप में॥
साहस बढ़ावो अति अधिक, रहना नहीं तुम चूप में।
उत्पाट शत्रुन् वृक्ष को, उस तीव्र मारुत रूप में॥१०५॥
निज इष्ट को भजता सदा, सब काज निर्भय हो करो।
निज पूज्य पूर्व महर्षियों, की बात को हिरदै धरो॥
गुण गर्व नहिं करना कभी, नहिं नाश होगा राति सम।
अभिमान माया त्याग कर, नाशो अविद्या मोह तम॥१०६॥
गुरुदेव बन्दीछोर जी, सब में करें सद्भावना।
सुसमाप्त प्रश्नोत्तर हुआ, गुरु राम किरपा जानना॥
यह नीति सुन्दरि पावनी, यहि मार्ग जो चलिहैं सदा।
संसार दुख व्यापे नहीं, सुख-सिन्धु में सो सर्वदा॥१०७॥
इह लोक में परलोक में, आनन्द में सो राजहीं।
करुणा सु राम कबीर की, दुख द्वन्द्व जेते भाजहीं॥
जय दीनबन्धु कबीर हे, जय पतित-पावन नाम है।
अम्भोज भव तव हे गुरो!, आश्चर्यमय सब काम है॥१०८॥
जय नाथ निर्गुण ब्रह्म हे, जय आदि अन्त अधार है।
जय सहस पुरुषा सहस मुख, बिनु पाणि पद करतार है॥

जय अकल अज तुँ अनीह है, अव्यक्त प्रभु अस्तब्ध हो।
जय नार रूप नरायणों, जय ध्यान से उपलब्ध हो॥१०९॥
जय अन्तर्यामी आतमा, जय यक्ष रूप अनाश हो।
जय भक्त के भवयान हे, ऋग साम यजु अथ भाष हो॥
जय विश्वरूपाधार हे, जय पारब्रह्म निरञ्जना।
जय राम नाम नमामहे, जय मोह माया भञ्जना॥११०॥
जय काल रहित अकाल हे, जय रुद्र रूप भयावना।
जय जगत स्रष्टा सर्व द्रष्टा, जय प्रभू भव तारना॥
जय विष्णु व्यापक सर्व में, सुमुदाननं मंगल मये।
पोषण भरण संसार का, सात्विक प्रभू आनन्दये॥१११॥
विधि रूप धरि उत्पन करे, जग जनक है मुनि वर कहे।
त्रय रूप राम कबीर को, मनसा वचन प्रणमामहे॥
जय अन्न मय प्राणेश्वरा, जय भू स्वरूपी देव हे।
गुण अमित है तव वेद कह, जय ओम रूप अनाम हे॥११२॥
जय जातवेदा पवन हे, सब जगत को सुख दे रहे।
सब को सदा संचालकः, इस हेतु मैं प्रणमामहे॥
जय अम्बु व्योम स्वरूप हरि, जय दीन-बन्धु दिनेश्वरा।
जय सोम रूप सुधाकरा, जय सुरगुरू सु गणेश्वरा॥११३॥
जय दिव्य बल अमरेश प्रभु, तव बास पाणी में रहे।
जय बोध चित्त धनेश विभु, जय वरुण रूप नमामहे॥
जय शेष रूप अखण्ड है, जो शेष परलय में रहे।
जय मित्र तेज अपार प्रभु, जय काल रूप महेश हे॥११४॥

जय शक्ति रूपाधार जग, जय मातु मम सु उदार हे।
जय आदि ब्रह्म स्वरूपिणी, तव पाद पद्म नमामहे॥
जय जगत योनि प्रजेश्वरी, जय जगत परजा वरधनी।
जय सर्वशक्ति रमेश्वरी, जय पार भव से कारनी॥११५॥
जय जीव रूप अनन्त विभु, मन रूप वेग महान हे।
जय प्राण व्यान उदान हे, सु समानऽपान नमामहे॥
जय देव चेतन सर्व में, देवाधि पति सर्वेश्वरा।
जग कार्य हितु बहु रूप हरि, तुम एक हो परमेश्वरा॥११६॥
तुम ईश अल्ला गाड हो, पुनि अहुर मज्द महान हो।
तुम हो सु देवी ग्रीक को, पुनि शाक्य मुनि भगवान हो॥
जो है सकल की मान्यता, विज्ञान नास्तिक वाद भी।
तुम इष्ट हो सब के प्रभू, नहिं है तुम्हारा आदि भी॥११७॥
जय कमल नन्दन काल भञ्जन, दास मन रञ्जन अहे।
जय दीन बन्धु कबीर हरि, जय राम नाम नमामहे॥
जय ज्ञान रूप निरूप मुनि, हम ध्यान धरता हे प्रभो।
जय देव विघ्न हमार हर, माता पिता तव हे विभो॥११८॥
मैं दीन रुज व्याकुल सदा, तव शरण में अब आ रहे।
संकट हमारा दूर कर, गुरु विश्व वैद्य नमामहे॥
ऐसी दया अब कीजिये, मन इन्द्रियाँ बस में रहे।
कि मार्ग में नहिं जा कभी, तव ध्यान में संतत रहे॥११९॥
बिनती सुनो अब हे गुरो, मम बार-बार पुकार हे।
जय दीन बन्धु कबीर हरि, तव पाद कमल नमामहे॥

सत कर्म की मम बासना, पाखण्ड से पिरथक रहूँ।
जिस भाँति मम कल्यान हो, ऐसी गिरा संतत कहूँ ॥१२०॥
विस्मरण सुमिरण में तथा, सम्पद विपत में सम रहे।
मम भ्रष्ट बुद्धि न हो प्रभो, गुरु बन्दीछोर नमामहे ॥
जितने करम दूषित जगत, तिन में न मम सु प्रवृत्ति हो।
आसा तुम्हारे नाम की, मन में सदा सुनिवृत्ति हो ॥ १२१॥
भूलूँ न कबहीं आप को, आजन्म तक सुमिरन रहे।
चिन्तन करूँ तव रूप को, श्रीराम नाम भजामहे ॥
इक बार पुनि अवतार ले, संसार संकट दूर कर।
भूले हुये जग जीव को, तिन का सकल अज्ञान हर ॥१२२॥
सत पंथ को दर्शाइये, जाते सभी जन सुख लहे।
गुरु देव ब्रह्म अखण्ड हे, अखिलेश्वरं प्रणमामहे ॥
तुम तेज मय हो तेज दे, तुम बीर्य मय बल मय प्रभो।
ओजो मयः शुभ शांति मय, मन्यू सहो मय हे विभो ॥१३२॥
तुम यज्ञ मय सुहविष्य होता, वेद मय ब्राह्मण अहे।
तुम सर्व शक्तीमान हो, आकाश ब्रह्म नमामहे ॥
आनन्द मय विज्ञान मय, मंगल मयो तुम हे गुरो।
तुम दान यह जन को करो, लक्षण तुम्हारा जो वरो ॥१२४॥
समता दया क्षम तोष को, सुविवेक ज्ञान उदार हे।
तव ध्यान में मन रत रहे, करुणा यही प्रणमामहे॥
तव रूप हम भी हे गुरो, भव भ्रान्ति से भय दूसरा।
घट व्योम सम लघु जानिके, वर काय को हम बीसरा ॥१२५॥

तुमहीं सकल मैं हूँ कहाँ, दूजा विनश्वर मुनि कहे।
अब दास गंगहिं एक कर, इच्छा यही सु नमामहे॥
यह देह घोर समुद्र है, कामादि जल जन्तू अहा।
तिन मध्य में हम आ फँसे, नित ग्रसन चह वर बल महा॥१२६॥
अब नाथ बिनु हम हे गुरो, नहिं दृष्टि में कोइ आ रहे।
नैराश्य नित व्याकुल महा, धावो प्रभो सु भजामहे॥
यह दुष्ट सर्व कुबुद्धि हैं, नीचे डुबावन चाहते।
सत पंथ से बिचलाइ के, भव पंथहीं में डारते॥१२७॥
जिसको त्यजन हम चाहते, उस ओरहीं सब जा रहे।
मम चलत नहिं कछु एक भी, इस हेतु राम भजामहे॥
इन खलन को अब दण्ड दे, आनंग मन व्योमोद्भवम्।
सुस्थिर रहें कश्मल रहित, तव भजन करि पद्माद्भवम्॥१२८॥
हे नाथ सुनिये विनय मम, भव पोत पार उतार ह।
निज शरण में अब राखिये, तव नाम नित्य भजामहे॥
करुणा सु दृष्टि बिलोकिये, श्री राम परमागार हे।
तव दास पास विराज हम, कर बद्ध करत पुकार हे॥१२९॥
नैराश्य नहिं हरि कीजिये, मैं घोर पतित उबार हे।
कपटी कुटिल खल कामरत, श्रीराम शोभा धाम हे॥
अपनाइये मुझ अधम को, तुम सर्व रूप कबीर हे।
तुम परम पावन अघ नशावन, धीर अति गम्भीर हे॥१३०॥
संसार वृक्ष अनादि विभु, प्राकृत जगदाधार हे।
अव्यक्त व्यक्त स्वरूप जुग, तव पाद पद्म भजामहे॥

तव सर्व रूपों की विनय, श्री राम सत्य कबीर मय।
व्यापक विभू सब ज्ञानि के, वन्दन किया गुरु राममय ॥१३१॥
श्री राम सत्य कबीर हरि, मम आपहीं आधार हैं।
हरि बाँह गहि भवपार कर, तव पाद पद्म भजामहे॥
जय जय निरञ्जन देव हे, जय जय प्रभो सुख धाम हे।
जय जय कबीरं रामजी, जय जय परम अभिराम हे ॥१३२॥
जय जय मनोहर रूप है, जय जय प्रभो गत काम हे।
जय जय तुम्हारी वन्दना, जयजय परा परधाम हे॥
जय जय अखण्डानन्द हे, जय जय तुम्हारा नाम है।
जय जय प्रभो आवो यहाँ, मम बार बार प्रणाम है ॥१३३॥
जय जय तुम्हारा स्वागतं, जय जयति पूरण काम हे।
जय जय सदा जयकार है, जय जय मची सब धाम है॥
जय जय सदा ध्वनि होत है, जय जय हमारी बन्दना।
नहिं पास में कछु औंर है, बल बुद्धि नहिं धामो घना ॥१३४॥
निःसार शुन्न शरीर है, नहिं दक्षता न उदारता।
केवल यही पद वन्दना, गंगा कबीरहिं भावता॥
हे नाथ अब कर दे दया, तुम विश्व रूप निरञ्जना।
सद् भावना मम मन बसे, संतत करूँ तव वन्दना ॥१३५॥
जय राम राम रमा पते, जय राम सब दुख भञ्जना।
जय राम राम कबीर हे, होती सदा मम गंजना॥
जय जय हरे हरि राम हे, जय जय प्रभो घट में बसो।
जय जय कबीरहिं मैं भजू, जय जय हमारे उर धँसो ॥१३६॥

यह गीति भीति निवारनी, जो पाठ करि हैं प्रेम से।
धन धाम सुख जन पावहीं, रहते जगत में छेम से॥
रोगादि तन व्यापे नहीं, निर्वाण पद सो पावता।
मंगल सदा सु प्रसन्न मुख, यह दास गंगा गावता॥१३७॥

* सप्तम अध्याय अमर बाणी समाप्त *

अजर वाणी

अष्टम अध्याय

दोहा—वन्दौं राम निरञ्जना, ब्रह्म नाम :सुख रूप।
ओम् नाम गोविन्द हरी, नमो नमो मुनि भूप॥ १ ॥

हरिगीतिका छन्द

प्रश्न

गुरुदेव देव कबीर हे, कुछ प्रश्न मैं हरि करि रहा।
कोई कहे जग ईश नहिं, यह बोध उर में धरि रहा॥
यह बात कहते हैं बहुत, है ईश तो इक देश में।
वर्णादि का अभिमान करि, निगमादि के उपदेश में॥२॥

उत्तर

है सर्व व्यापक राम वह, जिस को मुनीश्वर गावते।
यह अग्नि जिमि सब भुवन में, सुप्रविष्ट वेद बतावते॥

तेहि भाँति यह निज आतमा, निर्दोष व्यापक रूप है।
अल्पज्ञ जन से है परे, माया सुपति निज भूप है ॥३॥
कहते बहुत अनभिज्ञ हैं, नहिं जीव से पर और है।
यह जगत जीव प्रधान मिलि, उपजावती सब ठौर है ॥
नहिं ईश नहिं परमातमा, करता जगत का है नहीं।
सो अकृत सर्व अनादि है, खं वायु पावक जल मही ॥४॥
कहिये भला कैसी गिरा, दुर्बुद्धि नास्तिक ज्ञान है।
लोहित वशी वह मूर्ख जन, करते जगत की हान है ॥
होवे न कुम्भ कुलाल बिनु, घट रूप यह संसार है।
स्वर्णकार जिमि कुण्डल रचे, तिमि विश्व रचि करतार है ॥५॥
है प्रकृति पंचक द्रव्य जो, वह थूल सूक्षम मानिये।
चक्रादि तन्तू दण्ड पुनि, घट कूट साधन जानिये ॥
पुनि लोह दारू छुर्प हल, जग में बहुत सुप्रमाण है।
तैसे जनी जग पंच से, इस करण से निरमाण है ॥६॥

प्रश्न

सु कुलाल औरो प्रभृति का, दृष्टान्त तुम देते अहो।
तेहि जनक सब परत्यक्ष हैं, नहिं ईश देखन आव हो ॥
होता कहीं ईश्वर अहो, परत्यक्ष सो भी दीखता।
याते न करता जगत का, सब लोग झूठहिं बोलता ॥७॥

उत्तर

शंका तुम्हारी ठीक है, उत्तर सुनो इसका अभी।
तव देह में मन काम है, क्या देखता उनको कभी ॥

पुनि क्रोध तृष्णा लोभ मद, इत्यादि शत्रु अनेक हैं।
को देखता उनको कहो, होती व्यथा यह टेक है ॥८॥
तिन कार्य को सब देखते, वायुर्यथा सुप्रमाण में।
नहिं देखते हम रूप को, कारण लखो परिणाम में ॥
त्वक् आदि द्वारा रूप का, सो ज्ञान वस्तुन का भया।
अस्थूल देखा दामिनी, नहिं शक्ति तत् देखा गया ॥९॥
यहि भाँति जानों ब्रह्म को, सु प्रत्यक्ष नहिं वह दीखता।
तत कार्य को सब देखते, कारण भी मुनिवर भाषिता ॥
सु प्रविष्ट विश्व शरीर में, सब आतमा संचालकः।
निज को न देखे अग्नि जल, यहि भाँति सो जग पालकः ॥१०॥
उड़ता जहाँ पर धूम है, होता अनल अनुमान है।
पुनि शब्द होता है जहाँ, तहँ दृश्य जन का ज्ञान है ॥
तैसे जगत को देखि के, है शक्ति कोई मानिये।
बालक जु देखो खेलते, तत् मात पितु है जानिये ॥११॥
होती स्वतः यह योनि जो, नहिं गर्भ धारण धारती।
जैसे जगत में आज भी, बिनु पुरुष ललनाकारती ॥
जब बीज बूनों क्षेत्र में, तबहीं रसा गरभावती।
बिनु बीज कैसे उपज हो, यह संत श्रुति नित गावती ॥१२॥
यह मानना हि अतर्क है, जो वस्तु तीनि अनादि हैं।
यह [1]जगत ब्रह्म अरु जीव पुनि, भू बीज कृपक न सादि हैं ॥

---

१ प्रधान प्रकृति से तात्पर्य है।

नहिं स्वतः जीव प्रधान भी, प्रेरक प्रभू को जानिये।
जैसे घड़ी इक यंत्र है, मग[1]लोह व्योम अप मानिये ॥१३॥
चालक बिना नहिं चल सके, जड़ रूप माया यंत्र है।
सु प्रमाण बीजक वेद का, देखो उभय का मंत्र है॥
कहते अवैदिक लोग हैं, नहिं जीव से पर अन्य है।
बस जीवहीं को मानते, नास्तिक अविद्या जन्य है ॥१४॥
करते महा विज्ञान ध्वनि, सब जीव से प्रस्तूत है।
जितने जगत में यंत्र हैं, वह जीव की करतूत है॥
यह सर्व प्राक् अभाव था, कुछ मतन की यह बात है।
यह जीव विरचित सर्व है, जो उक्त मत से ज्ञात है ॥१५॥
यह बात युक्ति विहीन है, उन्मत्त सम करि जल्पना।
क्या कूप खनन के पूर्व में, जलहीन भू यह कल्पना॥
था विद्यमानहिं पूर्व से, केवल खनन थी साधना।
यहि भाँति सकल पदार्थ जग, है बुद्धि में तुम जानना ॥१६॥
यदि पूर्व माँहिं अभाव है, होगा भविष्य असंभवा।
जैसे रवीन्दुहिं लोक सब, आरम्भ अन्त में सम्भवा॥
यह सर्व शेमुषि में अहा, जेते जगत का ज्ञान है।
बीती हुई जो हो रहा, जिसका अभी नहिं ध्यान है ॥१७॥
करिये मनन उपलब्ध हो, खोजे सु द्रव्य अनेक हो।
श्री राम दाया से मिले, जिस के हिया सु विवेक हो॥

---

१ रेल मार्ग पर चलने वाली गाड़ी।

जैसे अँधेरे भवन में, नहिं वस्तु मिलती कोय हो।
दीपक लिये जब हाथ में, वह गुप्त परगट होय हो ॥१८॥
इस में नहीं आश्चर्य है, सायंस ज्योतिष अंग है।
सब खोज प्रथमे थे किये, नहि ईश का कोइ भंग है॥
सब मानते थे बात सच, व्यवहार जो संसार का।
भगवान को नहिं खंडते, पूजा करहिं करतार का ॥१९॥
दोहा—यह कलि केरे ज्योतिषी, अल्प बुद्धि अभिमान।
राम नाम को त्यागि के, बसे मोह मद मान ॥२०॥
जैसे पामर कृत कछू, करे मुदित बड़ होय।
तैसे कलियुग लोग बहु, ईश न माने कोय ॥२१॥
जो प्रत्यक्ष को मानिये, और पंच को त्यागि।
तो निज उत्पति के विषय, देखो क्या तुम वागि ॥२२॥
मात पिता संयोग को, देखि सके नहि कोय।
तो अपनी उत्पत्ति का, क्या प्रत्यक्ष है सोय ॥२३॥
सर्वं वस्तु प्रत्यक्ष नहीं, आगे पीछे होय।
ताको तुम क्या कहत हो, चुप-रहिये नर सोय ॥२४॥
मात पिता पर वचन से, हुआ उभय का ज्ञान।
यह आगम सुप्रमाण है, जानत बुद्धि निधान ॥२५॥
मात पिता बिनु जगत में, जन्म कोइ नहि पाय।
सत्य बात यह मानिये, तैसे यह जग भाय ॥२६॥
मात पिता जिमि सत्य हैं, तैसे हरि को जान।
उभय सिद्ध में आप्त हैं, औरो पंच प्रमान ॥२७॥

कहत स्वभाविक जगत को, बिनु करता यह सोय।
पंच भूव संयोग से, उद्भव जीव सो होय ॥२८॥

जगत प्रमाणु स्वरूप धरि, रहत व्योम के माँहि।
काल कर्म संयोग ते, पुनि पुनि प्रकटत आँहि ॥२९॥

करता कारण कछु नहीं, बिनु कारण जग होय।
जैसे अग्नि स्वभाव है, तिमि जानों जग सोय ॥३०॥

अपने से यह होत सदा, अपने से हो नाश।
यह अकृत संसार है, मत वादिन परकाश ॥३१॥

कोइ अनादि कोइ सादि कहे, नाना मत जग माँहि।
युक्तिहीन परमाण नहि, सर्वमान्य भी नाँहि ॥३२॥

कुम्भ बसन संसार में, अपने क्यों नहि होय।
वसनकार कुम्भार का, जग कारज नहि कोय ॥३३॥

अपने से कुछ होत नहि, कारज जगत अनेक।
कर्ता बिनु कोइं वस्तु नहि, करि के देखु विवेक ॥३४॥

बिनु कारण कारज नहीं, अन्न दूध फल जान।
नर जीवन के कारणे, पूर्व रचा भगवान ॥३५॥

पंच भूत चैतन्य नहि, कैसे हो संयोग।
करता विनु कारज नहीं, भूतन माँहि वियोग ॥३६॥

याते इन से चेतना, कैसे उत्पन होय।
यह मत खंडित जानिये, याते जोव न कोय ॥३७॥

अनलहि आश्रय और के, तिमि प्रमाणु को मानि।
प्रकट करत जन जानिये, तिमि जग को हरि आनि॥३८॥

जगत सादि जो कहत हो, यह कैसे तुम जान ।
वस्तु जगत कोइ सादि नहिं, सकल अनादि सु मान ॥३९॥
जो अभाव था पूर्व में, सो उद्भव किमि होय ।
पंच भूत के वाद में, षष्ठ भूत नहिं कोय ॥४०॥
जेते तत्त्व पुनि होंहिगे, जो जो उद्भव आहिं ।
पाँचहि से सब होत हैं, षष्ठ भूत से नाहिं ॥४१॥
परिवर्तित कोइ वस्तु नहीं, रूप विवर्तित होय ।
जैसे जानो अग्नि को, तामें भेद न कोय ॥४२॥
शान्ति प्रज्वलित होत कभी, कभी रूप के माँहि ।
तैसे जग की वस्तु सब, यामें शंका नांहि ॥४३॥

छन्द

पुरुष नहीं कछु करि सके, समय करत सब बात हो ।
जेठ मांस नहिं ब्यक्ति करे, ईश नियम यह तात हो ॥
याते आस्तिक मान्य है, नास्तिक त्याग विचार हो ।
स्वतः सिद्ध भगवान हैं, तिन को उर में धार हो ॥४४॥

दोहा—ईश विना संसार में, सुखी रहत नहिं कोय ।
बहु प्रकार की सृष्टि जो, आपहि कभी न होय ॥४५॥
नारि पुरुष के रूप को, कौन बनावत भाय ।
सूक्षम मेधा सोचिये, भेद तभी यह जाय ॥४६॥
मोटी-मोटी बात को, खंडत हैं सब कोय ।
सारहीन यह जानिये, इन से ज्ञान न होय ॥४७॥

याते इनकी बुद्धि को, नहिं विश्वास कराय।
यथा म्लेच्छहिं संग तज, दोष महा दुखदाय ॥४८॥
कोइ विकास जड़वाद को, साम्यवाद कोइ मान।
कोइ शून्य विज्ञान को, कितने कर्म बखान ॥४९॥

छन्द

प्रयोग वादऽरु बुद्धि वाद, प्रभाव वादहुँ जानिये।
पुनि द्वन्द्व वाद सु हेतु वादहिं, सुभि वस्तुवादहुँ मानिये॥
है विन्दु वादऽरु अग्रवादहिं, सुरहस्य वाद बखानिये।
अज्ञेयता पुनि वाद जगत, शुभ शुद्धि वाद प्रमानिये ॥५०॥

चौपाई

कौतुक मंगल वाद बखाना। है अद्वैत महा विज्ञाना।
मन विज्ञान वाद इक कहिये। वर्तमान में जो गुण लहिये ॥५१॥
अद्वयवाद नास्तिक वादा। सूफी वाद प्रमाणु वादा।
उभय वाद परत्यक्षहुँ वादा। है उच्छेद वाद जन वादा ॥५२॥
है जग माहिं स्वतंत्रहुँ वादा। ईश्वर वाद करतृत्ववादा।
अदृश्य भौतिक वादहुँ जानो। पुनि जु प्रमादहुँ वाद बखानो॥५३॥
कहा और शारीरिक वादा। पुनः एक अपवादहुँ वादा।
तृष्णा वाद एक पुनि सुनिये। आतम वाद हृदय में गुनिये ॥५४॥

दोहा—अन्तानन्तहुँ वाद हैं, वाद यथार्थ सु रूप।
और अहेतुकवाद है, वाद अनित्य निरूप ॥५५॥

अन्तस्तम पुनि वाद है, हिंसा धार्मिक वाद ।
है अमरा विक्षेपहूँ , पूरव हेतू वाद ॥५६॥

छन्द

पुनि नाम प्रेमहुँ वाद द्वैतहुँ , शुभ अचल वादहुँ जानिये ।
औरो अनिश्चित वाद हैं , अनुनय सु वादहु मानिये ॥
नाना मता संसार में , मुण्डे सु मुण्डे है बड़ा ।
हैं वेद ईश से रहित बहु , जो जीव वादहिं धरि खड़ा ॥५७॥

दोहा–जेते दर्शन दार्शनिक , सब मेधा की खेल ।
अपनी अपनी कहत हैं , नहिं काहू से मेल ॥५८॥
निज मति के अनुसारहीं, सर्वं कल्पना कीन ।
काको मत सत मानिये , सकल बने सु प्रबीन ॥५९॥
सह संदेही सकल मत , एक मता नहिं काहु ।
एक एक रवि सोम को , एक ग्रसत है राहु ॥६०॥
नहिं अकाट्य मत काहु का, एक से एक महान ।
नहिं विराम इस बुद्धि का, निति नव कल्पे ज्ञान ॥६१॥
बुद्धिमान यह जानहीं , मूरख करैं विवाद ।
बुद्धि विषय जाने नहीं, इत उत वक्कैं वाद ॥६२॥

हरिगीतिका छन्द

जो जीव यह होता स्वयम् , नहिं कष्ट कबहूँ पावता ।
यह बात तो नहिं दीखती , पुणि पाप का फल चाखता ॥
तस्कर यथा निज कर्म का , नहिं दण्ड चाहत भोगना ।
उसको पकड़ि नरपाल-चर , वंदी-भवन में बाँधना ॥६३॥

यहि भाँति यह जग जीव सब, निज कर्म के आधीन हैं।
संतत महा दुख में पड़े, कि कर्म में जो लीन हैं॥
ताते हरी नित दण्ड दें, तेहि नियम से जो विरुद्ध हैं।
सो भोगते अति कष्ट को, जो मार माया बद्ध हैं॥६४॥
नहिं दोष इस में ईश का, निज कर्म का ही जानिये।
यदि दण्ड हरि देवे नहीं, प्रविनाश जग का मानिये॥

प्रश्न

जब सृष्टि को रचा नहीं, तब दुःख कैसे भोगना।
याते सदोषी ईश है, नहिं जीव यामे जानना॥६५॥

उत्तर

राजा बसाता देश को, सुख हेतु परजा जानिये।
यह वस्तु तीनि अनादि हैं, पहले कहा वह मानिये॥
दूषित अदूषित कर्म को, परजा सदा करती अहो।
इस हेतु निर्णय-भवन रचि, निर्णय करत ऐसा कहो॥६६॥
होती निशा युग सोवते, परलय इसी को जानिये।
गत होत जबहीं निशथिनीं, उत्पति जगत की मानिये॥
राजा वही परजा वही, जो शेष रहता कर्म है।
उसका करत निर्णय हरी, पालक सदा यह धर्म है॥६७॥
कहिये भला जिववादिओं, क्या मत तुम्हारा ठीक है।
त्रय पंथ में तुम भी मिलो, परदेशियन जो नीक है॥
चहुँ भूत को हीं मानते, सुनते शबद किस भूत में।
चलना तुम्हारा कौन में, कहिये सु उत्तर चूप में॥६८॥

नानात्व की करि कल्पना, पारख से मुक्ती मानते।
तुँ पिपील गज का जीव जो, छोटा बड़ा क्या मानते॥
कहते हो तुँ इस बात को, बस जीवहीं इक सार है।
इस के परे कछु और नहि, नहिं जगत का करतार है॥६९॥
कहता कौन यह बात है, निज जानने की जो कथा।
मैं जीव हूँ यह सत्य है, कहते इसे अनभिज्ञ था॥
नहिं ज्ञान अपने आप का, होता कभी संसार में।
पत्थर न पत्थर कह सके, देखो सदा सुविचार में॥७०॥
यह ज्ञान होता कौन को, शेमुषि करे सब कल्पना।
क्योंकी न अक्षी देखसक, निज रूप जो है आपना॥
देखन सुनन हो दोय में, निश्चय भो होता दूसरा।
धिषणा ने सब निश्चय किया, हरि ज्ञान वंचित जीयरा॥७१॥
नहिं अन्न खाता आप को, जल भी नहीं जल पीवता।
पर को जलाती अग्नि है, नहिं लोग अपने जीवता॥
नहिं तीनि बिनु जल मिल सके, रस्सी घड़ा अरु मानवी।
यहि भाँति जग सब बात है, चेला गुरू हरि जानवी॥७२॥
याते भजन भगवान की, करना यही समुचित अहा।
ताके विमुख दुख है सदा, जन दास गंगा ने कहा॥
करता नियंत्रण पाप का, जब घोर अत्याचार हो।
प्रतिकार करता दुष्ट का, जिन से दुखी संसार हो॥७३॥
सुख शांति का सु प्रसार करि, वितरण करत आनन्द सो।
यहि हेतु भजते दास हैं, रहते विमुख मतिमन्द सो॥

मेधा-वसी वे जीव हैं, तिस हेतु ऐसा ज्ञान है।
सो जीवहीं को मानते, सुविवेक विनु अज्ञान है ॥७४॥
छूटे न चौरासी रहट, भव-भ्रान्ति माँहीं बास है।
माया महा दुख देत है, कामादि खल का दास है ॥
सत देव में नहिं मिल सके, अलपज्ञ की करि कल्पना।
ज्यों कूप जल नद नाह में, कैसे मिले बिनु साधना ॥७५॥
बस एक बातहिं नित कहें, नहिं दीखता नहिं दीखता।
इनको नहीं कछु ज्ञान है, नहिं संत जन से सीखता ॥
तव देह जग सब दीखता, पर नाश होता है सदा।
क्या राम को भी देखकर, नाशोगे रे तुम दुर्मदा ॥७६॥
बालक यथा तव बुद्धि है, जो बोल ऐसी बोलते।
चंचल विचल सुसमाधि से, संसार में तुम डोलते ॥
सुख हेतु सम्पति के लिये, घर-घर फिरे जिमि बानरा।
भगवान नहिं कहुँ दीखता, ऐसा कहे निति बावरा ॥७७॥
जन्मत मरत संतत रहे, तामस-वसी संसार में।
निसतार नहिं होता कभी, विश्वास बिनु कर्तार में ॥

प्रश्न

आना व जाना जीव का, पुनरपि जनम जो मानते।
सु प्रमाण क्या परत्यक्ष है, यह बात जो तुम ठानते ॥७८॥
आया न कोई घूमकर, हम थे अमुक सुस्थान में।
जो जन्मते संसार में, उनको न पूरब ज्ञान में ॥

उत्तर

यह मत म्लेच्छन जानिये , बरनन किया जिस को अभी ।
मरणान्त पीछे जन्म नहिं , रहते समाधी में सभी ॥७६॥
आता नियायी दिवस जब , तब ईश आज्ञा देत है ।
तिस दूत बाजा वाद्य करि , जेते सकल सुधि लेत है ॥
जाते सभी उठकर वहाँ , सप्तम व्योंम पर जानिये ।
करमाकरम अनुसार से , निर्णय करत हरि मानिये ॥८०॥
जिस का करम दूषित रहा , तत् घोर दण्ड विधान है ।
रहता शमन घर में सदा , नहिं पुण्य करते दान है ॥
शुभ सुकृतरत जो लोग है , आनन्द संतत भोगते ।
कैसा विलक्षण ज्ञान है , जो मानते ए लोग ते ॥८१॥
पापी सदा रह नरक में , पुण्यात्मा सुख भोगता ।
कहिये भला क्या कर्म का , नहिं अन्त कबहूँ होवता ॥
करता कमाई अन्न की , किरषक सहस्रों द्रोण भी ।
उसका भी होता अन्त है , खाली पड़े सब क्षोण भी ॥८२॥
यहि भाँति नर का कर्म है , उसका भी होता अन्त है ।
संतत न रहते कृत हैं , कहते मुनीश्वर संत हैं ॥
क्या अन्त होने पर भि वह, सुख दुःख में रहता सदा ।
कैसा नियायी राम है , नहिं ज्ञान उसको है कदा ॥८३॥
जब जन्म नहिं होता पुनः , होती बढ़ोतरि जीव की ।
सुस्थान रहने का कहाँ , रह जायगा इस कीव की ॥

क्या पोटरी में बाँध कर, तर ऊपरे धरते बता।
आश्चर्यमय यह ज्ञान है, जग द्वन्द्ववादी का मता ॥८४॥
इसको तियागो भाग रे, वैदिक मता की शरण ले।
गुरुदेव की सेवा करो, निज आतमा का ज्ञान ले॥
निज कोश ते पुनि जीव को, संसार में जन्मावता।
मर के पुनः आते नहीं, यहि विधि यवन मत गावता ॥८५॥
कहते सु कितने बात यह, भगवान रचता जीव को।
संतत बनातः मारता, महिमा महा उस पीव को॥
यहि जीव रचता ईश है, अनभिज्ञ की यह कल्पना।
जब जीव का पुनि जन्म नहिं, तब बात ऐसी क्यों घना ॥८६॥
कोई दुखी कोई सुखी, जन्मांध कोई दीषता।
राजा कोइ कोइ रंक है, कोइ शान्त क्रोधी पीशता॥
यह बात अद्भुत क्यों कहो, ज्ञानी कोइ मूरख अती।
कोई सदा आनन्द में, हाती किसी की नित छती ॥८७॥
क्या ईश से थी शत्रुता, जिसको बनाया निर्धनी।
कुष्टी अघानी आलसी, क्या ईश से थी अनबनी॥
राजा बली बुध साहसी, सुनिरोग सुखिया सुन्दरम्।
इनसे रही क्या मित्रता, जिन को दिया सुख मंदिरम् ॥८८॥
क्या राग द्वेष विकारमय, है ईश भी संसार में।
नहिं देखते समभाव में, किस को भी जग व्यवहार में॥
सब का पिता माता अहा, इक रूप में ही चाहिये।
यह बात नहिं हम देखते, याते करम को गाइये ॥८९॥

वह तो सदा सर्वज्ञ है, नहिं पक्षपाती जानिये।
यदि भाव वह दूजा करे, नहिं ईश ताको मानिये॥
आदित्य सम सु प्रकाश वह, नहिं पाप पुण्य करावता।
जैसे करें जग जीव हम, उस कर्म का फल पावता॥९०॥
याते जनम पुनि सिद्ध है, इसमें न शंका कीजिये।
जब तक रहे अंकुर करम, वह बीज उगता लीजिये॥
यह जीव रचता ईश जो, वह नाश होता मानिये।
हरि का रचा संसार है, यह नाश होता जानिये॥९१॥
याते न इस को मानिये, तहँ भोग अभोगाभाव है।
तब पुण्य पापहिं झूठ सब, मिथ्या यवन मत भाव है॥
जब जन्म मृति होती नहीं, तब कर्म सब करना वृथा।
जैसे पशुन वैसे रहे, तब पाँच पूजा है वृथा॥९२॥
नहिं जीव को रचता कभी, जग मृतिका सु प्रमाण है।
परजापती रचता घड़ा, तिमि देह को भगवान है॥
सु अनादि माटी जीव हैं, इस का अक्रता जानिये।
जब राशि होती जीव की, घटि जात उस को मानिये॥९३॥
यह एक देशी कल्पना, सप्तम व्योम पर मानते।
जो रूपवाली वस्तु है, हो नाश क्या नहिं जानते॥
यह जाल रचना काल सम, जग जीव को भरमावते।
महिमा न जानहिं ईश की, अनुमान पर सब गावते॥९४॥
पापी महा छल धूर्त हैं, नहिं ब्रह्म का कछु ज्ञान है।
अति क्रूर मति त्रय हिंसकी, माया वसी बौरान है॥

मेधा परे वह तत्व है, कि तर्क से वह दूर है।
उसकी कृपा वह ज्ञान हो, पावे कोइ जन सूर है ॥९५॥
नहिं तर्क से वह पाइये, क्योंकि ओ तर्कातीत है।
सब गो जहाँ तक जायँगे, तिन से परे सो अतीत है॥
नहिं गम्य दर्शन तर्क की, नहिं बुद्धि जा सकती वहाँ।
जैसे पिता के जनम को, नहिं पुत्र देखा था वहाँ ॥९६॥
तिन कल्पना उस भाँति की, अंधन की हाथी जानिये।
नहिं नयन से देखा गया, कर टोय कहते मानिये॥
एकाङ्गि कहते सर्व हैं, नहिं ज्ञान पूरण रूप की।
करि ज्ञान पाँचो भूत का, जो हेतु है भव-कूप की ॥९७॥
अभिमान करते हैं सदा, जो सर्व लौकिक ज्ञान है।
यह बालकों के खेल सम, जिसका महत ये मान है॥
यह ज्ञान शेमुषि गम्य है, जो दृश्य को हीं देखती।
इस पृष्ठ में जो शक्ति है, उसको नहीं यह पेखती ॥९८॥
जिसके सकल हैं हाथ में, उसको कौन जग जानता।
क्षण में करत कुछ आन है, भगवान ऐसो भाषता॥
अज्ञान कारण जीव जग, भगवान को नहिं मानते।
नहिं एक सम सब देखते, नाना स्वरूप बखानते ॥९९॥
है बुद्धि दूषित जासु की, ऐसा करे सो कल्पना।
नहिं जीव नाना एक है, सब उपाधि वह बहु भापना॥
जैसे घड़ा बहु अवनि पर, सब में जलधि जल है भरा।
दीखे सकल में व्योम लघु, नाना देखाता अम्बरा ॥१००॥

देखो पुनः जब ऊर्ध्व में, नानात्व का सु अभाव है।
सु प्रभूत कुम्भ के होन ते, बाहुल्य व्योम न भाव है॥
यहि भाँति जानो जीव की, नाना वपुप नित भासती।
नाना नहीं वह एक है, यह बात वाणी गावती॥१०१॥
नानात्व की करि कल्पना, यह ज्ञान नहिं समिचीन है।
बिनु बोध ऐसी जल्पना, तत् भर्म बुद्धि नवीन है॥
शंका तुम्हारी है यही, नाना नहीं जब एक है।
तब एकहीं के मुक्ति से, सब मुक्त नहिं यह टेक है॥१०२॥
होता जु दुख सुख एक को, सब कोहिं होना संभवा।
सो बात कैसी है कहो, यह भूरि भ्रम असंभवा॥
जो भूख धर्म पियास है, कौमार यौवन जरठता।
नहिं एक से सब को भयो, कहिये गुरो सुस्पष्टता॥१०३॥
तुम चेत हो अब कान कर, कहता हुँ भेद विचारि के।
क्या एक घट के नाश से, सबहीं पराभव वारि के॥
यह धर्म कुम्भ शरीर के, नहिं व्योम का अपकार है।
घट से सदा सु असंग है, यह आतमा अविकार है॥१०४॥
बनना बिगड़ना देह का, नहिं जीव का तुम जानिये।
बहु बार मरती जन्मती, घट रूप वपु को मानिये॥
बहु दूर तक नर सोचि के, तब बोलिये कछु बात को।
नित भर्मिये संसार में, करिये न निन्दा घात को॥१०५॥
जब एकहीं वह नाथ है, तब क्यों अनेकन नियम हो।
बाइबिल कुरानी वेद के, क्यों भिन्न अनेकन नियम हो॥

निज निज कथन को सत्य सब, कहते हैं अतिसय चाव से।
लड़ लड़ सभी मरते सदा, कहते आपने भाव से ॥११६॥
यह बात तुमने शुभ कहा, पर ध्यान देकर अब सुनों।
है नियम एकहिं राम का, वह ध्यान से अब तुम गुनो ॥
तद् एकहीं सब नियम है, सबके लिये सम भाव में।
मत वादियों की कल्पना, समता सुभाव अभाव में ॥११७॥
जो वेद वाणी ईश की, सबके लिये शुभ जानिये।
उसके परे जो और है, उसमें भी शुभ जो मानिये ॥
यह है सदा शुभदावली, भगवान का उपदेश है।
उसके परे सब और है, नहिं मानना सु अदेश है ॥११८
मत वादियों कि कल्पना, झगरा का जानो मूल है।
करते वही झगड़ा सदा, उनकी महा यह भूल है ॥
भगवान है सब देखता, देगा उन्हें वह दण्ड रे।
झगड़ा मचाते विश्व में, करते बहुत जु घमण्ड रे ॥१०६॥
दोहा—बहु विचित्र संसार जो, तुमको जो भ्रम होय।
एक समान सु ईश है, तत् कृत एक न होय ॥११०॥
देह बनायो राम हैं, देखो कितने अंग।
रहत पिण्ड आवयव विनु सकल काम हो भंग ॥१११॥
याते तव हित के लिये, राम किये बहु रूप।
याते तत्तद्रूप नहीं, यह जग सकल अनूप ॥११२॥
बार बार तुमसे कहा, तुम क्यों सोचत नाहिं।
थूल बुद्धि को त्यागि दे, सूक्ष्म में सब आहिं ॥११३॥

पूर्व प्रश्न उत्तर सुनो, जो पहले तुम भाख।
अटपट शंका नहि करो, ग्रन्थ होय बड़ शाख ॥११४॥
भूख तृषा असु धर्म है, सुख दुख मानस केर।
जरा आदि स्थूल महँ, नहि नभ माँहो फेर ॥११५॥
दुख सुख घट में होत है, अनुभव बारि करंत।
नहि अकाश में खेद कछु, कहत वेद मुनि संत ॥११६॥
जैसे दीपक भवन में, दिनकर व्योंम प्रकाश।
सदा उभय से भिन्न हैं, युग्म होत नहि त्रास ॥११७॥
एकहि घट के फूटते, सब घट होत न नाश।
तैसे जानो जीव को, भिन्न भिन्न तन माँस ॥११८॥
इसमें भरम न कीजिये, जीव एक नहि दोय।
एकहि माटी घट बहुत, मूल युगल नहि होय ॥११९॥
जिमि लोहामग चालिका, डब्बा लगे अनन्त।
एकहि वाहन वहन कर, ज्यों पटकार बुनन्त ॥१२०॥
एक मुये सब मृत नहीं, एक मोक्ष सब नहि।
बन्ध मोक्ष घट धर्म है, भर्म होत मन मांहि ॥१२१॥
घटहीं माँहि अकाश जो, निश्चय करे स्वरूप।
इतनाहीं मम रूप है, सो मूरख के भूप ॥१२२॥
अस मति जाके उर बसे, ताको जीव तुँ जान।
जन्म मरण छूटे नहीं, सदा जीव का ज्ञान ॥१२३॥
उभय रहित जो चाहते, चिदाकाश में ध्यान।
घट मठ पट को त्यागि के, देखो रूप महान ॥१२४॥

श्रवण मनन निहिद्ध्यासन, निश्चय करे बनाय ।
तब हरि का सुमिरन करे, ज्ञान अमीरस पाय ॥१२५॥
सोई मुक्त हो देह से, जीव भाव को त्याग ।
महाकाश में लीन हो, उभय जनित दुख भाग ।१२६॥
यहि विधि निश्चय कीजिये, जीव नहीं हम और ।
भेद बुद्धि नहि मन बसे, तब पावे थिति ठौर ॥१२७॥
चेतन तीनि प्रकार का, अबल सबल सु असंग ।
रहत अविद्या में सदा, ताहि जीव कह गंग ॥१२८॥
शासन करता जगत पर, सोई सबल बखान ।
सर्व रहित निःसंग सदा, ताहि नित्य नर जान ॥१२९॥
वह अज्ञानी जीव हैं, करैं कल्पना और ।
सो पापी भरमत फिरें, मिले न हरिपद ठौर ॥१३०॥
क्या सम्बन्ध उभय मँह, जीव ब्रह्म में बोल ।
नित्य जानु पट सूत इमि, बिना ईश नहि डोल ॥१३१॥
पुष्प गंध पुनि कमल जल, स्वाँस जीव जन जान ।
शिव बिनु नाहीं जीव कछु, नित सम्बन्धी मान ॥१३२॥
जीव जगत संबन्ध क्या, कह अनित्य गुरु राय ।
जैसे तम सुप्रकाश का, संग न एक रहाय ॥१३३॥
मिलन बीछुड़न नित्य है, नित्य जुगल नहि रूप ।
मूरख ते मतिमान हो, रंकन से हो भूप ॥१३४॥
सदा रहत नहि दृश्य जग, ताते जानु अनित्य ।
सो अज्ञानी जानिये, जीव जगत कह नित्य ॥१३५॥

जीव जीव को रटहिं सठ, कहहिं जीव नहिं और।
सो पापी पामर खल, बूड़े भव निधि भौर ॥१३६॥
ब्रह्म बिना नहिं चेतना, ब्रह्म बिना नहिं कर्म।
ब्रह्म बिना जीवो नहिं, ब्रह्म बिना सब भर्म ॥१३७॥
गुड़ बिनु शक्कर होत नहीं, मिसिरी आदिक नाहिं।
कारण सबका ईख है, बसत सबन के माहिं ॥१३८॥
नयन श्रुति मुख नाक नहीं, वस्तु निरर्थक चार।
मुकुर शब्द रव गंध है, सज्जन करहिं विचार ॥१३९॥
ज्ञान बिना जो जीव हैं, तिनको भरम अनेक।
ज्ञानी को संशय नहीं, देखे एक अनेक ॥१४०॥
कह्यो आप जो एक है, सो मेरो मन मान।
आना जाना कौन विधि, यह शंका भगवान ॥१४१॥
जिमि रहटा जल पात्र में, सबमें व्योंम रहाय।
कर्मं किसान घुमावई, अर्ध ऊर्ध्वं में जाय ॥१४२॥
जैसे लोहामार्ग पर, वाहन चले सुयंत्र।
सबमें रहत अकाश है, बस उपाधि परतंत्र ॥१४३॥
यहो दशा है जीव की, एक से होत अनेक।
भ्रमत जगत व्यवहार में, उनमें नहीं विवेक ॥१४४॥
दामिनि केन्द्र अद्वैत है, ब्रह्म सृष्टि यह जान।
काँच दीप में बारहीं, एकसे भूरि महान ॥१४५॥
जैसे एकहि ठौर से, सब में होत प्रकाश।
इस विधि एकहि ब्रह्म से, नाना रूप विकाश ॥१४६॥

लोह वसन इत्यादि जो, बहु प्रकार के यंत्र ।
दामिनि कारण सर्व की, यंत्र न आप स्वतंत्र ॥१४७॥
माला मनिया बहुत हैं, एक सूत्र सब माँहि ।
सबको नाथे ब्रह्म इमि, सकल अनादि सो आँहि ॥१४८॥
षट इन्द्रिय युत् यंत्र जो, शून्य जीव बिनु जान ।
पैर विना द्वै चक्रिका, तिमि हरि बिनु जग मान॥१४९॥
जीव प्रधान स्वतंत्र नहि, कारण ब्रह्म अनादि ।
मारुत पावक पानिगुण, जानत सोइ सुखादि ॥१५०॥
यह रहस्य वह जानई, दूर दर्शिता बुद्धि ।
जिमि अणुवीक्षण यंत्र है, होवे आतम शुद्धि ॥१५१॥
यहि विधि जो हरि को भजे, सो जन मुक्त स्वरूप ।
राम विना सुख है नहीं, द्वैतहि दुविधा कूप ॥१५२॥
मन बुधि चित हंकार को, राजस तामस भेद ।
विश्व प्राज्ञ तैजस्व गुण, जानत वहो अखेद ॥१५३॥
लय चिन्तन विधि बैन को, सत्यासत्य विचार ।
काम क्रोध मद लोभ को, तजे महा दुख भार ॥१५४॥
नहि तो भरमे जगत में, पँच दोष मँह लीन ।
पाप पुण्य के कारणे, सदा रहत नर दीन ॥१५५॥
आपहि आपसे बैर कर, आपहि नम्र महान ।
आप समान न और कहूँ, हम पंडित मति मान ॥१५६॥
जाति पांति बहु मानहीं, ऊँच नीच मन माँहि ।
हम ब्राह्मण तुम शूद्र हो, यह मारग सुख नाँहि ॥१५७॥

सब घट माँहीं व्योंम है, लघु महान सत जान।
उपादान सब मृतिका, याते भेद न आन ॥१५८॥
ईश्वर कृत यह वरण नहिं, नरहिं कल्पना कीन्ह।
इससे जग में हानि है, वर्ण पंथ बहु लीन्ह ॥१५९॥

पशू वृक्ष की जाति बहु, खग सरिता गिरि नार।
रूप स्वगुण भी भिन्न है, कडुआ मीठा खार ॥१६०॥
मानव में यह भेद नहिं, कफ पित एके लार।
एक मार्ग सब जन्महीं, लिङ्गहिं एक अकार ॥१६१॥
खावे पीवे सकल जन, पढ़े सकल गुण होय।
मल मूत्र सबहीं करें, सोना करै न कोय ॥१६२॥
तात मात से सब भयो, नहिं अकाश ते कोय।
शुक्रहिं कारण जगत का, युगल बिना नहिं होय ॥१६३॥

शुद्रहिं सब मूरख नहीं, बिप्र न सब मतिमान।
काम क्रोध सबमें बसे, रज तम उभय प्रधान ॥१६४॥
अस्थि मांस नाड़ी त्वचा, इन्द्रिय थान समान।
नील गौर सब होत हैं, सुख दुख मानामान ॥१६५॥
कहो जो मुख से विप्र हैं, शूद्र पैर ते जान।
पाणी से क्षत्रिय भयो, वैश्य उरू सु प्रमान ॥२६६॥

जिस साँचा का रूप जो, भूषण तेहि अनुरूप।
इसमें तो सब एक हैं, यह गुरु वचन अनूप ॥१६७॥

रहत नम्र अभिमान नहिं, दया क्षमा हरि ज्ञान।
सदा तपस्या में निरत, चाहत पर कल्यान ॥१६८॥

सो ब्राह्मण बिनु वेद भी, ब्रह्म समान सुजान।
ताकी पूजा कीजिये, तजे रहत अज्ञान ॥ १६९ ॥
पाँच भूत सबमें बसे, धूप छाँह सम जान।
चन्द्र सूर्य निशि दिवस जो, सबके लिये समान ॥ १७० ॥
सिद्ध होत यह बात नहिं, जाति जन्म का हेत।
यह मत वादिन कल्पना, दीनन को दुख देत ॥ १७१ ॥
जाति बनी है कर्म से, न्यायाधीश प्रमान।
पुत्र तासु गुण हीन है, होत न ताहि समान ॥ १७२ ॥

छन्द

कर्तव्य जो जैसा करे, वैसा धरावे नाम हो।
कोइ राज पुरुष कहावते, कोई सुपालक नाम हो ॥
कोई समाहर्ता बना, कोई बना चर जानिये।
जिनकी रही जस योग्यता, तेहि नाम वैसा मानिये ॥१७३॥

दोहा—एक वर्ग के लोग बहु, पदवी भिन्न अनेक।
मण्डलेश चर जानिये, करो न यामे टेक ॥ १७४ ॥
अच्छे से बूरा बने, दूषित अच्छा होय।
मूरख विद्या ऊँच हो, पंडित पापी सोय ॥ १७५ ॥
मतंग जबाल एतरेय, घटज पराशर व्यास।
वीतहव्य औरो पुनि, विश्वामित्रहिं भाष ॥ १७६ ॥
क्षेत्र बीज बहु ऊँच लघु, यामे शास्त्र प्रमान।
किये कर्म सब अवर वर, कर्महिं वर्ण निर्माण ॥ १७७ ॥
जाति बनी सब कर्म से, यह अनिवार्य विचार।
जन्म वर्ण जाग हानि है, नहीं एकता चार ॥ १७८ ॥

ताते तजिये उभय मत, धरहु एकता ज्ञान।
मानव मानव एक सब, भजिये नित भगवान॥ १७९॥
चाँद सूर्य को नियत कर, धारण कर सब लोक।
ताको भजिये सकल तजि, काम कोह मद शोक॥ १८०॥
वरण आश्रम जगत में, यह बन्धन दृढ़ मान।
सुख नहिं होवे देश में, कलह काल बलवान॥ १८१॥
तजिये सब जञ्जाल को, काल कर्म दुख रूप।
भजिये निर्गुण ब्रह्म को, जाका चरित अनूप॥ १८२॥
सगुण अगुण यह भेद है, सुनिये संत सुजान।
दृश्य मान यह सगुण है, अन्तर निर्गुण मान॥ १८३॥
बिनु गुण यह जग होत नहिं, अगुण अक्रिय जान।
दोनों एके वस्तु है, भेद बुद्धि नहिं आन॥ १८४॥
जो सठ हरि खण्डन करे, सो खण्डन होइ जात।
नरक पड़े युग युग दुखी, यम मारहिं तेहि लात॥ १८५॥
नक कटवा सम पंथ है, कहे तुरत तुम देख।
पशुआ जाय समात हैं, कहते हम भी पेख॥ १८६॥
द्वन्द्व मचावहिं सकल मिलि, कछु नहिं करहिं विचार।
अन्त परे भव धार में, मूरख बहुत गँवार॥ १८७॥
वाके ढ़िग को त्यागिये, सो चण्डाल स्वरूप।
मुख नहिं देखो तासु कर, केवल जीव निरूप॥ १८८॥
मिथ्या रूप को मानहीं, सो मिथ्या हो जात।
ताते तजि अल्पज्ञता, हरिजन जीव परात॥ १८९॥

आर्य वेद मत निन्दकी, सो पामर कलि रूप।
ऐसो यवन गुरुण्ड हैं, सो नहिं मम अनुरूप॥ १९० ॥
त्यागि अमी विष पीवते, ब्रह्म त्यागि जिव मान।
ऐसो को पामर कहे, वेद पुरान सुजान॥ १९१ ॥
निन्दा करहीं वेद की, मम आसय नहिं जान।
सो प्यारा नहीं मोहिं कहँ, सदा रहित मम ज्ञान॥ १९२ ॥
होहिं भविष्य में लोग बहु, मम शिक्षा कर नाम।
कल्पहिं वाणी आप बहुत, परहिं दुःख के धाम॥ १९३ ॥
बीजक औ ग्रन्थावली, चौराशी पुनि अंग।
शिक्षा कछु शब्दावली, कहा ज्ञान सु प्रसंग॥ १९४ ॥
राम नाम अरु ब्रह्म को, ओम् गोविन्द अनन्त।
हरि जगदीश निकालहीं, अर्थ करहिं मन मंत॥ १९५ ॥
पंथ नवीन चलावहीं, अपनो करहिं बखान।
वेद शास्त्र अरु राम की, निन्दा करहिं अजान॥ १९६ ॥
झगरा करि हैं संत से, मम दूषक सो लोग।
मम आसय नहिं जानहीं, कहा पुरातन योग॥ १९७ ॥
महा नरक में जायँगे, निन्दा राम करंत।
ऐसो प्रभु को त्यागि के, मिले न भव का अंत॥ १९८ ॥
मम आसय यह जानिये, दम्भ अन्ध युत लोग।
सो जन पढ़ते वेद को, सार न तेहि उपयोग॥ १९९ ॥
ऐसो लोगन के लिये, वेद निरर्थक जान।
दम्भ वेद में परे शठ, खंडन ताकर मान॥ २०० ॥

हिंसा युत जो वाक्य है, ताको मैं नहिं मान।
ताकी निन्दा जानिये, यह नहिं हरि का ज्ञान ॥ २०१ ॥

वेद नाम है ज्ञान का, वेद जानना अर्थ।
जाका भ्रामक ज्ञान है, सोई वेद अनर्थ ॥ २०२ ॥

वाद विवादा जो करे, पढ़ा लिखा भी होय।
करे कुतर्कहिं जीति हित, पुनि जाँचत जो कोय ॥ २०३ ॥

दया क्षमादिक रहित जो, श्रद्धा भाव अभाव।
मादक मदिरा माँस रत, लम्पट नारि पराव ॥ २०४ ॥

चोर कुटिलता निन्दकी, संतन कर अपमान।
राम नाम खण्डन करे, दम्भ कर्म अज्ञान ॥ २०५ ॥

विश्व विघाती झूठ युत, मातु पिता गुरु देव।
रहित अगन्तुक प्रेम से, गोमाता नहिं सेव ॥ २०६ ॥

यह लक्षण जिस माँहि बस, ताहि न दीजै ज्ञान।
मौन रहो उस मूर्ख से, कोटिन हो अपमान ॥ २०७ ॥

वेद शास्त्र नहिं मानता, संत गिरा नहिं ज्ञान।
राम नाम सुमिरैं नहीं, तिसको नास्तिक मान ॥ २०८ ॥

सर्व दोष से रहित जो, सत्य कर्म में ध्यान।
तिनको ब्राह्मण जानिये, कहते वेद पुरान ॥ २०९ ॥

सर्व जीव पालन करे, हिंसा करै न कोय।
सत्य बचन निर्णय करे, श्रेष्ठ क्षत्रिय होय ॥ २१० ॥

गोरक्षा किरषी करे, क्रय बिक्रय व्यवहार।
सकल काज उत्तम करे, महा वैश्य जग सार ॥ २११ ॥

पाप कर्म निश दिन करै, दोषन माहिं विलीन।
किसी वर्ण में जन्म हो, महा शुद्र मति हीन॥ २१२॥

सत्य कर्म संतत करे, दुर्गुण सबहीं त्याग।
किसी जाति में जन्म हो, सो ब्राह्मण बड़ भाग॥ २१३॥

राम नाम सुमिरन करे, नीचहुँ ऊँचा होय।
ताते भजिये रामको, मात पिता सब सोय॥ २१४॥

महिमा हरि गुरु देव की, भजो तजो अज्ञान।
ध्यान सदा तिन कीजिये, परम प्रभू मतिमान॥ २१५॥

आँख कानऽरु दांत दिये, दियो जीभ मुख बैन।
अँगुली में जो नह दिये, ताहि तजे किमि चैन॥ २१६॥

चारि रूप जो देह का, कैसे ताहि सँवार।
चित्र विचित्र स्वरूप का, करता हरि करतार॥ २१७॥

सिन्धु वेग अरु धीम उठे, पवन गती तेहि जान।
तीनि रूप भास्वान के, अग्नि सोम भू प्रान॥ २१८॥

और बहुत सी बात है, देखत अचरज होय।
चिंतन रहित सो जानिये, यामे तर्क न कोय॥ २१९॥

यह महिमा भगवान की, भजिये गंगा दास।
राम नाम रट लाइये, कटे कर्म यम फाँस॥ २२०॥

ॐ राम गोविन्द का, नाम जपत दुख जाँहि।
घरी घंट अरु शंख ध्वनि, सुनत दुखी हो काँहि॥ २२१॥

सो पिशाच सुनि भागई, तिसको जानो नीच।
वह न लहे निर्वाण पद, रहे मीच का मीच॥ २२२॥

यातै भजिये राम को, गुरु वर देवन देव।
मिले परम पद जानिये, करे संत की सेव॥ २२३॥

शिखा सूत्र को धारि कर, उर तुलसी का माल।
आर्य जाति का चिन्ह यह, तिलक लगावे भाल॥ २२४॥

अंतरिक्ष में लोक जो, परम व्योम के माँहि।
श्रेष्ठ पुरुष जो जगत में, पाद विष्णु त्रय जाँहि॥ २२५॥

सब इच्छा से शून्य जो, मुक्त मान अपमान।
सो जावे द्वय लोक में, हो भगवान समान॥ २२६॥

यह सम्वाद जु पढ़हिं नर, नास्तिक आस्तिक ज्ञान।
सो भवसागर पार हो, रहित मोह मद कान॥ २२७॥

जो अज्ञान स्वरूप है, तजो गहो गुरु ज्ञान।
गंगा कीन्ह विचार यह, जीव न ब्रह्म समान॥ २२८॥

यह कागद की पूतली, क्षणभंगुर नर देह।
इसमें प्रेम न कीजिये, तजिये मोह सनेह॥ २२९॥

आदि वही सो अन्त है, गुप्त प्रकट सो देव।
जाननहारा सर्व का, कीजै ताकी सेव॥ २३०॥

एक पुरुष तेहि नाम बहु, पूत पिता गुरु भाय।
नाना मामा भांजा, चचा भतीजा राय॥ २३१॥

ससुर साल जँमाय पुनि, फुफा और बहनोय।
यहि विधि जानो ईश का, नाम अनेकन होय॥ २३२॥

इन्द्र मित्र हरि वरुण यम, रुद्र अग्नि गण नाथ।
ब्रह्मादिक तेहि नाम बहु, रहत सबन के साथ॥ २३३॥

नाम रूप गहि कहत शठ, देव अनन्त अनेक।
निज स्वारथ बस कल्पना, हिरदै नाहिं विवेक ॥ २३४ ॥
ताकी प्राप्ति होय तब, जब गुरु होय सहाय।
आर्य धर्म को मानिये, जो निर्मल जग भाय ॥ २३५ ॥
अस उदार कोउ धर्म न, यहि संसार मझार।
दया धर्म उपकार है, यामें बुद्धि अपार ॥ २३६ ॥
और सकल भव रूप हैं, तजिये बुध जन लोग।
आवो इसमें वास करो, सिखो पुरातन योग ॥ २३७ ॥
यहि वियोग सुख शान्ति नहिं, और अनिश्चित जान।
जन्म मरण का ज्ञान नहीं, हिंसा कर्म प्रधान ॥ २३८ ॥
संयम आदिक साधना, करो सदा मन लाय।
तजिये वाद विवाद को, शोक समुद्र बताय ॥ २३९ ॥
निद्रा आलस आदि जो, संतत कीजै त्याग।
अधिक न जागे सोवई, रहे सुरति में लाग ॥ २४० ॥
खट्टा मीठा कडुआ, बहु बोलल बहु डोल।
सात्विक् मन को राखिये, संयम कहे अडोल ॥ २४१ ॥
सत्य अहिंसा चौर नहिं, ब्रह्मचर्य लघु खाय।
दया क्षमा पुनि धीरता, आर्जव यम मुनि गाय ॥ २४२ ॥
तप संतोष अरु दान शुभ, आस्तिक् भाव विचार।
करे अर्चना राम की, नित्य नियम निरधार ॥ २४३ ॥

हरिगीतिका छन्द

सहज आसन सिद्ध पंकज, खेद बिनु जो नर लावहीं।
पुनि जाइ बैठि इकान्त में, यह योग आसन गावहीं ॥

सह गर्भ प्राणायाम करि, निज स्वाँस गति सुस्थिर करे।
रेचक सु पूरक कुम्भ का, त्रय भेद भी निर्णय धरे ॥२४४॥

दोहा—ऊर्ध्व चढ़ावे स्वाँस को, पूरक कहिये सोय।
भीतर की किरिया करे, पूरण पूरक होय ॥ २४५ ॥
शनैः शनैः निज स्वाँस को, बाहर देइ उतार।
ताको रेचक जानिये, मुनिवर कीन्ह विचार ॥ २४६ ॥

अर्द्ध गीतिका छन्द

पुनः स्वाँस को खींच कर, मस्तक में धारण करे।
कुम्भक ताको जानिये, यहि विधि किरिया निति करे ॥२४७॥

दोहा—चित सुस्थिर नित चेत करे, धरे ब्रह्म का ध्यान।
इसको कहिये धारणा, धारण शुभ गुण जान ॥ २४८ ॥
ध्यान करे उस ईश का, चंचल मन को रोक।
दीप शिखा सम वृत्ति भई, सोई ध्यान अशोक ॥ २४९ ॥
निज विषयन ते इन्द्रियां, रहित दोष को त्याग।
चित विषयन ते रोकना, प्रत्याहार सु बाग ॥ २५० ॥
बाहर को देखे नहीं, अन्तर लावे ध्यान।
निज स्वरूप में लीन हो, ताहि समाधि तुँ जान ॥ २५१ ॥
मनन मथन निति कीजिये, तब निकलेगा घीव।
आदि अन्त और सर्वदा, सुखी रहत सो जीव ॥ २५२ ॥
सत संगति है सूरभी, पय उपदेश समान।
श्रवण रज्जु मन माथनी, मैं वल्लव मथ जान ॥ २५३ ॥
परम तत्त्व घी पाइया, जन्म मरण का नाश।
योग कर्म से मुक्त हो, बने राम का दास ॥ २५४ ॥

दूसरी विधि

त्रिकुटी मध्ये ध्यान धरु, करो ब्रह्म का जाप।
तहाँ अनाहत् होत है, बाजा बहुत अमाप ॥२५५॥

हरिगितिका छन्द

चिणीति प्रथम चिंचिणीति है, पुनि तीसरे घण्टा बजे।
पुनि तूर्य में ध्वनि शंख की, पँचवें सु तंत्री गुंज जे ॥
षट् में सु ताल सुनात है, पुनि सात में वंसी बजे।
अष्टम मृदंग कि धुनि महा, नव में सु भेरी बाज जे ॥२५६॥

दोहा—दश में होत सु शब्द वह, यथा मेघ घन घोर।
ताहि सुनत मन प्रेम ते, जिमि जंगल का मोर ॥ २५७ ॥
भेरी झरना उदधि घन, चँग सु शब्द समान।
अन्त में किंकिणि बासुरी, बीणा भँवरा जान ॥ २५८ ॥
कलरव आदिक ध्वनि बहु, बाजत हैं दिन रैन।
योगी जन तिन सुनत हैं, लहे परम सुख चैन ॥ २५९ ॥
प्रथम चिंचिणी नाद पुनि, गात्र भंग सो होय।
तीजे स्वेदन होत है, कांपत शिर चौथोय ॥ २६० ॥
पँचवें तालू स्रवता, षटमें अमिरित पान।
सतवें हो विज्ञान अति, अठवें परासुजान ॥ २६१ ॥
नवमें देह अदृश्य हो, दिव्य नेत्र गत दोष।
दशमें ब्रह्मऽरु जीव की, होत एकता मोष ॥ २६२ ॥
षट चक्रन को वेधि के, कमलन बेधे सोय।
गोलहट मुद्रा आदि जो, शब्द अनाहत् होय ॥ २६३ ॥

छन्द बटोही माला

१. मूलाधार चक्र गुदा स्थान में चतुर्दल का कमल है।
स्वामी तहाँ के गणेश , लवण सागर रंग लाल कमल है ॥२६४॥

गद्य

२. यहाँ पर ६ सहस्र श्वाँसों का जाप (करना पड़ता) है।
व, श, ष, स की यहाँ से उत्पत्ति हुई है।
स्वाधिष्ठान चक्र नाभिस्थान के ६ अंगुल के नीचे है। यहाँ पर ब्रह्मलोक है। और षट् दल का कमल एवं पीला रंग है तथा मधु सागर प्रजापति स्थान से ६ सहस्र श्वाँसों का जाप है। यहाँ एवं ब. भ. म. य. र. ल. की उत्पत्ति है।

३. मणिपूरक चक्र नाभिस्थान दश दल का कमल श्याम रंग है। विष्णु स्थान क्षीरसागर ६ सहस्र श्वाँसो का जाप है। यहाँ से ड़. ढ़. ण. त-थ द ध न प.फ की उत्पत्ति हुई है।

४. अनाहत् चक्र हृदय स्थान में द्वादश दल का कमल स्वेत रंग का है। यहाँ पर अमृत संजीवनी सुरा सागर शंकर जी का स्थान एवं लोक है ६ सहस्र श्वांसों का जाप है। यहाँ से क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ की उत्पत्ति हुई है।

५. विशुद्धि चक्र कण्ठ स्थान में षोडस दल का कमल है। श्वेत रंग दधि सागर सत्य लोक शारदा देवी का स्थान एक सहस्र श्वासों का जाप है। यहाँ से अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ एऐ ओऔ अंअः की उत्पत्ति हुई है।

६. त्रिकुटी चक्र दोनों भौंहों के बीच का स्थान है। द्विदल कमल लाल रंग घृत सागर महा विष्णु स्थान एक सहस्र श्वासों का जाप है। ह क्ष की उत्पत्ति यहाँ से हुई है।

७. गगन-भँवर गुहा तथा श्याम रंग का कमल तहाँ का देवता व्यापक ब्रह्म अजपाजाप सहस्र जाप है। ब्रह्माण्ड में शुद्ध अमृत का कुण्ड है। वहाँ पर अमृत झरता है। लम्बिका क्रिया योग के द्वारा योगी जन पान करते हैं।

दोहा—दृश्यमान को त्यागिये, निज स्वरूप में जाग।
हृदय गुहा में बैठि के, त्रिकुटी मध्ये लाग॥ २६८॥

प्रथमें जागे नागिनी, पता लगावे ताहिं।
वाके वदन समाइये, चंचलता मन नाहिं॥ २६९॥
कुण्डलनी है नागिनी, ताहि जगावे सोय।
ज्ञान मिले सुखधामहूँ, सदा अनन्दी होय॥ २७०॥
मातृभाव से ध्यान धर, गुरूमंत्र का जाप।
सिद्ध होय सब काम तब, होवे आपे आप॥ २७१॥

बाहर से मन रोकिये, करिये अन्तर ध्यान।
सिद्ध बनज में बैठिये, सीधा लकड़ी जान॥ २७२॥

सोहम सोहम निति जपे, सो अजपा होइ जाय।
भँवर गुफा में बैठि के, भीतर जाय समाय॥ २७३॥

सौ सहस्र अष्ट षोडशहिं, सहस्रार के पार।
तत्त्वन दीप्ति सु त्यागि के, जेते वस्तु असार॥ २७४॥

चिदाकाश में लागिये, जहाँ ब्रह्म सु स्थान।
ताहि परे कुछ और नहिं, कहे और नहिं जान॥ २७५॥
अंकन में नव से अधिक, अपर अङ्क नहिं होय।
तैसे जानो ब्रह्म को, उससे परे न कोय॥ २७६॥
राति दिवस नहिं होत जहँ, धूप छाँह भी नाँहि।
घट-बढ़ नहिं तहँ देखिये, अपनो अन्दर माँहि॥ २७७॥
असी वस्तु को त्यागिये, और अठाइस छोड़।
तिन शाखन को त्यागि के, निज स्वरूप मन जोड़॥ २७८॥
जन्म-मरण होवे नहीं, दुख सुख एक समान।
अमर पुरी घर आपना, गुरु कबीर पहँ जान॥ २७९॥

सोरठा

मुद्रा आदिक ज्ञान, गुरुजन से निर्णय करे।
होय नहीं कुछ हानि, सावधान साधन करे॥२८०॥

दोहा—अग्नि तत्त्व है चाँचरी, नयनन माँही वास।
रसा तत्त्व है भूचरी, त्रिकुटी ओम् निवास॥ २८१॥
पवन तत्त्व सु अगोचरी, भँवर गुहा सुस्थान।
सोहम शब्द निवासिनी, पंचम आगे जान॥ २८२॥

अर्ध गीतिका

व्योम तत्त्व है उन्मुनी, शक्ति शब्द तद् जानिये।
गगन सनेही झिलमिली, ज्योति वहाँ पर मानिये॥२८३॥

दोहा—वारि तत्त्व है खेचरी, दशवाँ द्वार ठिकान।
ररंकार का शब्द है, जय देवन सुस्थान॥ २८४॥

परा पश्यन्ती मध्यमा, और वैखरी जान।
त्रय भाषिक त्रय रूप को, महा तत्त्व का ज्ञान ॥ २८५ ॥
देखि विचारे अग्र चल, सुष्मणि आदिक भेद।
सबहीं झगड़ा छोड़ि के, लहे सुज्ञान अखेद ॥ २८६ ॥

गद्य

सुषुम्णा ईडा पिंगला ब्रह्माण्ड कला की मुख्य नाड़ियाँ हैं। ईडा नाड़ी नाक के बायें छिद्र द्वारा बहता हुआ वायु है। यह स्त्री का अंश है इसी को चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। इसी नाड़ी में सावित्री और ब्रह्मा दोनों का सु निवास स्थान है। इसको उत्पत्ति की नाड़ी जानो। पिंगला नाड़ी नाक के दाहिने छिद्र द्वारा निकलता हुआ वायु है। यह पुरुष का अंश है इसको सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। इसीमें लक्ष्मी तथा विष्णु का निवास स्थान है। यह पालन की नाड़ी है। सुष्मणा नाड़ी दोनों छिद्रों के द्वार से निकलता हुआ श्वास वायु है, जो मिल के भीतर भीतर और कभी समान चलते या मस्तक में स्थिर रहते हैं। यह नपुंसक का अंश है। यही राहु नाड़ी चन्द्र सूर्य को ग्रास करने वाली है। उसी में महादेव पार्वती दोनों का निवास स्थान है। यह प्रलय की नाड़ी है। ईडा नाड़ी से श्वास नाक के भीतर खीचने को पूरक क्रिया कहते हैं पिंगला नाड़ी से श्वास धीरे-धीरे उतार कर बाहर डारते हैं यह रेचक क्रिया कहलाती है। दोनों ईडा पिङ्गला नाड़ियों का श्वास मस्तक में छिपाकर स्थिर रखते यह कुम्भक क्रिया कहलाती है। यह तीनों क्रिया

दोनों नाशा पुट द्वारा उलट-पुलट करने से एक प्राणायाम कहलाता है। तिसमें पूरक से दूना रेचक को और रेचक से दूना कुम्भक को समय देना चाहिये। यह योग का एक अंग है। इन्हीं सब क्रियाओं से स्वरोदय ज्ञान भी होता है।

दोहा—गुरुमुख द्वारा बूझि के, सारासार विचार।
तजे असत्यहिं सत्य गहे, जेते वस्तु विकार ॥ २८७ ॥

मुक्त होय संशय नहीं, परम धाम सुख रूप।
तहाँ जाय आवे नहीं, परे न भव-तम-कूप ॥ २८८ ॥

जैसे गेहूँ धान जब, भड़भूजा अति भून।
सो अंकुर होवे नहीं, कोटि बार जो बून ॥ २८९ ॥

तैसे जानो जीव को, बीज बासना नाश।
भूनि अगिन वैराग्य महँ, पुनः न भव की आस ॥ २९० ॥

कहते कितने बात यह, वैदिक मता विरोध।
मुक्त न हो संतत लिये, ऐसा कहि परबोध ॥ २९१ ॥

यह नवीन की कल्पना, समीचीन नहिं जान।
नहिं प्रमाण कछु वेद का, शब्द अर्थ मनमान ॥ २९२ ॥

ऐसो को अति शीघ्र तज, लागे गुरु-पद राम।
कहे कछू सो कहन दो, तूँ कर अपना काम ॥ २९३ ॥

बुद्धि वाद संसार है, इससे अति हरि दूर।
तर्कन से नहिं पाइये, अपने-अपने सूर ॥ २९४ ॥

एक तर्क इक काटता, याते सब अज्ञात।
सभी सधारण जानिये, वहाँ न पहुँचे तात ॥ २९५ ॥

अपनो-अपनी बात को, साँच कहैं सब लोग।
पूर्व रहित सु प्रमाण से, ताहिं तजो कर योग॥ २९६॥
मात पिता को तारिये, करिये तप अति घोर।
मास दशों जो गर्भ में, किया भरोसा तोर॥ २९७॥
जाहिं रसा पर जन्म भा, सोउ आस तव कीन्ह।
ता ऊपर तुम भार अति, असन बसन जो दीन्ह॥ २९८॥
तात मात भू पितर जन, निज हित लायो आस।
उन्नति॰ करिहैं देश की, बने राम का दास॥ २९९॥
महिमा प्रभु श्री राम की, क्या कोउ करै बखान।
सर्व लोक परगट कियो, परम देव मतिमान॥ ३००॥

माला छन्द

प्रथमे प्रकट्यो व्योम, द्वितीये पवन बखाना।
तृतीये अनल को जानिये, चौथे जल प्रकटाना॥
पँचवें भूतल प्रकट भूत है, सब को दे सुस्थाना।
तबहिं परेश्वर इच्छा कीन्हा, जीव जगत उत्पाना॥३०१॥

हरिगीतिका छन्द

पुनि प्रथम वाम स्वरूप धरि, त्रयरूप में प्रकटित भयो।
सो अन्न औषधि रूप में, नाना स्वरूप विभक्तयो॥
अण्डादि उषमज पिण्ड महँ, निज रूप को प्रकटित किया।
पुनि विश्व को सुसमेटि करि, उर माँहि सर्व निवासिया॥३०२॥
जानु नर तद् पेट अंतरिछ, द्वै लोक मुर्धा है कहा।
रवि सोम चक्षु नवीन हैं, मुख सर्व भच्छो है महा॥

सु श्रवण जाकी है दिशा, वह देव कैसा मानिये।
नहिं जानने में आवता, गुरुदेव देव बखानिये ॥३०३॥

दोहा—ऐसो हरि को त्यागि के, भर्रम फिरें चहुँ ओर।
सबकी रक्षा करत जु, व्यापक है सब ठौर ॥ ३०४ ॥
ताहिं भजे चित चैन हो, काल कर्म नहिं व्याप।
नाथ दयालू परम हितु, निर्गुण ब्रह्म अताप ॥ ३०५ ॥
सृष्टि पूर्व में आप था, नहीं दूसरा कोय।
ज्यों गेहूँ के बीज महँ, आँटहिं आटा होय ॥ ३०६ ॥
सकल चराचर देखिये, सो हैं सभी अनादि।
कुम्भ मृत्तिका ते भयो, गुड़ से शक्कर आदि ॥ ३०७ ॥
वस्तु एक बहु रूप है, तासो भिन्नहिं नाहिं।
तैसे सब कुछ ब्रह्म है, जो दीसे जग माँहिं ॥ ३०८ ॥
ऐसा ज्ञान विचारिये, सबहीं ब्रह्म स्वरूप।
जन्म-मरण होवे नहीं, मौन रहे निज रूप ॥ ॥ ३०९ ॥
जलहीं से सब होत हैं, बुद्बुद् फेन तरंग।
तैसे एकहिं ब्रह्म से, भयो अनेकन रंग ॥ ३१० ॥
यही ज्ञान समिचीन है, यही मुक्ति कर हेत।
सद्गुरु की सेवा किये, मोक्ष अभय पद देत ॥ ३११ ॥
इससे कुछ जो और कह, सो मिथ्या तद् ज्ञान।
ताका संग न कीजिये, होत जीव का हान ॥ ३१२ ॥
कूप यथा संसार है, तद् बाहर भू मान।
जीव सकल मण्डूक हैं, तद् अन्तर बस जान ॥ ३१३ ॥

सो बाहर की भूमि को, दर्शन कैसे होय।
जगत परे परब्रह्म है, तिस को लखै न कोय ॥ ३१४ ॥
आप कह्यो सब जगत का, करता हरि को जान।
सो मैं जाना तासु को, शंका एक महान ॥ ३१५ ॥
एक ईश के राज्य में, नहीं साम्यता देख।
एक विरोधी एक हैं, लड़ते सब को पेख ॥ ३१६ ॥
शान्ति नहीं संसार में, दुखिया हैं सब लोग।
क्यों न एकता करत प्रभु, सब जन बने सुयोग ॥ ३१७ ॥
ईश्वर विरचित वस्तु जो, तामें नहीं विरोध।
रवि शशि पावक पवन जल, नहीं भिन्नता सोध ॥ ३१८ ॥
सब के लिये समान हैं, भूमि जहाँ तक होय।
ईश काम में एकता, यामें होय न दोय ॥ ३१९ ॥
मानव विरचित बात जो, नहीं एकता चार।
आपस में सब लड़त हैं, दुखी सकल संसार ॥ ३२० ॥
नारि पुरुष के रूप में, देखो एक समान।
सभी इन्द्रियाँ ठौर पर, नहिं विपरीत बखान ॥ ३२१ ॥
काला गोरा छोट बड़, मोटा पातर कोय।
अच्छे बूरे देश में, जो नर पैदा होय ॥ ३२२ ॥
यह निज कर्मन का फल, और न दूसर हेत।
ईश्वर साक्षी रूप है, जो जैसा तस देत ॥ ३२३ ॥
नहिं विरोध है काहु से, जैसे रवि शशि जान।
यह अनादि सब सृष्टि है, उपादान भगवान ॥ ३२४ ॥

कभी सु सूच्छम रूप में, कभी देखाई देय।
यामे जो जस कर्म करे, सो ताकर फल लेय॥ ३२५॥
देखत सब भगवान हैं, तिनसे छिपा न कोय।
जहँ देखो तहँ राम को, व्यापक है हरि सोय॥ ३२६॥
लकड़ी में जिमि पूतली, पुतरी में जिमि दारु।
लोहे में जिमि छूर्प है, छूर्प लोह में सारु॥ ३२७॥
तैसे यह जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माँहिं।
इस में शंका मति करो, संशय में सुख नाँहिं॥ ३२८॥
वेद पुराण वेदान्त मत, गुरु कबीर का ज्ञान।
सो सब मैं यामें कहा, नहीं कल्पना ज्ञान॥ ३२९॥
वैदिक मत यह जानिये, दोष रहित सुख रूप।
याते यह सब मान्य है, और न यहि अनुरूप॥ ३३०॥
इस को करत समाप्त अब, गहे लहे निज रूप।
गुरु कबीर की वन्दना, राम भजत भय चूप॥ ३३१॥
राम कबीर गोपाल शिव, शक्ति गणेश जु नाम।
वस्तु एक बहु नाम है, गुण अनेक सुख धाम॥ ३३२॥
जिमि अकाश के भेद बहु, बहुत अकाश न होय।
तैसे जानो ब्रह्म को, उससे भिन्न न कोय॥ ३३३॥
एक जानि बन्दन किया, सो हरि अपनो रूप।
इस में भर्म न कीजिये, ओम् रटत हो चूप॥ ३३४॥
भर्म करत सो जानिये, वहाँ न पहुँचा होय।
सो विच विचवा जीव है, और और कह सोय॥ ३३५॥

ब्रह्म अनन्त न अन्त है, जिमि विज्ञान अनन्त।
तैसे जानो ब्रह्म को, कहैं वेद मुनि सन्त ॥ ३३६ ॥
जो इसमें शंका करे, सो अज्ञानी जीव।
गुरु कबीर परसन्न नहिं, मिले न उस को पीव ॥ ३३७ ॥
याते दुविधा दूर कर, भजो सु गुरु पद राम।
बार-बार मैं कहत नर, होवो तुम निष्काम ॥ ३३८ ॥
शिव प्रज्ञा अति पंक नहिं, विष्णू पद में वास।
व्योम क्लेश तद् ज्ञान दे, बृहद् भानु तिहुँ नाश ॥ ३३९ ॥
काम क्रोध व्यापे नहीं, वेद बदन घो पाय।
पाठ करे इस भाग का, सो नहिं भव में आय ॥ ३४० ॥
सत्य बात यह जानिये, करिहैं करुणा राम।
गंगा यह पूरण भयो, लहे परम विशराम ॥ ३४१ ॥

* अष्टम अध्याय समाप्त *

ध्यान विधि

नवम अध्याय

वसंततिलका वृत्तम्

मेरे वचन पर ध्यान कर सदाई।
शोकादि कलमष जो तुम्हरो रहाई ॥
होंगे सकल तव नाश भना सु वेदा।
माया न कर सक कष्ट कभी अखेदा ॥ १ ॥

विक्षिप्त मन थिरता परिपूर्ण ज्ञानी।
जो चित्त महँ हरि प्रेम सदा सुआनी ॥
तप्तै न त्रय ताप सो सुख शान्ति पावे।
हो दिव्य नेत्र महापद भाव आवे ॥ २ ॥

भुजङ्गप्रयात वृत्तम्

पिता है सुमाता वही जन्म दाता।
वही है विधाता वही कष्ट हंता ॥
करो ध्यान प्यारे वही सत्य देवा।
नहीं त्याग भूले करो आप सेवा ॥ ३ ॥
सदा कर्मधारी सदा धर्म धारी।
नहीं त्याग भाई कभी सन्त यारी ॥
करो आप पूजा हरे भेद दूजा।
सदा संत संगे रहो आप पूजा ॥ ४ ॥
बनोगे सु ध्यानी सदा पाद माहीं।
रहेगा तुम्हारा नहीं काम माहीं ॥
तभी राम आके मिलेगें अदोषी।
सु गंगा कहा ज्ञान ऐसा सुमोषी ॥ ५ ॥
तजो कर्म बूरे भजो राम राजा।
तजो आस भाई सभी लोक-लाजा ॥
बनो आप योगी वियोगी विवेकी।
मिले देव देवा भजो राम टेकी ॥ ६ ॥

त्रिभंगी छन्द

आतम ध्यावो सब सुख पावो, मन को रोको भाई।
नाशा आगे मन को लागे, एक वितस्ति बताई॥
निशदिन झगरे करिये रगरे, बार-बार लौटाई।
रोकत रुक जाई वेद बताई, आपे आप समाई॥७॥

बाहर से घूमे भीतर झूमे, जहाँ क तहाँ अमाई।
सब जग लेखे भीतर पेखे, दर्शन हो रघुराई॥
घोर अँधेरा बाहर केरा, देखत कछु न देखाई।
लागि समाधी भाग उपाधी, शून्य सकल जग गाई॥ ८॥

एक समाना देख न आना, जड़ सम ताको जानो।
ज्ञान न ध्याना आप न आना, अच्छा बुरा न मानो॥
एक न दूजा काकी पूजा, चेतनता सब भागी।
कुछ नहिं ज्ञाना सकल भुलाना, जाहि समाधि सु लागी॥ ९॥

चले न बोले आँखि न खोले, कहँ हम यह नहिं जाना।
जग व्यवहारा सकल अचारा, आपे आप भुलाना॥
देह बिरानी हुई अजानी, जन्म मरण भय भागा।
औरन देखत पागल लेखत, उलटे देखत लागा॥१०॥

लक्षण ज्ञानी संत बखानी, लागि समाधि सु जाकी।
औरो नाहीं जग के माँही, विषय भोग मति बाकी॥
ठगते औरन लोगन बौरन, मान बड़ाई भारी।
वंचक ज्ञानी ज्ञान बखानी, लोभ मोह रत नारी॥११॥

राग में रागी दम्भहिं पागी, लोगन को भरमावे।
इन्द्रिन भोगी बनते योगी, शान्ति नहीं वह पावे॥
क्षण में रूष्टा च्छण में तुष्टा, ब्रह्मज्ञान नित गावे।
जैसे तोता हरि गुण गाता, अन्त काल धरि खावे॥१२॥
तैसे जानो वञ्चक मानो, भक्ति भाव नहिं करहीं।
कनक कामिनी मन में आनी, भवसागर में परहीं॥
इनको त्यागो उठिके भागो, ये पापी कलि रूपा।
साधन हीना परम कमीना, सो जानो भव कूपा॥१३॥
हरि हरि जपिये संकट कटिये, राम राम रटि लावो।
इस कलि माहीं ज्ञानी नाहीं, भक्ति भाव हरि पावो॥
बहु परपंची रचे विरंची, संत कहीं इक मानो।
तिनको सेवो अन जल देवो, परम गुरू तद् जानो॥१४॥
सदा त्यागी माया भागी, (हरि में लागे) संत वही भगवाना।
जग से रूठे ऐसो दीठे, पागल रूप बखाना॥
मठ नहिं मंदिर रहत असंदिर, जहाँ तहाँ बसि जावे।
पर उपकारा सदा विचारा, हिरदय माँहि समावे॥१५॥
राम नमामी सब का स्वामी, भजिये भाई हरि गुरु राई।
रामहिं रामा भज घनश्यामा, सबके आतम जीव बताई॥१६॥

सवैया

रामहिं एक अनेक कहावत, रामहिं राम मची सब धामा।
रामहिं राम जपे शिवशंकर, ध्यान धरे नितहीं सुललामा॥

रामहिं राम जपे मुनि नारद, पुनि सनकादि जपे हरि नामा।
रामहिं राम कहे सबहीं ऋषि, रामहिं राम करूँ सु प्रणामा ॥१७॥
राम बिना कछु और न दीशत, तीनहुँ लोक चतुर्दश ठामा।
रामहिं अन्त अरु आदिहुँ रामहि, रामहि मध्य परे सुख धामा॥
राम सुनाम जपे सब सन्तन, रामहिं राम कहै सब रामा।
रामहि लोक प्रलोक सुधारत, राम कहे लहिये विशरामा ॥१८॥
रामहिं के बल सृष्टि भई यह, रामहिं के बल पालन होई।
रामहिं के बल नाश करे हर, राम विना कछु काम न कोई॥
रामहिं छाड़ि भजे नर औरहिं, ताहि नहीं सुख रंचक होई।
राम बिना सब झूठहिं बोलत, राम बिना सुख कैसन कोई॥१९॥
निन्दत रामहिं दुष्ट निशाचर, सन्तन को सुनि के दुख भारी।
जो नहिं जानत है महिमा हरि, सो शठ देवत हैं नित गारी॥
ताहि तजो भजिये शुभ रामहिं, जो सुख-सिन्धु महा मुदकारी।
रामहि जन्म परे परमेश्वर, रामक नाहिं पिता महतारी ॥२०॥
राम नहीं कहुँ आवत जावत, राम नहीं कहुँ देह धरी है।
राम नहीं कहुँ वैर करे कछु, राम सदा निर्दोष हरी है॥
कर्मन के फल देत सदा वह, जो जस आकर काम करी है।
रूप अरूप परे मम रामहिं, प्रेम बिना नहिं देख परी है ॥२१॥
भूरि विलच्छण पूरि रहा हरि, काह कहें कवि कोविद बानी।
जो जस आवत सो तस गावत, आपन आपन वेद बखानी॥
राम बिना नहिं भक्ति लहे नर, राम बिना नहिं होवत ज्ञानी।
राम कृपा जबहीं करते प्रभु, जीव बने तबहीं हरि ध्यानी ॥२२॥

देव कबीर कहे हरि को भज, भूल नहीं तुम मोह महाना।
राम समान न आन कभी वह, व्यापक विश्व परे भगवाना॥
कीन्ह सभी जग को बस में हरि, ताहि परे नहिं है बलवाना।
जो कछु चाहत आप करे प्रभु, दीन दयाल महा मतिमाना॥२३॥

* इति श्रीगंगाशरण-कृत पञ्चम सोपान

नवम अध्याय अजर वाणी समाप्त *



❀ श्रीकबीराय नमः ❀

षष्ठ सोपान

सदुपदेश मणिमाला

अथ दशम अध्याय

दोहा—जाको ध्यावत सकल जन, उतरत हैं भव पार।
सो कबीर गुरुदेव मम, परमानन्द उदार ॥१॥
बन्धन काटे जीव के, दासन सदा सहाय।
वेद सृष्टि को पालता, सर्वोत्तम गुरु राय ॥२॥
श्रीगुरु राम विलास प्रभु, परखायो निज रूप।
अहनिश ताकी वन्दना, जो ज्ञानिन के भूप ॥३॥

शब्द प्रभाती

मन तुम भजिले हरि का नाम। टेक।
को जाने कब चलना होगा बिनु देखा सो धाम ॥
ताते अब तुम चेत करो रे भजन करो निष्काम।
विषय बासना जग को त्यागो लागो गुरु पद राम ॥
होत अनन्द भजन के कीन्हे प्राप्त होत अभिराम।
काल कला कछु व्यापत नाहिं मिले अचल विश्राम ॥
सन्त सकल यह कहत महाजन पहुँचेगा निज ठाम।
गंगाशरण राम के जपते पूरण हो सब काम ॥१॥ ४ ॥

मन तुम छाड़ि देहु अभिमान । टेक ।
चारि दिना लगि रहे चाँदनी , पुनः तमी तम आन ॥
आय अँधेरा कतहुँ न सूझत , भरमि भरमि भरमान ।
इस नगरी में चोर बसत हैं , काम क्रोध मद मान ॥
बिनु लूटे छोड़े नहिं मूरख , तुम क्यों मोह भुलान ।
ज्ञान विवेक क्षमादि महा धन, तेहि गत भयो अजान ॥
तिन से प्रथमे करो उपाई , गुरु चरनन में ध्यान ।
नहिं तो आगे डाका परि हैं , पांच पचीस महान ॥
ज्ञान शृङ्खला ते मन बाँधो , शील क्षमादिक बान ।
दया तोष घर पहरू कीजे , धारिन मारो प्रान ॥
सावधान हो चेत करो अब , तजो सकल अज्ञान ।
जन गंगा चरनन की आसा , हरि कबीर मतिमान ॥२॥५॥

मन तुम सुमिर लेहु हरि नाम । टेक ।
अन्त समय कछु काम न आवत, निकट होत है लाम ।
आनि अवस्था जरा विराजे , लटकि गयो तन चाम ॥
प्राण छुटे पर कहाँ जाहुगे , नगरी कौन सुधाम ।
रविसुत दूत ग्रसन अब चाहत, सो धावत सब याम ॥
मानव देव पुनः नहिं मिलिहैं, ऐसो परम ललाम ।
जाको आस विबुध जन करते, चाहत सुख बिशराम ॥
ताहि पाप तुम भूलि गयो रे, मातु पिता सुत वाम ।
ई सब छोड़ देंगे यहईं , संग न जात छदाम ॥
जन गंगा कोइ संग न साथी , देह परी शम धाम ॥३॥६॥

मन तोहिं विषय न लागत बूरा।
जैसे स्वान अपावन राजी, जानत शठ अति मूरा ॥
तैसे तुम पापी चण्डाला, खात विषय नित कूरा।
व्याकुल हो नित गलिन में घूमत, करत भवन निज घूरा ॥
ऊँच नीच कर भेद न मानत, नारि अमी सम पूरा।
कुगति द्वार भाषत सब मुनिजन, घर पुरीष यह रूरा ॥
अस्थि माँस का बना पूतला, अति दुर्गंध भूनूरा।
तामे चाहत शयन करन शठ, बड़ पापी न लजूरा ॥
एक समय अस आनि पड़ेगा, होत वियोग अधूरा।
जन गंगा जब वह घर जइहो, मारि करत यम चूरा ॥४॥७॥

मन तुम धावत काहें भाई।
होत न सुस्थिर सदा चपलता, बन कुरंग की नाई ॥
चारि तुम्हारे सचिव सयानप, कामादिक दुखदाई।
कही सुनी तुम मानत नाहीं, विषय ओर नित जाई ॥
निशदिन पाप करत तुम पापी, अतिशय कष्ट सदाई।
बोलत झूठ साँच नहिं जानत, तीनि लोक भरमाई ॥
प्राग अयोध्या ध्यावत कबहीं, जो जग तीरथ राई।
बिना शुद्ध उर गति नहिं मिलता, जन गंगा यह गाई ॥५॥८॥

नर तुम कोटिन कर्म कराई।
दान पुण्य व्रत साधन माते, पाठ भजन मन लाई ॥
पंच विषय मन में नित व्यापे, उत्तम जाति कहाई।
आशा करहीं स्वर्ग चलन की, बड़ बड़ यज्ञ कराई ॥

मन चोरी छूटे नहिं भाई, दक्खिन रूप बनाई।
जब लग शुद्ध होत नहिं भीतर, दुर्गुण दोष बहाई॥
तब लगि भरमे यह जगती तल, पाप कटे नहिं राई।
जन गंगा बिन हरि के चरणन, मुक्ति न वेद बताई॥६॥९॥

मन तुम झूठी त्याग बड़ाई।

जासो प्रेम ताहि को अच्छा, स्वारथ हेतु भुलाई॥
अच्छे को चीन्हत नहिं मूरख, तिनमें दोष लगाई।
ताकी निन्दा नित उठि करते, नीचा ताहि दिखाई॥
सज्जन को दुर्जन तुम कहते, लागि हिया में काई।
नित अपमान करत हरिजन का, तिरछे नयन दिखाई॥
मूरख को सनमान देत हैं, नहिं विवेक उर भाई।
जन गंगा त्यागो तत्क्षण में, करु नहिं संगति जाई॥७॥१०॥

मन तुम छोड़ि देहु कुटिलाई।

सूखा द्रुम पच्छी ज्यों त्यागत, सरवर सूखो गाई।
उजड़े वन मिरगा जिमि त्यागत, नारि नपुंसक भाई॥
ज्यों चेला गुरु मूरख त्यागत, बालक मैया माई।
नारि करकसा सज्जन त्यागत, जामे दोष भराई॥
बिनु उदार राजा जन त्यागत, देश भंग होइ जाई।
फाटे दूध लोग जिमि त्यागत, दुष्ट शिष्य गुरु राई॥
दुष्ट मित्र ज्यों पंडित त्यागत, विष युत अन्न मिठाई।
ज्यों अपची बमनहिं को त्यागत, बिनु उद्यम धन माई॥

झूठि बड़ाइन को त्यों त्यागहु, परहित करहु सहाई।
जन गंगा मन निर्मल होवे, हरि से करहु सगाई ॥८॥११

मन रे ध्यान धरो चित लाई।
अर्ध उर्ध्व दोनो के बीचे, त्रिकुटी ध्यान लगाई ॥
काल कर्म सब दूर भगावो, मोक्ष अभय पद पाई।
गंगा दास हिरदै हरि राखो, छाड़ि देहु कुटिलाई ॥९॥१२

मन तुम चेत करो अबहींते।
थाके वपु कछु होवत नाहिं, देखु विचारि सही ते ॥
चौथे पन की आशा त्यागो, जो बहु लोग कही ते।
इस तन की कुछ आशा नाहीं, होगा गमन यही ते ॥
बड़ बड़ बीर धुरन्धर भागे, यहाँ न कोई रहीते।
गंगा रावण आदि गये सब, बालि अनन्त नहीं ते ॥१०॥१३

मन रे किन किन नाम गनी ते ॥
इस माया से कोई न बाँचे, राजा रंक यती ते।
यह संसार असार कहे सब, सेमल पुष्प भनीते ॥
पाँच पचीस पुनः दुख देते, भूले ज्ञान मनी ते।
जहाँ तक यह जग भोग सकल है, दुखहीं दुःख सनी ते ॥
मृगवारी सम तृप्ति न कबहूँ, नित नव चाह बनी ते।
जन गंगा नहिं होत सुखी नर, बिनु हरि भजन धनी ते ॥११॥१४॥

मन तुम प्रीति करो सन्तन से।
और सकल झूठो जग माँहीं, बात करत हैं छल से ॥

संत सदा प्रभु नाम जपत हैं, मोह तियागे मन से।
सदा निमग्न भर्म नहिं तिनको, दया स्वरूपी जन से॥
तिनका संग करो मन मेरा, भाव भक्ति मन तन से।
देत अभय पद मोक्ष जीव को, लेत बचाइ शमन से॥
अपने सौख्य और को करहीं, तपनि बुझावे तन से।
जन गंगा कह सेव करो रे, प्रेम सदा हरिजन से॥१२॥१६

मन तुम सोच करत किस हेत।
रोम रोम में राम रमा है, जिमि मेहदी अरुणेत॥
बिनु हरि के कछु और नहीं सत, निगम कहत अस नेत।
चींटी माटा कीट भिरंगी, सबहिन की सुधि लेत॥
जब नहि गर्भ मातु के आये, तबहिं कूच रचि देत।
पारब्रह्म अविगति अविनाशी, भजहु ताहि करि चेत॥
बिनु हरि के नहिं अपना जग में, तिन से कर तुम हेत।
इस माया में भूल न मूरख, हो मति कबहुँ अचेत॥
छ दर्शन पाखण्ड छानबे, ते अभिमान करेत।
सुर नर मुनि चाहे जो होवे, नाहिं कुशल बिनु हेत॥
भजन करे नीच से नीचहुँ, तद् करुणा हो स्वेत।
गंगा हेत अभय गति स्वामी, सो न आव भव खेत॥१३॥१६

मन तुम क्योंकर करत किरोध।
सो नित तन को देत जलाई, हरि सो होत विरोध॥
नाना रोग शोक नित व्यापे, क्यों नहि ताको रोध।
अपने तो शठ चेत करे नहिं, पर को अति परबोध॥

काम क्रोध में पाप बसत हैं, सुनहु रे नीच अबोध।
जनम-मरण युग छूटत नाहीं, यम-दूतन अति गोध॥
याते तुम मन चेत करो रे, सत संगति में सोध।
जन गंगा श्री गुरु के शरणे, करले आतम बोध॥१४॥१७॥

मन तुम भूलि गयो धन रंग।

नहिं हरि भजसि न गुरु की सेवा, कियो न जाय सतसंग॥
करि हंकार देखि धन योवन, सदा फुलायो अंग।
दुर्योधन कंसादिक की गति, भयो राज तद् भंग॥
चारि दिवस लगि रहना जग में, तुम मति होहु बेढंग।
यह जग अरुण देखि नहिं भूलो, जानिये काँचा रंग॥
सुन्दर देह दियो हैं नर की, मुक्ति हेतु जिमि गंग।
याते रामनाम नित भज ले, पढ़ पुनित परसंग॥
दुर्गुण त्यागि सुगुन को गह लो, करो ज्ञान का खंग।
आशा बासा मारि भगावो, मन वैरीऽरु अनंग॥
सर्व माँहि जिन रूप परखि लो, कर ले योग विहंग।
गंगादास ध्यान नित करना, प्रभु पानी सारंग॥१५॥१८॥

बिनु हरि भजन कुशल नहिं भाई, चाहे बहु विज्ञान पढ़ाई।
जनम अनेक गयो नर ऐसो, सेवत सेमल सुवना जैसो॥
मारत चोंच तूल उड़िआने, भा निरास मन अति दुख माने।
बुद्धि बिवेक हरि की जाको, पशु पच्छी में गिनिये ताको॥
पशु मानव में भेद न कोई, उदर काम समतुल जग दोई।
मानव ताको जानो भाई, गुरु हरि भजन करत दिन जाई॥

पुरुषारथ में रहे निरंतर, धर्म सनातन पालन जो कर।
दया तोष में सदा विराजे, दीनभाव करते शुभ काजे॥
सर्व दोष नहिं भक्ति भरोषा, राम भजत करिये नहिं रोषा।
यह लक्षण मावन के भाषा, चारि पदारथ यामे राखा॥
साँची हाट करो मन मेरा, तब सुख पावे दास घनेरा।
सब सन प्रेम बचन हित बोले, होय सुखी जग में वह डोले॥
सेवक रूप करे सेवकाई, संशय शोक सकल भ्रम जाई।
राम पुरी साँचा व्यवहारा, झूटन के नहि बास उधारा॥
बिना साँच सुख होवे नाहीं, कोटि उपाय करो जग माँहि।
जन गङ्गा यह बात विचारा, साँचा होय तरे भव पारा॥२६॥

भजन बिना सब तुच्छ बतायो।
योग यज्ञ व्रत नियम सकल जग, करत सदा मन लायो॥
बिनु हरि भजन ज्ञान नहि होवे, कोटिन कर्म करायो।
क्षण इक स्वर्ग नरक बहुते दिन, कबहुँ मनुष तन पायो॥
ग्राह श्वान होइ जन्म लेत हैं, पुनि पुनि मन पछितायो।
गलिन गलिन धावत निशिवासर, भोजन शुद्ध न खायो॥
गर्दभ होत रजक के घर में, कर्म की पोट लदायो।
जन गङ्गा श्री राम विमुख से, कहो कौन सचु पायो॥१६॥२७

मन तुम मूरख नीच अनारी।
घर को त्यागि चले वन माहीं, भजन करन हितकारी॥
गुरु की सम्पति देखि भुलाना, हरि का नाम बिसारी।
जो जो नाता घर में लागत, यहाँ भी मोह पसारी॥

कोउ गुरुकाका कोउ गुरुभाई, कोउ गुरुबहन तुम्हारी।
चेला चेली पुत्र सुता मय, सो सो कर व्यवहारी॥
यह सम्पति गुरुवर की मेरे, ममता परम सो भारी।
गृह ते अधिक मोह कुटिया में, गंगा देखु विचारी॥१७॥२८॥

मन रे यह संकट अति भारी।

लोह शृङ्खला या कंचन का, युग्म सो बन्धन कारी।
होत सुगति नहिं विना त्याग के, सुनहु सकल नर नारी॥
याते शरण गहो त्यागी की, मोह निशा भय हारी।
तहाँ जाय के दिक्षा लीजै, जो चाहो भव तारी॥
परम उदार दया के सागर, सो गुरु आनन्द कारी।
सदा उदास रहत विषयन ते, विना प्रेम संसारी॥
लागि समाधि प्रसन्न रहे मन, काम क्रोध गहि मारी।
सो प्रभु भव बन्धन को छेदत, गंगा दास पुकारी॥१८॥२९॥

मन रे मृत्यू आनि विराजे।

पलक एक की आशा नाहीं, क्षिन-क्षिन आयू भाजे॥
चाहत भक्षण तुझको मूरख, शिर पर आनि विराजे।
जाके भय त्रयलोकी काँपे, तोहिं न लागत लाजे॥
तैं मूरख माया के भोगी, काम क्रोध मद गाजे।
यम के मुख में सकल जगत है, क्यों नहिं उर को माजे॥
दुख दावानल चहुँ दिश दीशत, तुम करु आपन काजे।
ब्रह्मा दक सब ध्यान धरे नित, तुम धर गंगा आजे॥१९॥३०॥

आयू बहुत दिनन की रे।
तिनकी आयु वर्ष शत भाषत, वर्ष बहुत दिन जानो रे॥
सत्रह लाख हजार अठासी, आयू सतयुग मानो रे।
द्वादश लाख षट् हजार पुनि, नब्बे और बखानो रे॥
इतनी आयू त्रेता की है, अब द्वापर बतलानो रे।
आठ लाख चौषठि हजार पुनि, द्वै पग ताहि जतायो रे॥
चारि लाख बत्तिस हजार में, कलियुग बात बतायो रे।
जन गंगा आगे विस्तारा, जो मुनि जन सब गायो रे॥२०॥३१॥

आयु महा पुरुष विस्तारा रे।
बीते अब्द लाख तैतालिस, बीते बीस हजारा रे॥
एक चौकड़ी युगन की कहिये, ताकर सुनो विचारा रे।
इतनी इतनी युग चौकड़ियाँ, नव हजार हो जाती रे॥
ब्रह्मा जी का एक दिवस हो, ऐसी पुनि हो राती रे।
दिन को रचता सृष्टिहिं धाता, सोये परलय जानो रे॥
लोक पिता के दिवस जो कहिये, सब जन कल्प बखानो रे।
जिसमें चौदह इन्द्र होत हैं, राज करत मरि जायो रे॥
वर्ष तीनि सौ साठि दिवस का, जो अज दिवस जनायो रे।
यह वर्षन से सौ तक जानो, ब्रह्मा जी की आयू रे॥
इतनी लम्बी जिनकी आयू, सो भी काल डरायू रे।
तुम मूरख क्यों भूल रहा है, नर क्षण माँहि काल के गाल॥
तजो गुमान भजो गुरु हरि को, जन गङ्गा यह बैन रसाल॥२१॥३२

मन तुम सहज योग चित दीजै।
सदा अनन्द कष्ट नहिं व्यापे, ज्ञान-सुधा रस पीजै॥
जन्म-मरण नहिं होवे तिनका, एक समान रहीजै।
श्री गुरु राम सकल में देखे, भाव एक सम कीजै॥
जैसे महाकाश सब घट में, व्यापक नित्य कहीजै।
तैसे आतम सब के माँहीं, घट घट बास करीजै॥
ऐसी दृष्टि करो मन मेरा, राग-द्वेष हत दीजै।
दया छमा संतोष मयत्री, भक्ति भाव प्रभु रीझै॥
सदा सु ध्यान रहे परमातम, बात कहे नहि खीझै।
अन्तर दृष्टि करो मन मेरा, अनुभव आतम भीजै॥
खुले नयन जगती तल देखे, कष्ट नहिं तन कीजै।
सदा प्रसन्न उदास रहे पुनि, हित की बात भनीजै॥
विषयज्ञान गो बसी न होवे, और न उर में लीजै।
जन गङ्गा यह सहज योग है, होवे मुक्त पतीजै॥२२॥२३॥

सब से न्यारा स्वामी मेरा।
पाँचो महा भूत नहिं कहिये, चाँद सूर्य नहिं तारा॥
पंच कोष नहिं प्राण पाँच हैं, तीनि अवस्था पारा।
पाँच धनंजय आदिक नाहिं, दश इन्द्रिय नहिं सारा॥
चारि सो अन्तःकरण न कहिये, नहिं वपु गुण कर्तारा।
पंच सु मुद्रा अष्टम नाहीं, अष्ट कमल चक्रन पट पारा॥
सहस्रार नहिं शब्द अनाहत, सुष्मणि त्रय से न्यारा।
सहस कमल षोडश भी नाहीं, भँवर गुफा से पारा॥

मूल प्रकृति नहीं गुण तीनों, महा तत्त्व नहिं यारा।
नहिं विराट वाणी भी नाहिं, विश्व पराग नियारा॥
क्षर-अक्षर दोनों का स्वामी, है वह निगु आकारा।
द्वैताद्वैत उभय का दर्शक, काल कर्म से पारा॥
द्वादश अंगुल त्रिकुटी मध्ये, परम ज्योति उजियारा।
ताको प्राप्ति होत मन जबहीं, नहिं आवत संसारा॥
परम उदार दया के सागर, हरे मोह भव भारा।
जन गङ्गा प्रभु ज्ञान स्वरूपी, मुनि जन कीन्ह पुकारा॥२३॥३४॥

मन रे अब चल तुम वह देश।
जहाँ के गये पुनः नहि आना, रंचक नाहिं कलेश॥
माया मोह तहाँ नहिं व्यापे, काल न पकड़त केश।
सब का पालक मेरा स्वामी, तिहुँ पुर केर नरेश॥
सत्य लोक में आप विराजे, नाम रूप नहिं भेष।
अद्भुत अगम अनूप निरंजन, पार न पावत शेष॥
जो देखे तद् रूप बनों हैं, कौन कहे संदेश।
जैसे बुन्द समुद्र समानों, गङ्गा गुरु उपदेश॥२४॥३५॥

सखी रे योवन आनि विराजे।
सो मद मस्ती मोहिं सतावत, कहूँ न काहु से लाजे॥
विषयाकार भई मम सुरती, कब मिलिहैं युवराजे।
है निर्दयी दया नहिं उर में, आय मिलत नहिं आजे॥
मइके मोहिं बहुत दिन बीते, नहिं यह देश सुहाते।
माता पिता अन्ध मम भाई, जो नहिं व्याह कराते॥

योवन गये कौन सुख पइहों , जरा अवस्था आते ।
मांग हमारि बिना सिन्दुर की, लागत लाज टिकाते ॥
पति विहीन सिंगार न करना, सब जन दोष बताते ।
देखो जिधर उधर है फीको, शशि में दाह दिखाते ॥
सकल जगत अब सूना लागे , सब विपरीत सु बाते ।
यह दुख कहों काहि से सजनी, नहिं कोउ अपनो भाते ॥
भागि हीन मैं सुनहु सखी री, जन्म कुमारि गवाते ।
मात पिता से जाय कहो यह, जन गङ्गा अकुलाते ॥२५॥३६॥

सखी रे व्याह हुआ अब मोर ।
मात-पिता तब बात मानि के , ढूढ़ेउ वर बरजोर ॥
मोहिं देखि के पास न आवत, संतत नाक सिकोर ।
काल रूप यह सेज भई है , व्यापत कष्ट करोर ॥
द्वादश वर्ष आस मैं कीन्हा , ताकत सासुर ओर ।
कब प्रियतम मुख देखब सजनी, ऐसी इच्छा जोर ॥
आय यहाँ वह बात न पूछत , हिरदै बड़ा कठोर ।
ताहि देखि हम बोलत नाहीं, मैं तो बड़ी लजोर ॥
यहँकी वहँकी झांक लगाऊँ , खिड़किन प्रीतम ओर ।
रूप विलोकत मुरछा आवत , बिनती सुन्दरि तोर ॥
जाय पिया से कहु संदेशा , यह बाला दुख मोर ।
अब तो मैं मैके पुनि चललीं, आइब पुनः बहोर ॥
तेरे संग में व्याह हुआ है , जगती भर में सोर ।
जन गङ्गा से आय मिलो अब, होन चाहता भोर ॥२६॥३७॥

सखी रे रूष्ट हुये मम नाथ ।
कौन मनावे प्रीतम बैरी, अबला मैं जु अनाथ ॥
कहे सुने शेजिया पर आये, चरन नवाओं साथ ।
मेरी ओर पीठ करि सूते, नहिं कर पकड़त हाथ ॥
संग रहत सुख सपनेउ नाहीं, सुसुकि सुसुकि दिन जात ।
बिरह बाण मोहिं आनि सतावत, दिन-दिन पीला गात ॥
व्याह हुआ कछु लाभ न सुन्दरि, नहिं पिउ मोहिं सुहात ।
सासु ननद मम दोष बतावत, जन गंगा सकुचात (अकुलात)॥२७।३८
सखी मुझको व्यभिचारिन जान ।
ताते पिया बात नहिं पूछत, दोष न तिनका मान ॥
जो पतिव्रत नारि मैं होती, रहत न गर्व गुमान ।
तो प्रभु आय आपहीं मिलते, दोनों एके प्रान ॥
झूठहि देखि रूप हम भूली, मैं बाला अज्ञान ।
आपनि दशा कौनि विधि वरनो, सुन रे सखी सुजान ॥
सूखी घास मेघ की आसा, चातक के सु अमान ।
कुमुद चकोर वियोग सोम के, जिमि सरोज के भान ॥
ग्रीषम ऋतु तन झौंसि दियो मम, काया रोम सुखान ।
कब आवे वर्षा ऋतु सजनी, तब मैं सकल जुड़ान ॥
शालि अन्न पावस बिनु जैसे, शशि बिनु रजनी जान ।
पुरुष बिना व्याकुल यह बाला, गंगा चकई हान ॥२८॥३९॥
सखी रे सुधरि गया मन मोर ।
अवगुण सकल त्यागि के सुन्दरि, पति अस्तुति अति जोर ॥

शील सिंगार प्रेम का काजल, दया दान हरि ओर।
ज्ञान विवेक सु भूषण कीन्हा, शम दम वस्तर सोर॥
संयम नियम असन सुखदायी, क्षमा भवन है घोर।
तोष आर्जव घर की सम्पति, ध्यान असूया जान॥
मन मंदिर में हरि को थापा, शरधा फूल समान।
पूजा कीन्ह भाँति बहु सजनी, हरि गुण धूप बखान॥
विरह अनल में होमा सुन्दरि, हुआ सु मुदित महान।
जेते शुभ कृत संतन भाषे, किये हुआ कल्यान।
गङ्गा दास बहे पुरवइया, लाग वलाहक मान॥२९॥४०॥

सखी रे मेघ उमड़ि अब आया।

मीन नीर बिनु व्याकुल थी मैं, नभ में आस लगाया॥
बरत मेघ पियूष की धारा, अमर हुई यह काया।
सूखे तृण तन में हरियाली, बादल निशदिन छाया॥
मेढक बैन रसाल वेद ध्वनि, मन सुनि अति सुख पाया।
अर्ध नींद मैं स्वपना देखा, पिउ से दरस कराया॥
गई निशा ऋतु वर्षा बीते, शरद ऋतू चलि आया।
फूले काश व्योंम भा निर्मल, जन गङ्गा दुख जाया॥३०॥४१॥

सखी रे पूरण आश हमारा।

बीते हीम शिशिर भी बीते, जामें मोद अपारा॥
चहुँदिश खोले पुष्प दिखाते, जो मन को सुख कारा।
सरसो अलसी मटर फुलाने, प्रातः मोति बिखारा॥

उभय ऋतुन की सोभा सजनी, विरचा है करतारा।
सब जन सुखी नींद से सोवत, कीन्हे बन्द किवारा॥
परम निरोग काल यह सजनी, क्या कोई बरननिहारा।
तीनों ताप शान्ति भा सुन्दरि, काल कर्म सब टारा॥
लागि समाधि अटल अब संतत, शान्त सकल घर द्वारा।
मैं अरु मोर भाव नहिं तेरो, कहाँ सकल संसारा॥
सुन्न सहज में मन अब रमता, उड़ता मोद अपारा।
ग्रीषम ऋतु नहिं मोहिं सतावत, गङ्गा मिला पियारा॥३१॥४२

सखी रे आया अब रितुराज।
सेवा अरच पती की किन्हा, सुधरि गयो सब काज॥
कल कण्ठा की मधुर बैन सुनि, मन की दुविधा भाज।
पिया हमार सुदिन पठवायो, हम सुनि के अति गाज॥
ताके पीछे आये प्रीतम, लै कहाँर अरु साज।
लागि बरात दुआरे सुन्दरि, बाजन बहु विध बाज॥
देखि सीत्रिका अपने हरि की, भा प्रसन्न मन आज।
मंगल गान करत सब सखियन, हमरे लागत लाज॥
भइल गवन हम ससुरे चललीं, त्यागि दिया मन बाज।
आइ निशा दो एक भवन में, जन गङ्गा सुख राज॥३२॥४३॥

सखी रे प्रीतम भा अब मोर।
ताहि देखि हम और न देखत, सो चोराय चित चोर॥
जैसे शरद ऋतू के शशि की, लायो ध्यान चकोर।
तिमि अब तुम मोहिं जानु सयानी, ताकत पिउ की ओर॥

आँखि ओट जब होवे कबहूँ, तन में जात छिरोर।
महा भयंकर भव बन लाँघे, जहाँ महा तम घोर॥
हम मति में चेतन मम प्रीतम, यह जग माहीं सोर।
जन गङ्गा दो एक भयो हैं, रुक्मिनि नन्द किसोर ॥३३॥४४॥

सखी रे मइके से चलि आव।
तोहिं विरानी लाज न लागत, दूषित तोर स्वभाव॥
पाँच पचीसन नयन लड़ावत, यहि विधि योवन जाव।
दूषित बसन पीय नहिं पूछत, पानी फिर नहिं आव॥
जो तुम चाहो पिव से मिलना, निर्मल बुद्धि बनाव।
गङ्गा नाथ दया तव करि हैं, जन्म मरण नहिं पाव ॥३४॥४५॥

सखी रे चलो पिया के पास।
ऊँचे नगर शिखर पर घर हैं, होत न कबहूँ नाश॥
सेज लगी फूलन की तहवाँ, चँवर ढुरावत दास।
तैं रे मीन नीर में प्यासी, वहाँ न कोई प्यास॥
सदा अमी रस चुवत ऊर्ध से, अति सुगंध है वास।
सूक्षम है अति मारग बाला, ग्रीषम बारह माँस॥
पीछे मुह करि चलना होगा, ऊँचा यथा अकाश।
खोले कमल सरोवर माहीं, बहता तीनि बतास॥
सोहम सोहम होत महा ध्वनि, तहवाँ अति परकाश।
जन गङ्गा तहँ स्वामी आपन, दरशन से गत त्रास ॥३५॥४६॥

सखी रे यह जगती दुख रूप।
बिना पिया सब सूना लागे, देखत सकल कुरूप॥

तृष्णा डाइन सब को खावे, काम क्रोध मद कूप।
तिरविध ताप तपत हम निश दिन, कहि न जात रह चूप॥
द्रिघ तुण्डी अहि की गति सजनी, माया के अनुरूप।
थाके त्याग क्षिप्र में सुन्दरि, जग परपंच अनूप॥
प्रीतम के ढिग लागि रहो रे, जो भूपन के भूप।
एकनेक होइ सोय रहो रे, गङ्गा दास निरूप॥३६॥४७॥

सखि रे हम लायो संदेश।
पीव हमार जहाँ पर रहता, ऐसा है वह देश॥
जग मग ज्योति देखु निशि वासर तहँ नहिं पंच कलेश।
एक भवन सुन्दर अति लागे, रहता जहाँ सुरेश॥
मान सरोवर है तिर धारा, खीले कमल दिनेश।
हंस तहाँ मोती चुनि खाता, भँवर कमल गुंजेश॥
राग रागिनी गान सुनावत, बैठा तहाँ परेश।
महा शुन्न नहिं और तहाँ है, अद्भुद हरि का भेष॥
शान्ति स्वरूप भूप है सुन्दर, करम धरम नहिं शेष।
जन गंगा अब ज्ञान न निज का, औरन को आदेश॥३७॥४८॥
दोहा—जो यामे नित प्रेम करे, लहे सकल सुख जीव।
मुक्त होय संशय नहीं, दर्शन दें हरि पीव॥४९॥

* दशम अध्याय समाप्त *

संध्यावन्दन

एकादश अध्याय

मोतिय दाम छन्द

दयालु कबीर विभूषित ज्ञान, अहै महिमा तव दिव्य महान।
न जो सुनते गुरु आप पुकार, न होत कभी जन केर उधार॥१॥
महा दुख घेरि रहा गुरुराज, करो सब दूर बने मम काज।
अनाथ सुनाथ दया करि भूरि. हरो मद काम रहूँ हम दूरि॥२॥
वियोग तुम्हार रहूँ अकुलाइ, नहीं दुख नाथ सहा अब जाइ।
पुकारत आरत संतत लोग, करो सुख नाथ हरो भव रोग॥३॥
गहूँ तव पावन पाद कृपाल, नहीं मन शान्ति सदा जग जाल।
अदेवन की लखि वृद्धि महान, महा दुख घेरि रहा भगवान॥४॥
सुखी बहु बार किये निज दास, किये सब दूर रहा जो त्रास।
सताइ रहा त्रय ताप कराल, न लोकत अन्त महा दुख जाल॥५॥
कराल कुघात प्रताड़ित नाथ, बिना तुम्हरे नहिं होत सनाथ।
बने मद मोह कुशासक देव, हुये गत गौरव संत न सेव॥६॥
निरीश्वर वाद विवाद अनेक, सभी नर नारि भरे अविवेक।
रसा रसहीन हुई गुरुराय, मचा हड़कम्प सभी भय खाय॥७॥
कुकर्म प्रवाह बढ़ा चहुँओर, सभी जन कृत्य करे अति घोर।
नहीं कछु यत्न लगे गुरुराय, अनेक विधी मन को समझाय॥८॥
दयामय केवल आस तुम्हार, हरो अविलम्ब महा दुख भार।
नहीं सुनते जब आप पुकार, कहो कब होत हमार उधार॥९॥

सदा हम नाथ नवाऊँ सुमाथ , करो जन को अपने तु सनाथ ।
सुनो गुरुदेव कबीर दयाल , हरो भवरोग महा जग जाल ॥१०॥

प्रेमरसभरी छन्द

हे विश्व आत्मा दयानिधे , हे करुणा सिन्धु उदार वरे ।
हम भक्तों का उद्धार कहो , आप विना प्रभु कौन करे ॥
तुम हो अधार इस जगती का , हम दीन दुखी हो घूम रहे ।
हा विद्यमान तेरे रहते , संसार पाप में भूलि रहे ॥ १ ॥
आनन्द-सिन्धु हैं आप प्रभो , हम शोक-सिन्धु में डूब रहे ।
पापी-पावन प्रभु से रहते , हम पाप पंक में ऊब रहे ॥
झूठी आसा के फंदे में , फँसकर हम भ्रम में डोल रहे ।
तज भक्ति सुधा तव चरणों की , जीवन रस मे विष घोल रहे ॥२॥
सचराचर में अवनी तल के , है तेरी प्रतिमा झलक रही ।
महिमा से तेरी हे गुरुवर , वसुधा में सुधा की धार बही ॥
यदि बनकर मायामय मनुष्य, भूतल पर आते आप नहीं ।
वसुधा बन जाती अनल कुण्ड, विश्राम सुधा मिलती न कहीं ॥३॥
आचार कुशल कितना हो हा, पर प्रेम न यदि तव पदतल में ।
तो निश्चय है भव-भ्रम ढाना , जब तक रवि शशि हैं नभतल में ॥
है विनय हमारी हे गुरुवर , सुनिये भक्तों की विनय विभो ।
नव शक्ति मुझे सुप्रदान करो , आप विना नहिं और प्रभो ॥४॥
हे विश्वरूप नारायण हरि , मानव नित तेरा ध्यान करे ।
जाग्रित रहे तव सेवा में , संतप्त जनन की व्यथा हरें ॥

चातुर्य मानवी लाख करे, तव दया बिना क्यों दुख टरे ।
सन्ताप हमारा कौन हरे, गुरुदेव कबीर कबार हरे ॥५॥
बस अन्त समय तव चरणों में, गुरुदेव हमारा ध्यान रहे ।
मायिक प्रपञ्च से दूर रहे, पद प्रेम सुधा सरिता में बहे ॥
नित राम रमापति को भज लूँ, नहिं ध्यान और दुसरे में रहे ।
बस आस यही मन में गुरुवर, करिये करुणा हम दास अहे ॥६॥

इन्द्रवज्र छन्द

भारी दया देव हुई तुम्हारी, हरा शोक लज्जा सुनेहो हमारी ।
सदा दास गंगा मनावे तुम्हीं को, सारे कुमांगादि मेरा हने को॥१॥

भुजङ्गप्रयात छन्द

सदा नाथ दाया सुदृष्टी करीजै ।
हरो सर्व शंका प्रभू भक्ति दीजै ॥
हनो पाप तापो अनादि अविद्या ।
अभेदान दीजै गुरू ज्ञान विद्या ॥ १ ॥
नहीं आप से जक्त में और मेरा ।
बनो रक्षकं त्वं फँसा भौर वेरा ॥
महा शक्तिशाली गहो बाँह मेरी ।
प्रभो दीनबन्धो किया आश तेरी ॥ २ ॥
दया हेतु जीवों कि धारे सुदेहा ।
कहैं सर्व साधू गुरू को भनेहा ॥
पराज्ञान रूपं सुभूपं सुदेवा ।
परानन्द कन्दं कबीरं त्वमेवा ॥ ३ ॥

भयो धर्म धूरी धरे धर्म आये।
भवं भीम रोगं पखण्डं हटाये ॥
हुआ भक्त तेरा कियो पार ताको।
नहीं शोक शंका हरा सर्व वाको ॥ ४ ॥
यही हेतु मेरा सुअर्जी लगाया।
हरो जाल कालं करो नाथ दाया ॥
अहा साल शंका कलंका कु मेरा।
करो दूर स्वामी प्रभू पाद चेरा ॥ ५ ॥
सुधा-सिन्धु रूपी सुना नाम काना।
नहीं मोह माया परे आप जाना ॥
महत्ता हुई ज्ञात ऐसी तुम्हारी।
प्रभू दीन रत्ती सभी भक्त वारी ॥ ६ ॥
हुआ सोर ऐसा तु मोहा प्रहारी।
यही मैं सुना हूँ सु आशा हमारी ॥
करों सेव मैं भी परे पाद तेरा।
करो आश पूरी हरो पाप मेरा ॥ ७ ॥
सदा वन्दनीये गुरू राम देवा।
करों पाद की मैं तुम्हारी सुसेवा ॥
करो आप दाया हनों दोष सारे।
सुनो हे कबीरे नमों पाद प्यारे ॥ ८ ॥

शार्दूल विक्रीडित छन्द

स्वामी हो तुम दास के सकल पापों को करो नाश हो।
जेते हैं जन कर्म निम्न उन सभी को करो दूर हो ॥

धो डालो हम आप के कुजन भक्तों में विभो हे अहो ।
क्यों देरी अब हो रही चरण में तेरे पड़ा हूँ सदा ॥१॥
हे हे देव तुम्हीं सदा जगत की रक्षा किये हो प्रभो ।
मेरी भी तुमहीं करो शरण आये की यही है व्रुडा ॥
जन्मों से हम भूलते हरि अहो आया हूँ नहीं है छिपा ।
माया को धरने लगा जगत मोदों के लिये दुर्मदा ॥२॥
छोड़ा है निज इष्ट को परम शान्तिः जो कहा है सदा ।
बारम्बार रहा दुखी नरक में हैं हो पड़ा जो अधी ॥
स्वामी से अब भी मिलो सुजन जैसे हो रहो हे मना ।
क्यों भूले तुम हो कहो हम तुम्ही से पूछता रे जना ॥३॥
होगे पार नहीं कभी तुम सदा पापाहिं में हो लगे ।
काया को अति पोषता भगत माया का अहा राम जी ॥
त्यागो दुखः कुमार्ग रे अब करो सेवा गुरू की अहो ।
देंगे मोह महा तुझे सकल पापों से करेंगे रिहा ॥४॥
नीचों से कुछ भी नहीं वस चला जो थे बड़े लोगहीं ।
तो मैं भी अब चूर ही सतत हूँगा हे गुरो रामहीं ॥
गंगा है नित मौन नाथ जो बहुत से बाधा अहा सो महा ।
रे रे मूर्ख अरे सुनो तुम अभी आके कहूँ जो उसे ॥५॥
प्यारे मान तुँ शब्द को अब न देरो हो कभी हे सखे ।
देखो हो इस प्रेम को मुनिन जो दर्शा दिया सो लखो ॥
संसारी न बनो कभी कुछ करो त्यागी बनो रे भला ।
गंगा प्रेम भरे कहा सतत भाई हो श्रेष्ठ वाणी मुदा ॥६॥

मन्दाक्रान्ता वृत्तम्

हे हे देवेश बहुत दिनों से तुझे मैं पुकारा।
क्या है मेरी सकल गलती नाथ जी जो न तारा॥
मैं देवे के मुख कमल से थे सुने हो सु नारा।
दोषों का अन्त सब करते हैं जनों का उधारा॥७॥

शिखरणी वृत्तम्

सुनो देव हे आप सकल दुख को दूर कर दें।
बिना नाथ के मैं नरक महँ हूँ पार कर दें॥
सुना हूँ सदा ख्याति तव इस भू पै अघ हरा।
इसी हेतु तेरी शरण महँ आया पद वरा॥८॥

"मुझे आपको था सतत भव से पार कर दें,
महा दुःख में हैं हम निति पड़े घोर जग में।
बड़े से बड़े हो तुम इस महाधार मँह हो,
तुम्हारे लिये क्या कुछ कठिन है हो कह सु दो" ॥९॥

स्रग्धरा वृत्तम्

मेरे स्वामी तुम्हीं तो प्रभु वर नितहीं माथ नाऊँ तुम्हीं को।
संसारी मैं हुआ हो निशदिन रहता पापिओं केहि संगे॥
पूजा में पाठ में भी नहिं यह मन जाता कभी भी सुसंगे।
पापी घोरातिघोरा करत करम नीचा सदा मोह अंगे॥१०॥

हे नाथ आप अतिहीं निठुरीक भारी,
संसार को तुम रचा पर दुःखकारी।

घोरातिघोर बहु भीतिमयी अपारा,
पापी बड़े तुम सही मुझको न तारा ॥११॥

मालिनी वृत्तम्

परम सुखद हे देवेश वेदादि भाषे,
पर कुछ तुम में देखा नहीं हे जनेशा।
इस जगत महा जालादि में हो तुम्ही तो,
सकल हम कभी क्या पार हैं व्यामोह से ॥१२॥
जगत सकल में रामो अहा जो न देखा,
वह नर अति पापी है सुनो जी मरेखा।
सब जन उस को त्यागा अरे है अनागी,
प्रभुवर मुझ को भूलो नहीं मैं अभारी ॥१३॥

उपजाति वृत्तम्

सदा तुम्हें हम नमा सुरागी,
करो दया हरि बड़े विचारी।
बिना कृपा तव मिले न सन्ता,
कहूँ सही हम सुनो अनन्ता ॥१४॥

मोतियदाम

सुनो मम बात धरो चित माँहि, नहीं अब देर करो गुरुराय।
भजों नित राम हरो दुख धाम, करो सुख भूरि हरो मद काम ॥१५॥

इति श्री गंगा शरण दास कृत संध्यावन्द एकादश अध्याय एवं
षष्ठ सोपानान्तर्गत उपसंहार समाप्त



❁ कबीराय नमः ❁

सप्तम सोपान

अध्यात्म-बोध मञ्जरी

दोहा—ज्ञान भक्ति लक्षण गुरु, और अनेक सुबात।
शंका पुनि प्रणिधान भी, पढ़े सुने दुर जात ॥ १ ॥

चौपाई

एक समय गुरु दीन-दयाला। नाम कबीर देव जन पाला।
उपदेशा प्रभु ज्ञान विवेका। रहे शिष्य तहँ संग अनेका ॥ २ ॥
सुनत सकल शरवण मन लाई। मानहु जलद सुधा बरषाई।
करत पान सब अमी समाना। लोग सुखी भागेउ अज्ञाना ॥ ३ ॥
प्रेम अगाध भक्ति अधिकाई। लागि समाधि महा सुखदाई।
जिमि मिरगी सुनि सेवरी नादा। किये श्रवण तजि सकल विषादा ॥ ४ ॥
तिमि सब शिष्य दिये निज काना। प्रेम मगन नहिं सुनत अघाना।
वेद समान संत की बाणी। सुनत भई सब संशय हानी ॥ ५ ॥
दहेउ सकल ममता मन केरा। जीव स्वतंत्र मिटा भव फेरा।
सकल शिष्य अति प्रेम उछाहा। अमित ज्ञान पायो सब काहा ॥ ६ ॥

हरिगीतिका छन्द

शुभ ज्ञान प्राप्त अमित सभी, मन में गुरू सुमिरहिं सदा।
जय जय पुकारहिं लोग सब, तद् बैन उर घर सर्वदा ॥
संतत जपहिं गुरुमंत्र सो, औरो नहीं कछु भावता।
आशा तजहिं संसार की, जीवत परम पद पावता ॥७॥

सोरठा

पावहिं पद निर्वाण, निष्ठा जेहि गुरु चरण में।
कहहिं कबीर भगवान, सत्य गिरा नहिं झूठ कभी ॥८॥
सम्यग बोध विचार, ब्रह्म तत्त्व में चरत सो।
महा बैन उर धार, सो प्राणी साधन करे ॥९॥
मम वाणी में प्रेम, षट विकार से रहित जो।
संतत करते नेम, भव दुख तद व्यापे नहीं ॥१०॥

दोहा—माला कण्ठी धारि के, लेइ गुरू सन ज्ञान।
चाहे बन गृह में रहे, राम नाम में ध्यान ॥११॥
इस विधि बहु उपदेश दिये, बन्दीछोर कबीर।
पुनः मौन निज रूप में, परमानन्द सुधीर ॥१२॥

चौपाई

हर्ष समाज सकल सुनि बानी। भेद बुद्धि भव सकल शिरानी॥
वैन सधा नहिं सुनत अघांते। कहि न सकत कारण भय खाते ॥१३॥
तिनमें एक शिष्य बुधिमाना। सुरतिगोपाल नाम जग जाना॥
सुनि गुरू गिरा अतर्क अमानी। चरण कमल हिरदै में आनीं ॥१४॥
दक्षिण दिशा दराविड़ देशा। ब्राह्मण कुल मानहु विबुधेशा॥
वेद वेदांग रहस सब जानत। सरल स्वभाव न मन दुख आनत ॥१५॥
सदा प्रसन्न रहत मुस्काना। विष्णु स्वरूप ब्रह्म भगवाना॥
तर्क वितर्क में परम पुनीता। बुध समाज बहुते जग जीता ॥१६॥
क्रियावान अति परम विचारक। जप तप मख नाना अनुसारक॥
ब्रह्मचर्य पालन सो करई। बड़मति मान सकल गुण अहई ॥१७॥

सुन्दर रूप अंग सब नीके। जो जस चाहिये सो सब ठीके॥
परम विराग दोष सब नाशा। सतसंगति की अति जिज्ञाशा॥१८॥
तत्त्व ज्ञान की इच्छा भारी। विना संत नहिं होय सुखारी॥
यह विचारि देशाटन करते करत प्रश्न जहँ तहँ मुनिवर ते॥१९॥
नहिं शंका नाशहिं मुनि ज्ञानी। बोध बिना मन होय गलानि॥
रहत उदास सदा एकांता। देखि दशा बोली तब माता॥२०॥
विदुषी परम ज्ञान की खानी। लक्षण सब बेटा कर जानी॥
कही तात मानहु मम बाता। काशी में इक साधू रहता॥२१॥
नाम कबीर महा मुनि देवा। जाको करहिं सकल जन सेवा॥
तहाँ जाय वह दर्शन कीजै आतम ज्ञान ताहि सो लीजै॥२२॥
अस साधू है नहि जग माहीं। दर्शन किये पाप सब जाहीं॥
सुना वैन माता कर जबहीं। किया पयाना काशी तबहीं॥२३॥
कछुक दिवस मे काशी आये। दर्शन तहाँ गुरू का पाये॥
ततक्षण नाश सकल अज्ञाना। जिमि रवि उदय तभी तम हाना॥२४॥
करि परणाम विनय बहु कीन्हा। शुद्ध हृदय गुरु वर तद चीन्हा॥
तत्त्व ज्ञान दर्शाये ताको। शिष्य योग्य जाना प्रभु वाको॥२५॥
पंथ भार दीन्हा तेहि स्वामी। जाना वीतराग नहिं कामी॥
सत्य प्रचार करइ मम पाछे। मम बानी पालक यह आछे॥२६॥
सदा संग गुरुदेव विराजे। आज्ञा देत करई सब काजे॥
बीजक ग्रन्थ दीन्ह तेहिं देवा। साखी ग्रन्थ पुनः अर्पेवा॥२७॥
धर्म सनातन रक्षा करई। ताते पद गुरु काशी लहई॥
प्रथमाचार्य पंथ को राजा। शिष्य भाव सब साथ विराजा॥२८॥

पंथ शिरोमणि सो प्रभु जानो। गुरु उत्तराधिकारी मानो॥
मुक्ति युक्ति सब ताहि बताये। काशी बिना मुक्ति नहिं पाये॥२९॥
सो शंका कीन्हा शुभ भारी। कहत नहीं सकुचत मन मारी॥
विना कहे नहिं हत अज्ञाना। यह विचारि बोला बुधिमाना॥३०॥
हे गुरु दीन-बन्धु सुख दायक। बन्धक भेदक आप कहायेक॥
छेदत संतत भव कर खेदा। सत्य वचन गावहिं बुध वेदा॥३१॥
भव वारिध बोहित गुरु देवा। कर्णधार महँ आपहिं खेवा॥
सदा आप उपकार स्वरूपा। महा मोह नाशक तम कूपा॥३२॥
बन्दौं तव पद सरसीरूहा। संशय शोक सकल हरु कूहा॥
नाथ मोहिं शंका कुछ प्रकटी। लागत भय नहिं कहत सपष्टी॥३३॥
जो अनुशासन देहु दयाला। संशय कहूँ सकल जन पाला॥
यद्यपि तुम प्रभु अन्तर्यामी। मैं नहिं जानौं तव गति स्वामी॥३४॥
सो कारण मैं चाहत पूछा। कहूँ देव जब तेरी इच्छा॥
उत्तर देत कोप नहिं कीजै। तब शंका मेरी सुनि लीजै॥३५॥
जो वालक कह बैन कुठारे। मात पिता कछु कोप न धारे॥
अशुभ तोतरी सुनि तेहि वाता। मानत मोद पिता अरु माता॥३६॥
सो सिखलाइ गिरा अति सुन्दर। बोलत पूत यथा पंडित वर॥
तेहि समान मेधा मम जन की। जानत हो प्रभु मेरे मन की॥३७॥
बहुत वार वहुतन से पृच्छा। समाधन नहि हो मम इच्छा॥
दे न सके उत्तर जब ज्ञानी। मो पर कोप करहिं अज्ञानी॥३८॥
संतत करहिं सो मम अपमाना। आतम बोध नहीं तिन ज्ञाना॥
पर अपमान करे जन जोई। सो अपने अपमानित होई॥३९॥

पर को नीच कहत सो नीचा। सो पापी संतत रह मीचा ॥
तामस धर्म करहिं संसारी। राजस बुद्धि मोहरत भारी ॥४०॥
बड़ अभिमान करहिं दिन राता। पर सन्मान न मन में भाता ॥
मोर तोर में नित लपटाना। आप समान न जानहिं आना ॥४१॥
साक्षर हो पंडित कहलावहिं। निगमागम पुराण सब गावहिं ॥
दया धर्म नहिं केवल बानी। नहिं विचार कछु उर में आनी ॥४२॥
कहे गहे नहिं पर उपदेशा। भैंसा वृत्ति करहिं बड़ रोषा ॥
जैसे कीर जपे हरि नामा। सुनत लोग कहँ लागु ललामा ॥४३॥
नहिं गुण धर्म राम का जाना। अन्त समय यम लोक ठिकाना ॥
जिमि गर्दभ लादे श्री खण्डा। नहिं सुगन्ध गुरुता परचण्डा ॥४४॥
गत अम्बक दर्पण क्या करई। ताकर दोष न रंचक अहई ॥
रवि सेवति मारग नहिं दोषा। उल्लू चातक पंथी क्रोशा ॥४५॥
तिन समान जानहुँ कलि पंडित। शुद्ध बुद्धि को कर सो खंडित ॥
निज निज पक्ष सिद्ध करि झूठा। त्यागि न सकहिं यथा कपि मूठा ॥४६॥
इरषामर्ष बहुत सो करहीं। साँच बात नहीं उर में धरहीं ॥
सो सब हँसत मोहि गुरु राया। नहीं समदृष्टि मोह रत माया ॥४७॥
सपनेहुँ नाहिं राम गुण गावहिं। संत गुरू बिनु ज्ञान न पावहिं ॥
इत उत केर अनरगल बानी। बोलहिं साँच झूठ मन मानि ॥४८॥
कर्म हीन अकरम को ध्यावहिं। पर अवगुण लघु मेरु बतावहिं ॥
पूजा पाठ झूठि सब भाखहिं। जीव ज्ञान नित उर में राखहिं ॥४९॥
भौतिक ज्ञान कथहिं संसारी। सो सब नाथ हसहिं मम भारी ॥
तिन्ह हँसन को मोहि न लाजा। कीन्ह चहूँ प्रभु आपन काजा ॥५०॥

ताते नाथ कृपा अब कीजै। जानि स्वबालक शरण में लीजै॥
निज हित प्रश्न करौं गुरु देवा। मम संशय-बन करिये छेवा॥५१॥
जो अवरो चलिहैं यहि पंथा। सो अधिकारी पढ़िहैं ग्रन्था॥
तब बोले गुरु दीन दयाला। धन्य धन्य तुम सुरतिगोपाला॥५२॥
कोप करहिं ठग पापी नीचा। पर निन्दा जड़ मति अति मीचा॥
शंका रहित प्रश्न तुम करहू। भय अरु शोक हृदै नहिं धरहू॥५३॥
यथा उचित उत्तर मैं दूँगा। भ्रम तव नाशि सकल कहूँगा॥
जो तम जग अज्ञान अँधेरा। शमन सकल मम वचन उजेरा॥५४॥
सुनि गुरु वाणी शिष्य सुजाना। प्रेमानन्द अमीरस साना॥
जो तुम बीजक मम प्रति भाषा। तामे ज्ञान विलक्षण राखा॥५५॥
समुझि परे नहिं मोहिं अपारा। लागे यथा उदधि जल खारा॥
ताते तृषा न तिरपित बोधा। बहुत भाँति मन इन्द्रिय सोधा॥५६॥
कारन याकर सुनहु दयाला। विधि विरुद्ध तव ग्रन्थ कृपाला॥
जानि परे ऐसहिं तव बानी। कोविद जन बहु कहत बखानी॥५७॥
जामें भाषेउ वेद असत्या। ब्रह्मशब्द इक निगदित सत्या॥
वेद पंथ जग सारे चलहीं। विश्व विरंचिता हरि को कहहीं॥५८॥
ताहि कहे तुम द्वन्द्व कहानी। इष्ट देव परतक्ष न मानी॥
तीरथ दान वर्त मख जेता। कहेउ सकल यह भर्म निकेता॥५९॥
जा कहँ ऋषि मुनि पुंगव नाना। वेद पुराण कर्म परधाना॥
सो सब को तुम बन्धन कहते। मोक्ष पदारथ कोइ न लहते॥६०॥
औरो राम कृष्ण अवतारा। जाहि भजे सुर नर संसारा॥
जिन की कृपा सकल सुख पावहिं। चारि पदारथ बिनु श्रम पावहिं॥६१॥

ताहि कहे तुम माया भारी। जो भजते सो जीव अनारी॥
पुनः स्वर्ग बैकुण्ठहिं बरनन। कह्यो आप परतारक आनन॥६२॥
पुनि अष्टांग योग जो अहई। परम तत्त्व जो साधे लहई॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धी पावे। प्राणापान गती जो ध्यावे॥६३॥
तीनि काल का होवे ज्ञानी। होय जहाँ जो सब कुछ जानी॥
रोके गति स्वासा की जबहीं। सो अकाश में उड़ता तबहीं॥६४॥
जग को नाशि पुनः सो बनावे। अनहोनी सो बात जनावे॥
योग समान और कछु नाहीं। मुनि समाज बहु ऐसो कहहीं॥६५॥
कछु नहिं दुर्लभ योगी भाई। जो चाहे सोई करवाई॥
विना योग थिरता नहिं पावे। महा महातम ताहि सुनावे (बतावे)॥६६॥
सो सब को तुम दूजा थापे। कहत एक सो वस्तु अतापे॥
ताहि कृपा करि कहिये स्वामी। अति उदार प्रभु अन्तर्यामी॥६७॥
जाते होय भरम का अन्ता। करो उपाय सोइ भगवन्ता॥६८॥

मुक्त प्रेम लता छन्द

तु उपाय सोई कीजिये, गुरु देव शरण में लीजिये।
मन का भरम जेते रहा, तेते सकल तुम से कहा॥६९॥
कहिये सभी समुझाइ के, संशय गरन्थि छुड़ाइके।
जेते प्रथम मम पूछना, कहिये सकल वह गुरु जना।७०॥
सब वस्तु को कियो खण्डना, इक राम जी को मण्डना।
कहते सदा परकाश है, वह राम नित्य अनाश हैं॥७१॥

मुक्त कवित्त छन्द

सो राम कौन धाम नाम कौन सो स्वरूप है।
जिनको भजत आप कहते अपार हैं॥

शब्द का स्वरूप है की शुन्नहूँ अशुन्न है।
कि चले बोले धावे नाहीं कौन सो करतार है॥
कि काल है कि पाल है कि रूपहूँ अरूप है।
ताको राम नाम कैसे तेगे जो अधार है॥
सुप्त है कि चेतना में रहे कोई देश में।
जिनको कहत आप गुरु निरधार है॥७२॥

दोहा—कहत जाहि निरधार गुरु, सो करता भगवान।
और सकल जो प्रश्न है, कहिये कृपा निधान।७३॥

तब श्री गुरु करुणा मय वोले, शिष्य प्रश्न तुम कीन्ह अमोले।
रुचिर सु पावन प्रश्न तुम्हारा, नर विचारि तरिहैं भव पारा।७४॥

धन्य धन्य तुम हो बड़ भागा, सुरतिगोपाल प्रेम तव जागा।
किये प्रश्न तुम सब हितकारी, सुनहु श्रवन दे कहब विचारो॥७५॥

उत्तर प्रश्न पढ़हिं मम तोरा, सो प्राणी सुख पाव करोरा।
भणित मोर जो बीजक ग्रन्था, मोक्ष रूप निर्दम्भ सुपंथा॥७६॥

तामें गूढ़ गिरा मैं भाषा, आतम बोध ज्ञान शुभ राखा।
सत्य अरोप झूठि कर खण्डन, चेतन एक वस्तु शुभ मण्डन।७७॥

जगदाधार जगत का मूला, निज माया महँ आपहि भूला।
जिमि कंगन कर महँ रह भाई, हो विसमिरति देखि नहि पाई॥७८

दोहा—जिमि महिला के गोद में, संतत बालक होय।
भ्रान्ति हुई मन है नहि, तिमि निज जानो सोय।७९॥

चौपाई

गुरू रूप दूजा उपदेशा। प्राप्त वस्तु नहिं भरम कलेशा॥
सो देही है देह से न्यारा। अध्यारोप कीन्ह निर्धारा ॥८०॥
आदि अन्त दो एक समाना। ताको हम यहि मध्य बखाना॥
ताकर नाम रूप नहिं कोई। ज्ञान उदधि घन अघटित सोई ॥८१॥
सो बिनु गुरू जानि किमि जाई। कहत जाहि मैं तो सन भाई॥
वेद पुराण भाणत जो नाना। ताकर कर्त्ता मन बुधि जाना ॥८२॥
बुद्धि बिलास उपज यह जग है। चलत सकल जन प्रज्ञा मग है॥
व्योम बुद्धि का सब विस्तारा। युगल बाहिये नहिं संसारा ॥८३॥
जहाँ देख तहँ रहत अकाशा। बिना पोल नहिं हो परकाशा॥
तिमि यह जगत बुद्धि के माहीं। बुद्धि बिना कछु कारज नाहीं ॥८४॥
बुद्धि रहित मेधा परकाशक। मेरा गुरू वचन यह भाषक॥
वायुयान चालक सम जानो। जै चक्रिका चालक मानो ॥८५॥
ब्रह्म शब्द को प्रज्ञा जाना। मनही तानि करे अनुमाना॥
चित्त चितन तद करे विचारा। अहंकार ममता पैसारा ॥८६॥
अन्तःकरण चार का यह गुण। जासो जाने सह गुण निगुण॥
इष्ट अनिष्ट यही युग माने। मिथ्या झगरा मति मन ठाने ॥८७॥
तीरथ वर्त दान षट करमा। ये सबहीं है मन के धरमा॥
बन्ध मोक्ष भी मन की बाता। जन्म मरण कारण यह ताता ॥८८॥
दुखा सुखी रिपु मित्र बनावे। पंच विषय महँ आप बँधावे॥
औरो वरण आश्रम जो हैं। मान सभी यह मनहिं को है ॥८९॥
राम कृष्ण औरो जो देवा। मनहीं करत सकल की सेवा॥
मनहीं है दूजा संसारी। योग युक्ति मनहीं अनुसारी ॥९०॥

भजे तजे पुनि गरहण करई। है झूठा झूठहिं को धरई ॥
नाम रूप मायामय कहिये। हो विनाश नहिं संतत रहिये ॥९१॥
अमर लोक वैकुण्ठहिं माने। मनहीं ताहि करे अनुमाने ॥
रेचक पूरक कुम्भक जो हैं। बहुत काल किय सिद्ध भयो हैं ॥९२॥
ई सब धर्म बुद्धि अरु मन के। संतत व्यस्त रहत मन जन के ॥
करहिं युगल नित मन चित लाई। पुण्य हेतु बहु कर्म कराई ॥९३॥
कर्म बहुत जग बन्धन कारक। भयो भरम रत गत भग तारक ॥
होंगे सिद्ध असिद्धहुँ होइ हैं। होइ हैं शुद्ध अशुद्धहुँ होइ हैं ॥९४॥
करिहैं योग वियोगहूँ होई। जो प्राप्ति अप्राप्तिहुँ सोई ॥
बने सो बिगरे जन्मे मरे। होय स्वर्ग पुनि नरकहुँ परे ॥९५॥
यहि विधि बहु दृष्टान्त अनेका। ज्ञान बिना नहिं होय विवेका ॥
ज्ञान होय सतसंगति भाई। मोक्ष अमोक्ष जहाँ समताई ॥९६॥
मिथ्या ते मिथ्या कर नाशा। ज्ञानाज्ञान उभय जो भाषा ॥
जिमि दीपक घर वस्तु विराजे। मिले होय सो आपन काजे ॥९७॥

दोहा—सतसंगति वह घर है, दीपक है वह ज्ञान ॥
तेहि प्रकाश में वस्तु मिल, भन्त युगल की हान ॥९८॥

चौपाई

वस्तु रूप निज और न कोई। आपे आप ज्ञान तहँ होई ॥
ज्ञाता ज्ञेय न होवे ज्ञाना। ध्याता ध्येय न धरिये ध्याना ॥९९॥
सर्व रहित बोधव्य न बोधा। एक अखंडित सोऽयं शोधा ॥
सुस्थिर सो उड़िगन पथ जैसे। है अनाश भगवानहु वैसे ॥१००॥
शुद्ध अशुद्ध और जो कहिये। ई सब से वह परे सो रहिये ॥
मन प्रज्ञा परकाशक सोई। स्वतः प्रकाश मान सब कोई ॥१०१॥

सदा अताप ताप नहिं व्यापे। जाके भय से रवि सुत कापे ॥
नित्यानन्द नाश नहिं होई। पुनि अदृष्ट कहावे सोई ॥१०२॥
सर्व दरष्टा महा अकाशा। मन मेधा से परे विलासा ॥
सब का जाननहार सु ईशम्। भेद भाव से रहित जनीशम् ॥
देखन कहन सुनन में जो है। नाशमान क्षणभगुर सो है ॥१०३॥
नहिं विराट तेजोमय कहिये। नहिं सुप्रधान अव्यक्तहिं लहिये ॥
सर्व वस्तु का जेते ज्ञाना। ब्रह्म अनीह वही मैं जाना ॥१०४॥
है प्रमाण प्राचीनन केरा। जिनके वचन मिटे भवफेरा ॥
बादरि सुत अत्रेय प्राचेतस। अष्टावक्र शौरि निगदित तस ॥१०५॥
शंकर ज्ञान खण्ड श्रुति माने प्रथम अनेक मुनिन पुनि भाने ॥
सत्य वचन सु प्रमाण घनेरा। तिनसे रहित नहीं मत मेरा ॥१०६॥
मुनिन वाक्य नहिं अहे विरुद्धः। दोषाभाव गिरा सब शुद्धः ॥
चेतन भिन्न सो और असारा। देश काल जो वस्तु विचारा ॥१०७॥
नाम रूप सिधि करता सोई। तिस को सिद्ध करइ नहिं कोई ॥
उभय त्रय गुण है जग कारण। जन्म मरण होवे पुनि धारण ॥१०८॥
देखत सुनत नीक जो लागा। कहे सत्य सो जानु अभागा ॥
सत्य अनाम अरु रूप विलक्षण। जैसा है तैसा तद् लक्षण ॥१०९॥
अज अखण्ड अनवद्य अनूपम्। देव निरञ्जन ज्ञान स्वरूपम् ॥
निराधार परणव परमेश्वर। गोचर रहित महा तेजेश्वर ॥११०॥

दोहा—सदा एक रस आप गुरु, पूरण ब्रह्म अखेद।
सो आपन है आतमा, कहत मुनीश्वर वेद ॥१११॥
जगत आतमा सर्व महँ, अद्वय निर्मल देव।
निज उर माहीं वास है, कीजे उसकी सेव ॥११२॥

आतम ज्ञान विचार नित, यह उपदेश हमार।
नाम रूप मैं खण्डत, जाहि बसी संसार ॥११३॥

चौपाई

राम वस्तु है ताको नामा। घट-घट रमत सो आठो यामा ॥
अगम अपार पार नहिं ताको। काल कराल नहीं भय जाको ॥११४॥
महा काल अत्यन्त कहावे। लय करणी यह विश्व दहावे ॥
जा बल उपजत यह संसारा। फेन समान नशे पुनि सारा ॥११५॥
सो अविनासी चेतन देवा। ब्रह्मादिक करि जाको सेवा ॥११६॥

दोहा—सकल देव सेवा करैं, चेतन महा महान।
सर्वं इष्ट तद् जानिये, सो मम देव सुजान ॥११७॥
शब्द नहीं नहि शून्य है, नहि अशून्य भगवान।
निरालम्ब गुण तीनि नहीं, काया काल न जान ॥११८॥
रूपहीन राजा नहीं, सदा विराजय सोय।
सोवे नहि जागे कभो, बड़ा अचम्भा होय ॥११९॥
देशी एक न जानिये, सर्व देश के माहि।
चले न धावे वीर कहीं, सुधा स्वरूपी आहि ॥१२०॥

चौपाई

सदा विलक्षण रूप अरूपा। राम सोई मम जानु अनूपा ॥
तामे मुझमें भेद न कोई। जो है वह हम जानो सोई ॥१२१॥

दोहा—जैसे उदधि तरंग जल, वस्तु दुनों है एक।
हाटक भूषण जानिये, राखा नाम अनेक ॥१२२॥

चौपाई

नष्ट होय पुनि कङ्कन नामा। हाटक सब भूषण का धामा॥
ज्यों मृत्तिका ते भाजन बनते। नाम अनेक कुलालन धरते॥१२३॥
तैसे ब्रह्म जीव की बाता। उभय नाम इक वस्तु बताता॥
चारि भेद पुष्कर के जैसे। चेतन बात गुनो नर तैसे॥१२४॥
कुम्भ कुटी पट नाशे जबही। महा अकाश रहा इक तबहीं॥
चारि अवस्था चेतन केरी। सर्व माहिं नर निज को हेरी॥१२५॥
गिरा ज्ञान से रहित अनन्ता। जाको पूजहिं सब मुनि सन्ता॥१२६॥

बाला छन्द

श्रोत्रों का श्रोत्र मनो का जो मन है,
वाणी की वाणी अशुन का अशुन है।
नेत्रों का नेत्र नसों का नसा है,
लहे ज्ञानमानं हृदय में बसा है॥१२७॥
नहीं पाँच की गम मनन मन से नाहीं,
सभी शक्तिमान हुये शक्ति ताहीं।
मकरी यथा विश्व को वह रचा था,
परलय हुआ तब वही इक बचा था॥१२८॥
गुरू देव देवा बतावे सुभेवा,
करो ताहि सेवा लहे नित्य मेवा।
संशय नहिं जो करे प्रेम पूरा,
मिले ज्ञान उसको तजे कर्म कूरा॥१२९॥

वही पार होगा महा घोर सागर,
होवे विवेकी क्षमा ज्ञान आगर।
सोई कह्या तुमसे मैं पुकारी,
होवे जु शंका कहो पुनि सारी ॥१३०॥

दोहा—जो कछु शंका होय अब, कहहू सुरति गोपाल।
मति अनुसार कहब हम, जानि तोहि निज बाल ॥१३१॥
सुनि गुरु वाणी प्रेम ते, बोला शिष्य सुजान।
नाथ प्रथम जो आप कहे, भजन किये कल्यान ॥१३२॥
पुनि ताको मिथ्या कह्यो, ताकर भेद न जान।
कहो दया करि हे गुरू, भजन-भेद भगवान ॥१३३॥
निज स्वरूप की प्राप्ति जो, किस विधि होवे ज्ञान।
सकल कहो समुझाय के, वन्दीछोर सुजान ॥१३४॥

नेता छन्द

प्रश्न उत्तम तोर विमल मोहि लागे।
दूँगा उत्तर तोहिं भर्म सब भागे॥
होय सु ज्ञान विवेक विमल मति तेरी।
कहब सकल अर्थाय गिरा सुन मेरी ॥१३५॥

चौपाई

भजन कहा विषयन ते भागे। श्री गुरु राम शरण में लागे।
सो पुनि भजन चारि परकारा। भिन्न भिन्न मैं कीन्ह विचारा ॥१३६॥
ताकर अर्थ सुनो मन लाई। जाते संशय शोक पराई॥
भजन कनिष्ठक अर्थ सुनीजै। है अनर्थ मुनि संत भनीजै ॥१३७॥

जप तप आदि करै बहु दाना। बाल वृद्धि माँगे वरदाना॥
नाना देव और बहु देवी। भूत भवानी भैरव सेवी॥१३८॥
तीरथ वर्त कर्म मन लावे। मूरख जड़ पूजा में धावे॥
अनुष्ठान जहँ तहँ करवावहिं। फल अहार बहु दूध मगावहिं॥१३९॥
राम नाम ध्वनि करहिं अपारा। जुटहिं लोग तहँ बहुत गँवारा।
नाचहि गावहिं द्वन्द्व मचावहिं। मुद्राभूरि तहाँ सु मगावहिं॥१४०॥
पेट हेतु बहु रचहीं जाला। सो परकट जानहु कलि काला॥
ऊन रेशमी बसन सु साजे। हलुआ पूड़ी में नित राजे॥१४१॥
करहिं अनर्थ साधु के रूपा। वेष धरे जैसे नरभूपा॥
नित नवीन सो रूप बनावें। गिरही जन को साधु लजावें॥१४२॥
यहि विधि होहिं बहुत कलि माहीं। नहिं विराग रंचक उर आहीं॥
तितमें अहा महा दुखदाई। अन्त समय बहु दुर्गति पाई॥१४३॥
दूजे भजन यज्ञ जो करना। इच्छा करे स्वर्ग को शरना॥
कर्म सकाम वेद का द्रोही। जिस में बहुत फँसे हैं मोही॥१४४॥
भोगे भोग बहुत सुरलोका। क्षीण पुण्य आवे मृति लोका॥
पुनि दुख सुख भोगे संसारी। अन्त समय निरयो अधिकारी॥१४५॥

हरिगीतिका छन्द

तद् बास होवे नरक में, जो भोग की इच्छा करे।
स्वर्गादि सब दुख रूप हैं, मिथ्या कहा सुखसागरे॥१४६॥
सो जीव जग अज्ञान बस, समुझे नहीं मन झागरे।
तद वस सभी दुख भोगते, सद् ज्ञान बिनु नहि ऊबरे॥१४७॥

दोहा—बिना ज्ञान उबरे नहीं, भोगे कष्ट अनन्त।
कलह कलेजे छेकिया, कहे वेद गुरु सन्त ॥१४८॥

चौपाई

पुनः भजन तीजे सुनि भाई। आनन ते जो राम कहाई॥
पाप कृत्य में धावे मनुवा। रसना राम नाम करि धुनुवा ॥१४९॥
जटा जूट तन छार लपेटे। मंत्र सिद्ध मँह जीव चपेटे॥
भेद भाव करि आप अपारा। ज्ञानहीन मतिमन्द गँवारा ॥१५०॥
अमुक बरण मम आश्रम ऊँचे। तुम तो शूद्र बरण मह नीचे॥
हम पण्डित ज्ञाता वर ज्ञानी। तुम मूरख विद्या नहिं जानी ॥१५१॥
ऊँच बने से ऊँच न होई। बिना कर्म जाने सब कोई॥
जैसे काग हंस नहिं होई। जो सुमेरु पर बैठे सांई ॥१५२॥
अपने मुख वर कहे बखानी। तिनको सकल कहत अज्ञानी॥
याते पर मुख निर्णय मानो। निज इच्छित नाना दुख जानो। १५३॥
सम्यग् बोध ज्ञान नहिं जाके। ऐसी बुद्धि बसे मन ताके॥
सो चमार चमड़ा कर ज्ञाना। सर्व रूप नहिं हरि पहिचाना ॥१५४॥
तुच्छ भाव नित पर के परती। आप सुधीर यथा जग धरती॥
निन्दा सन्तत करहिं पराई। मान बुद्धि अपने अपनाई ॥१५५॥
पर सतकार जो देखत नैना। नैन तरेरत बोल कुनैना॥
यह अति मूर्ख न सेवा कीजै। पण्डित पद नित अरचन लीजै ॥१५६॥
याके ज्ञान न होय भलाई। यह नहिं ग्रन्थन शिक्षा पाई॥
मम समान पण्डित जो कोई। ताकी शिक्षा शुभ पद होई ॥१५७॥
यहि विधि बहु हंकार अनन्ता। आप समान न जानहिं सन्ता॥

इमता है यमराज बरारी। बाँधि जीव देवे दुख भारी ॥१५८॥
यह विपरीत बुद्धि मन केरी। जो नहिं लेग हिया हरि हेरी ॥
वंचक वीणा वाद्य समाना। सेवरी रूप ठगे मृग नाना ॥१५९॥
यह मारग आसुरी विचारा। महा गर्त सो पर तमकारा ॥
याते करु यह तीनो त्यागा। चौथे पद में करु अनुरागा ॥१६०॥

हरिगीतिका छन्द

अनुराग चौथे में करे, जो मोद का मंदिर अहा।
आपत शिरोमणि संतजन, सिद्धान्त जग में सब कहा ॥१६१॥
उपरोक्त तीनों को तजो, इच्छा नहीं कछु भोग की।
सो अमर पद जन पावते, खाऊँ सपथ गुरु देव की ॥१६२॥

दोहा—सत्य सत्य वह सत्य है, होय सो जीवन मुक्त।
सुनो शिष्य अब भेद यह, ज्ञान अमर पद युक्त ॥१६३॥

चौपाई

अब चौथे को करौं बखानी। सुधा पयोधि महा सुखदानी ॥
याहि भजन का सुनो प्रभावा। काल चक्र यहि पास न आवा ॥१६४॥
जन्म मरण नहिं याते होई। सत्य वचन मानो सब कोई ॥
बोले सत्य सत्यहीं करे। झूठ गिरा नहिं उर में धरे ॥१६५॥
कंचन मृतिका को सम जाने। नारि पुरीष भीति सम माने ॥
लाभालाभ न करे विचारा। दुष्ट बुद्धि नहिं करे पसारा ॥१६६॥
निन्दा वन्दन सम करि जाने। हित अनहित सब सम करि माने ॥
हास्य मसकरी एको नाहीं। बोले अल्प गिरा जग माही ॥१६७॥

परारब्ध पर निश्चित रहई। जो वरते ताको फल लहई॥
कष्ट अकष्ट में सम मन राखे। सहन यथा गिरि करे न माखे॥१६८॥
बसे इकान्त नदी के तीरा। राखे विरति सदा मति धीरा॥
जग परपंच विषय जल जो है। बसे वनज सम पर्श न सो है॥१६९॥
बोध सदा गुरु वचन विचारे। तजे कर्म स्वारथ जग सारे॥
जेते पाप कर्म दुखदायी। सर्व रहित हो होय भलाई॥१७०॥
रहे अचल जिमि मेरु कहानी। अहंकार रंचक नहिं आनी॥
बाहर भीतर एक समाना। भीतर रहे सो बाहर आना॥१७१॥
पर को देखि जले नहिं कबहीं। पर अपमान कहूँ नहिं करहीं॥
वीतराग देशाटन करई। असन वसन कारज भर धरई॥१७२॥
मैथुन अष्टक त्यागे भाई। रक्षा रेत करे मन लाई॥
निर्मल मन सन्तन के संगा। शुद्ध वृत्ति मन होय न भंगा॥१७३॥
आस्तिक भाव सदा मन पागे। नास्तिक जीव वाद को त्यागे॥
मीठा वचन सभी से बोले। सहित विचार जगत में डोले॥१७४॥
आप्त पुरुष की माने बाता। ठग वंचक से त्यागे नाता॥
ईर्षा मर्ष करे नहिं भूलो। माया मोह तजे जग सूलो॥१७५॥
सोम अर्क महि अनल समाना। पवन अम्बु नभ सब हित जाना॥
नारि नैन से निशदिन बाँचे। कालरूप जो है जग साँचे॥१७६॥
पंच विषय हनि शम दम पाले। भूलेहु जीव जगत नहिं घाले॥
त्याग रूप नहिं मठ में मोहा। होनहार हो करिय न कोहा॥१७७॥
दैव प्रबल नहिं टारे टरई। पूर्व कर्म का फल जन लहई॥
याते चिन्ता शोक न करिये। सत्य वचन मम उर में धरिये॥१७८॥

महा व्योम सम जाने आतम। अधिष्ठान सबहीं परमातम॥
क्षर अक्षर से रहिता जाने। है कुटस्थ चेतन पहिचाने॥१७९॥
काल कर्म विष्टप के जोई। सर्व अभाव निरन्तर सोई॥
अहि तम भेद विचारक मध्ये। अधः त्यक्त ऊर्ध्व में सध्ये॥१८०॥
मिले देव तहँ एक विलक्षण। नहिं प्रमाण तद औरो लक्षण॥
चांदत तांड़त उड़गन दव: हिमकर। नहि प्रकाश सब करहि ताहि वर॥१८१॥
जस कहिये तस होवत नाहिं। जैसा है तैसा हरि आहीं॥
विन देखे करि पुर अनुमाना। जस कहिये नहि होवे आना॥१८२॥
सीमा बद्ध कहे सो होई। मन अनुमान झूठि जग सोई॥
कहे सुने सुख उपजे भाई। नेति नेति वेदों ने गाई॥१८३॥
गुण अभाव ज्योतिर्मय कहिये। पीपल फल अभोग से रहिये॥
युगल रूप चेतनता एके। प्राप्त होय जो करै विवेके॥१८४॥
चेतन का चेतन सो कहिये। पुनि नित्यों का नित्य सु लहिये॥
अणु से अणू महा सो जानो। है महान तद सम नहिं आनो॥१८५॥
दिव्य स्वरूप अजर सो एका। ज्ञान विना नर कहत अनेका॥
सो सर्वज्ञ देव भगवाना। तीन व्योम नहिं परम प्रमाना॥१८६॥
महा अधर सम सबसे न्यारा। सबल ब्रह्म निज रूप तुम्हारा॥
महाकाश व्यापक है जैसे। ताहि रूप धारण करु तैसे॥१८७॥
सो पिपील अज आदि स्वरूपा। देव निरंजन अगम अनूपा॥
एकै सब के भीतर देखे। चौथा भजन याहि को लेखे॥१८८॥
शोक मोह नहि ताहि सतावे। त्रय पाद में आप समावे॥१८९॥

हरिगीतिका छन्द

भाषे भजन चौथा यही, दैतारि संत समाज हो।
सब पाप ताप विनाशिनी, सुधरे सकल जन काज हो॥
कर ध्यान चेतन ब्रह्म का, चिन्तन सदा नर कीजिये।
जिसको भजे मुनि विज्ञ जन, करबद्ध सब प्रणमामिये॥१९०॥

दोहा—करैं वन्दना सर्व जन, जो आतम सर्वज्ञ।
और नहीं कोउ देव है, जाकी कीजे अज्ञ॥१९१॥

सोरठा

सो विचार से प्राप्त, ब्रह्मास्मि पुनि जप करे।
होवे आपे आप, ब्रह्म ज्ञान उर में धरे॥१९२॥

चौपाई

स्वप्न समान जगत को देखे। मिथ्या रूप विश्व को पेखे॥
जैसे राज स्वप्न का भाई। है असत्य तैसा जग गाई॥१९३॥
सत्य स्वरूप ब्रह्म का कहिये। ज्ञान होय तो याको लहिये॥
चिन्तन से सब चिन्ता नाशे। ब्रह्मज्ञान हो बुद्धि प्रकाशे॥१९४॥
नहिं कछु कर्म धर्म पट वाते। करे विचार विहंगम राते॥
है विचार सोइ योग विहंगम। संतत साधे पहुँच धामऽगम॥१९५॥
त्यागे भूतल उड़े अकाशा। देखे कछु आश्चर्य तमाशा॥
दश अंगुल नाभी के ऊपर। मध्य व्योम में सुस्थिर होकर॥१९६॥
आप सत्य निश्चय मन धारे। परम तपस्या ज्ञान विचारे॥
चलत रूढ़ धावत अहि क्षणदा। सत्य आत्मा रहित आपदा॥१९७॥
ज्ञान यथारथ बैन हमारे। करे विचार होय भव पारे॥
सदा प्राप्त अप्राप्त न होई। मेरा मत जानो यह सोई॥१९८॥

एक वस्तु नहिं दूजा दीखे यजुर्वेद मुनि याको लीखे ॥
जल थल पावक पवन अकाशा । विश्व सकल यह हरिमय भाषा॥१९९॥

सवैया छन्द

आप भन्यो यह वाक्य विलच्चण, ब्रह्म से भिन्न नहीं जग दीखे ।
ब्रह्महिं एक रहा प्रथमे जु सु , और नहीं कछु शून्य सरीखे ॥
सो पुनि विश्व स्वरुष भयो हरि, एक अनेकन रूप धरीखे ।
आपहिं जीव रू ईश प्रधानहिं, गुप्त अगुप्त सु ब्रह्म भनीखे॥२००॥
तो पुनि बन्ध रू मोक्ष कहाँ कह, काहि लिये उपदेशत ज्ञाना ॥
दोय बिना कछु कारज हो नहीं, सो परतच्च प्रमाण समाना ।
ज्ञान स्वरुप रहा प्रथमे जब , सो किस भाँति हुआ अज्ञाना ॥
ब्रह्म ते जीव भया पुनि आप सु, पूर्व के ज्ञान से मुक्ति बताना॥२०१

दोहा—एक ते आप अनेक भा, जीव जगत तेहि जान ।
ब्रह्म ज्ञान ते मुक्ति कह, नाश नकौ अज्ञान ॥२०२॥
मोक्ष एकता ज्ञान ते, होता एक स्वरूप ।
पुनि इच्छा करि बहुत भा, यह नहि ज्ञान सुरूप ॥२०३॥
रहट गति यह जानिये , सुस्थिर कभी न होय ।
ब्रह्म ते जीव जीव सो , यामे सुख नहि कोय ॥२०४॥
इच्छा करि के बहुत भा, पुनि इच्छा इक होय ।
समीचीन यह ज्ञान नहि, सह संदेही होय ॥२०५॥
क्षण सुखिया क्षण दूखिया, यह मुक्ति दुख रूप ।
कभी बाहिरे पुन्सि के, पुनः रहत निति कूप ॥२०६॥

चौपाई

यह शंका नहिं ठीक तुम्हारी । नास्तिक बुद्धि मोहरत भारी ॥
श्रद्धा ईश हीन जो प्राणी । शुद्ध बुद्धि नहिं पावहिं वाणी ॥२०७॥
ईश द्रोह आसुरी मनीषा । सदा कुबुद्धि बसे अहिनीशा ॥
सूर्य प्रकाश न आज्ञा देई । तद अनुशासन कृत फल लेई ॥२०८॥
साधु चोर जो जो कृत करई । दिनकर युग साधन जग अहई ॥
नहिं विरोध नहिं आज्ञाकारी । सो निर्दोष सदा भव हारी ॥२०९॥
पुनरपि तद प्रकाश के माहीं । साधु सुखी तस्कर दुख पाहीं ॥
यहि विधि जानो हरि को भाई । करम हेतु सब दुख सुख पाई ॥२१०॥
याते त्यक्त भ्रान्ति मव कीजै । श्रद्धा सहित ज्ञान मम लीजै ॥
प्रथम कहा मैं वस्तु अनादी । माया ब्रह्म जीव सुख वादी ॥२११॥
यथा रेत नरियल वट आमा । सूक्षम रूप वृक्ष रह तामा ॥
तिमि यह जगत ब्रह्म के अन्तर । बाहर देखो परम भयंकर ॥२१२॥

दोहा—जिमि प्रमाणु रह अर्क में, अनल दारू के माहिं ।
पुनः युगल रह युगल में, किन्तु भेद युग आहिं ॥२१३॥
तैसे जानो ब्रह्म को, रहत जीव के माहिं ।
पुनः जीव रह ब्रह्म में, भेद उभय जग आहिं ॥२१४॥
यथा मृत्तिका में घट, अप में दामिनि होय ।
घट स्वरूप नहि मृत्तिका, क्षणदा भी नहि सोय ॥२१५॥
एकमेक होइ रहत युगल, तासो भिन्न न होय ।
माटी का कारज घड़ा, जल का क्षणदा सोय ॥२१६॥

किन्तु रूप जुग भिन्न है, यह अनादि नहि सादि ।
तैसे चेतन ब्रह्म का, कारज जीव अनादि ॥२१७॥

जीव ब्रह्म जो शब्द है, अन्त रहित सो जान ।
किन्तु ईश से भिन्न नहिं, पुष्प वृक्ष फल मान ॥२१८॥

चेतन जीव प्रधान का, ब्रह्म स्वरूप समान ।
जिमि नरेश अरु भृत्य है, दोनों मानव जान ॥२१९॥

एक जाति है उभय की, गुण स्वभाव है भिन्न ।
एक सदा आनन्द में, एक रहत नित खिन्न ॥२२०॥

तैसे ब्रह्म अरु जीव का, एक स्वरूप बखान ।
वह स्वतंत्र नित मुक्त है, वह बन्धन अज्ञान ॥२२१॥

चेतनता गहि कहत हम, एकहिं ब्रह्म न आन ।
कामादिक बस जीव है, ताहि रहित भगवान ॥२२२॥

युग अनादि नहिं सादि है, कहि न सके कोइ भेद ।
ब्रह्म कृपानिधि जीव को, संतत करत अभेद ॥२२३॥

जब अनादि अज्ञान है, सो किमि होवे नाश ।
इस को कहिये हे गुरू, यह शंका मम माष ॥२२४॥

यथा रजत मोति अहिन, भूत अम्ब कर ज्ञान ।
निकट जात कुछ भी नहिं, होत भर्म का हान ॥२२५॥

यहि विधि जानो जीव को, जो अनादि अज्ञान ।
ज्ञान गुरू सुप्रकाश में, नाशहिं दोष महान ॥२२६॥

जग परमाणू रूप का, प्रथम ज्ञान नहिं होय ।
थूल रूप जब होत है, तबहीं दर्शन सोय ॥२२७॥

जो प्रतंत्र जग वस्तु है, सो अनादि नहिं आदि।
जीव जगत अज्ञान जो, जानो सकल मनादि ॥२२८॥
भवन तमारी किरण में, अणुअन दर्शन होय।
ताके पूर्व न देखिये, ब्रह्म ज्ञान तिमि सोय ॥२२६॥
कर्म करते मूरख भी, हो पंडित मतिमान।
सर्व अर्थ को जानता, सो सर्वज्ञ समान ॥२३०॥
तैसे यह जग जीव भी, ज्ञान कर्म रत होय।
दोष अनादिहिं रहित हो, ब्रह्म आप सो सोय ॥२३१॥
जन्मजात अज्ञान जो, गुरु अनुकम्पा नाश।
जीव उपाधि अनादि भी, रहे न सोऊ भाष ॥२३२॥
जीव भाव से छूटते, होवे ब्रह्म स्वरूप।
जिमि समुद्र में बुन्द मिले, दोनों हो तद्रूप ॥२३३॥
सो नहिं कबहीं विलग हो, कोटि कलप जो जाय।
तैसे जानो जीव को, पुनः जीव नहि भाय ॥२३४॥
कच्चा घट पक्का भया, सो किमि कच्चा होय।
पुनः घृत नहिं दुग्ध हो, यह जाने सब कोय ॥२३५॥
तैसे जानो जीव को, ब्रह्म भयो जो लोग।
सो नहिं होवे जीव कभी, यह कबीर का योग ॥२३६॥
कारागाराध्यक्ष जिमि, ताहिं न होवे त्रास।
तैसे जानो ब्रह्म को, उस को दुख नहिं भाष ॥२३७॥
करत निरीक्षण कर्म का, अपने भिन्न रहाय।
जैसे जल में कमल है, अम्बु नहीं ठहराय ॥२३८॥

याते कहिये ब्रह्म का, युग स्वरूप हम मान।
बन्ध एक निर्बन्ध है, अमर उभय को जान ॥२३९॥
याते चेतन एक है, सो है जग का मूल।
जीव रूप जो अंश है, सो अपने को भूल ॥२४०॥
सोइ अंश के कारणे, नाना ग्रन्थ विचार।
ताहि लिये उपदेश गुरु, भजन करन करतार ॥२४१॥
दिशा भर्म सम भूल है, और न कोइ विकार।
निज स्वरूप नहिं जानता, ताते है संसार ॥२४२॥
गया न आया है कहीं, वस्तू है निज पास।
अर्ध ऊर्ध्व में ढूढ़ता, मिले न रहत उदास ॥२४३॥

चौपाई

पूर्व प्रमाण कहा हम जैसे। कर कंगन बालक का तैसे॥
ताते प्राप्ति अप्राप्तिहुँ मानत। करि विवाद कछु औरहिं ठानत ॥२४४॥
मन धिषणा में भरम समाना। ताते भाषत आपहि आना॥
दसो पुरुष जैसे नव गनहीं। आपहि छोड़ि और को भनहीं ॥२४५॥
सीप अम्बुधी रज्जु विलेशय। भई भरम बस सेमुषि तैशय।
निकट दीप ते जात नशाई। रस्सी सीप प्रत्यक्ष दिखाई ॥२४६॥
तिमि गुरुशरण जीव जग भरमा। शमन होय सब द्वन्द्व अधरमा।
गु कहिये तम यह संसारा। रु प्रकाश है ब्रह्म उदारा ॥२४७॥
युग संयोग गुरु तद नामा। नाशे जीव मोह तम धामा।
सो कारण अज्ञानक इष्टं। देव गुरु हरि जातुसपष्टं ॥२४८॥
सन्त मुनीश्वर बहुधा भाषे। परम उपास्य गुरु को राखे।
विपुल दोष नाशहि गुरुदेवा। जन्म-मरण का करि सो छेवा ॥२४९॥

वाम कर्म जेते जग माँहीं । सर्व छोड़ाय आप सम करहीं ॥
ताते भक्ति गुरू की यामे । मन शुध हेतु युक्ति है जामे ॥२५०॥
पूजा पाठ राम गुरु सेवा । ज्ञान अमर पद लहे अभेवा ॥
याते भाव भक्ति है यामे । गूढ़ गिरा संक्षेपहिं जामे ॥२५१॥
ज्ञान निरूपित विपुल ग्रन्था । महागूढ़ गत द्वैत सु पंथा ॥
तहाँ न धँसे मंद की मेधा । शुद्ध भक्ति बिनु होय न बोधा ॥२५२॥
शुद्धि विना किमि होवे ज्ञाना । ज्ञान विना नहिं मुक्ती पाना ॥
तात सोपान भक्ति गुरु केरी । हो निर्वाण वचन यह मेरी ॥२५३॥
और उपाय अनेकन अहई । वेद पुराण संत जन कहई ॥
जप तप आदिक जो जग धर्मा । करे सर्व नित कर्म सु कर्मा ॥२५४॥
प्रेय को त्यागि श्रेय को गहई । अपरा छोड़ि परा को लहई ॥
अहं ब्रह्म चिन्तन नित करई । भेद बुद्धि नहिं हिरदय धरई ॥२५५॥
ब्रह्म यज्ञ को करे न त्यागा । सतसंगति नित करै सुभागा ॥
शनैः शनैः मन निग्रह करई । जग परपंच विषय सब तजई ॥२५६॥
अन्तःकरण शुद्ध तब होवे । मल विक्षेप आवरण खोवे ॥
यहि विधि होय जीव किरतारथ । कर्म उपासन तजि सब स्वारथ ॥२५७॥

कवित्त छन्द

स्वारथ तजो तु परमारथ भजो रे नर ,
करो नित्य कर्म शुभ आशा सर्व त्यागिये ।
मल विद्येप अरु तिसरा विकार जो ,
नाशे सर्व द्वन्द्व फन्द सत्य में तु लागिये ॥

लोभ मोह कोह द्रोह जीव को जंजाल जेते,
राग द्वेष मान मद तम कूप भागिये।
धूर्त पक्षपात त्यागि मार मारी मार दे,
एक भाव देखो सर्व ज्ञान पंथ जागिये ॥२५८॥

अन्तःकरण शुद्ध तब आतमा को भान होवे,
जैसे कर मुकुर में रूप निज देखना।
मल से विहीन मन सोई दर्पण जान,
ताहि हेतु तुम क्रिया शुभ नित्य करना॥

वेद का प्रमाण यह गुरु का बचन मानो,
भेद भाव दूर करि धरो यही धरना।
वृत्ति में अरूढ़ रहे मन नहिं जावे कहीं,
मोक्षरूप जानो ताको आदि अन्त तरना॥२५९॥

सवैया छन्द

मुक्त हुआ गुरु देवन के पद, शान्त किया सुख सिन्धु म वासा।
सो निरफन्दन द्वन्द्व अहा, कछु नाहिं करे जग जीवन आसा॥
कर्म न धर्म अहा कछु ताहिक, एक समान सु बारह मासा।
आतप ताप न ताहि सतावत, भूख पिपास न आवत पासा॥२६०॥
भानु समान प्रकाश भयो जग, भीत तमीस्र भगे मग तेव।
जीवत ब्रह्मक रूप हुआ नर, कीट भिरिङ्ग प्रमाण कहेव॥
जाहि सु गावत वेद पुरानन, शारद शेष न पावत भेव।
ताहि कहे निरलम्ब सदा मुनि, सत्य असत्य परे हरि देव॥२६१॥

भूरि विलक्षण पूरि रहा वह, जानु सु आतम नित्य स्वमेव।
काल कराल दयाल न ताकर, आपहिं आप सु देवन देव ॥
देखि सुने पुनि आपहिं बोलत, आपहिं सूँघ स्वपर्श करेव।
आपहिं भूमि अकाश पतालहिं, सर्व वियापक दूरि हमेव ॥२६२॥
आपहिं नाश विकाश करे जग, आपहिं विश्व स्वरूप अनूप।
आपहिं रंक धनो परमेश्वर, आपहिं ईशऽरु जीव स्वरूप ॥
आपहिं दास निराश रहे: नित, आपहिं मात पिता जन भूप।
आपहिं को अब आपहिं चीन्हत, आपहिं आप रहे तब चूप ॥२६३॥
निश्चय याहि करो मन में तुम, और नहीं कछु बात विचारो।
देह रहे जब ले जग में नर, आतम सत्य तुँ चिन्तन कारो ॥
दृश्य सभी परपंच अहा जग, सत्य तुम्हीं वर चेतन खारो।
देवन देव महा शुभ देव तुँ, मोद सु आगर आप अपारो ॥२६४॥
दोहा—तुम अपार हो देव बड़, हे सत चित आनन्द।
शासक चौदह भुवन का, तोहि न कबहूँ फन्द ॥२६५॥
कर्म समान विशेषहूँ, तव तद्रूप न सोय।
बिशेषाधिकरण समान, तुम जानत सब कोय ॥२६६॥

❀ इति श्री अध्यात्मवाद व्याख्यान द्वादश अध्याय समाप्त ❀

त्रयोदश अध्याय

सदसद् गुरु लक्षण व्याख्यान वर्णन चौपाई छन्द

कहा तोहि सन सकल बुझाई। शंका होय कहो पुनि भाई ॥२६७॥
सुनि गुरु बानी सर्वानन्दा। बन्दीछोर हरेउ सब फन्दा ॥२६८॥
महिमा अमित आज मैं जाना। पारब्रह्म भगवान महाना ॥२६९॥

वचन तुम्हार विरोचन जैसे । अन्धकार नाशेउ भ्रम तैसे ॥२७०॥
अपर नेत्र रक्षक जिमि नयना । तिमि गुरुदेव आप की बैना ।
संशय दूर हुआ सब मेरा । चरण कमल दर्शन करि तेरा ॥२७१॥
सत्य वचन भाषेउ तुम स्वामी । ज्ञान पंथ सब कहा नमामी ।
सविता सम तव बचन प्रकाशा । मोह ध्वान्त नहि तहँ सक बासा२७२
शंका एक और भगवाना । सुनिये दीन-बन्धु मतिमाना॥२७३॥
दोहा—जो अनुशासन देहु गुरु, कहूँ पुनः वह बात ।
तब बोले गुरुदेव जी, कहो बात वह तात ॥२७४॥

चौपाई

जो प्रभु भाषेउ गुरु में निष्ठा । कौन गुरू जो करूँ प्रतिष्ठा ॥
बहुत गुरू हैं यहि संसारा । जानि परे नहिं वार न पारा ॥२७५॥
तिनकर भेद कहो मम स्वामी । अति उदार तुम अन्तर्यामी ॥
श्री सद्गुरु का लक्षण कौना । तुम समुझाय कहो हरि तौना ॥२७६॥
जिन सेवत उतरे भव पारा । सो गुरु कौन अहा जग सारा ॥
कहा प्रथम जो मैं गुरु सेवा । सुनहु सकल का तुम अब भेवा ॥२७७॥
बहुधा शिक्षक यहि संसारा । दुर्लभ सद्गुरु ज्ञान विचारा ॥
संन्यासी कोउ आहिं उदासी । वेष अनन्त धरे वन बासी ॥२७८॥
पंडित मुल्ना पीर पादरी । निज निज ज्ञान कहें सब भारी ॥
आस्तिक और नास्तिक कहिये । पंथ अनेक जगत में लहिये ॥२७५॥
नित नवीन सो पंथ चलावें । हरि का दर्शन क्षण में गावें ॥
कलि में गुरु बहु रूप अनन्ता । गृह वासी चाहे हो सन्ता ॥२८०॥
दम्भ अपार युगल के माँहीं । मारग एक उभय को आहीं ॥
हो गिरही ठगई बहु करई । स्वारथ हेतु साँच नहि धरई ॥२८१॥

कुल परिवार जिये जिस हेता । करत उपायी गुरुहिं निकेता ॥
ज्ञान हीन मतिमन्द अभागा । ठगहिं लोग जग वंचक कागा ॥२८२॥
तीरथ मूरति में भरमावहिं । भूरि महातम सकल सुनावहिं ॥
पीर पादरी मुलना पंडित । हिंसा कर्म जीव बहु खण्डित ॥२८३॥
स्वर्ग प्रवेश-पत्र सो लिखहीं । आँगल गुरू पादरी अहहीं ॥
मूरख लोग फँसहिं तद जाला । तन मन अरपहिं जो घर माला॥२८४॥
नीच भोग भोगहिं बहुताई । जाल गरंथ अनेक बनाई ॥
विषय भोग संतत सुख माने । स्वर्ग लोक याही को जाने ॥२८५॥
ब्रह्म ज्ञान बक्कहिं संसारी । ठग व्यवहार सु जाल पसारी ॥
द्वन्द्व मचावहिं बहु संसारा । मोह नदीं नहिं पार उतारा ॥२८६॥
रम्य भवन अति आप सजावें । तहाँ यात्रिकन आनि बसावें ॥
देखहिं पास द्रव्य तिन भूरी । सो गरदन पर मारहिं छूरी ॥२८७॥
पापरूप तीरथ के पण्डा । महा धूर्त व्यापक नव खण्डा ॥
साधुरूप चोरन का कामा । अन्तर रावन बाहर रामा ॥२८८॥
सावधान इन ते नित रहिये । नहिं विश्वास हृदय में गहिये ॥
दोष पाप एकहु नहिं गनहीं । मिले द्रव्य सोई कृत करहीं ॥२८९॥
साँची बात कभी नहिं भाखें । झूठो में सब जन को राखें ॥
अमित दोष नहिं कहों बखानी । कहे सुने बड़ होइ गलानी ॥२९०॥
अब त्यागी गुरु जन के लक्षण । सुनो श्रवण दै कहूँ ततक्षण ॥
कहाँ त्याग वन बसना भाई । कहाँ द्रुम त्वक् पेन्हन मुनि गाई ॥२९१॥
कहाँ ज्ञान वैराग्य रु योगा । मुक्ति हेतु भाषेउ मुनि लोगा ॥
कहाँ कर्म शम दम इत्यादिक । मम विराग ईर्षादिक त्यागिक ॥२९२॥

पर उपकार कहाँ शुभ धर्मा। कहाँ सर्व हितु त्यागेहु कर्मा॥
कहाँ बोध गुरु वचन विचारन। सम्यग रूप कहाँ वृति धारन॥२९३॥
सत्यासत्य निरूपण कहवाँ। भक्ति भाव नहिं साधे तहवाँ॥
कहाँ शान्ति कहँ साध समाधी। त्याग नहीं मन कोटि उपाधी॥२९४॥
औरो लक्षण जो सन्तन के। त्याग भयो बसि माया मन के॥
नाना भोग रोग रत रहहीं। भजन राम का कबहुँ न करहीं॥२९५॥
औषधि सेवत जन्म शिराना। नहि निर्वाण जन्म पुनि आना॥
योग ध्यान नहिं ज्ञान विचारा। निज बन्धन कीन्हों संसारा॥२९६॥
वृषभ हय गज वाहन नाना। धन सग्रह करहीं भगवाना॥
सप्त सहस्र अवनि जोतवारे। राज भवन सम कुटी सँवारे॥२९७॥
भृत्य अनन्त रहहिं तद संगा। भूप वेष वस्तर बहु रंगा॥
जेते कर्म नरेशन को है। कलि साधुन में जानहु सो हैं॥२९८॥
गुप्त कर्म नीचे बहु करहीं। ठग व्यवहार हिया में धरहीं॥
पढ़हिं वेद विद्या व्यवसाई। यज्ञ कर्म में अति मन लाई॥२९९॥
परमारथ कहि संग्रह करहीं। सो न करैं अपने हित धरहीं॥
सम्भाषण से मोहहिं लोगा। कर्म हीन भाषहि बहु योगा॥३००॥
नेत्रहीन गाँठी के पूरे। तद बन्धन महँ फसहिं अधूरे।
ज्ञान ध्यान बहु त्याग बतावहिं। श्रेष्ठ महर्षिन नाम सुनावहिं॥३०१॥
साधन बहुत समाधि देखावहिं। आसन करि बहु जग भरमावहिं॥
मूरख लोग सुनहिं जब ज्ञाना। तिन्ह समान नहि जानहि आना॥३०२॥
कर्म धर्म पर नाहिं विचारा। रूप देखि भूलहिं संसारा॥
करहिं बड़ाई झूठहिं लोगा। बहु प्रकार जब देखहिं भोगा॥३०३॥

पर को देहिं वेद का ज्ञाना। तद् विपरीत आप मति माना॥
दम्भ कर्म देखो संसारा। नहिं विचार कछु करहिं गँवारा॥३०४॥
उलटा कर्म करहिं संसारी। कैसे पार होहिं भव धारी॥
द्रव्य कोटि धर बहु कोशन में। धन अथाह देखा मंगन में॥३०५॥
विषयासक्त बहुत हम देखा। त्याग नहीं तहँ रंचक पेखा॥
युद्ध वाद हत्या करवावहिं। धारो भय बंदूक चलावहिं॥३०६॥
राग द्वेष बहु करहिं अपारा। धन संचहिं कृत बहु दुख भारा॥
वेष महर्षिन केर बनावहिं। दस्यू कर्म करहिं मन लावहिं॥३०७॥
धर्म त्यागि धन इच्छा भारी। भक्ति भाव नहिं हिरदै धारी॥
ब्याज लेहिं दै मुद्रा भाई। हस्ताक्षर अरु चीन्ह लगाई॥३०८॥
वैश्य कर्म जग करहिं त्यागी। साज बाज माया वित रागी॥
दे न सके जो हो कंगाला। अर्थ वाद करि करहिं बेहाला॥३०९॥

हरि गीतिका छन्द

व्याकुल करहिं कंगाल को, सुख देन को दुख देत हैं।
करते कुहिंसा द्रव्य से, अपराध शिर पर लेत हैं॥
कितने अवर ऐसे अहैं, शुभ त्यागि वृषली पर परे।
जेते रहा सु कुटीर धन, सो सर्व वेश्या ने हरे॥३१०॥
कितने अवर मादक्य में, गाँजा औ भाँगहिं खात हैं।
जल कर कलेजा खाक भा, बिनु ध्यान के ब्रह्म पात हैं॥
नहिं ध्यान सुमिरन राम का, लागी अमल बस चिलम की।
गुरु देव ज्ञान विचार नहिं, आशा वही इक अमल की॥३११॥

करते सु चेला चेलियाँ, संसार में लाखों घना।
क्षमता दया समता नहीं, सु विवेक ज्ञान उदार ना॥
निर्वाण उस को मानते, बस कान को ही फूकना।
पूजा दिया धोती दिया, चेला गया घर आपना॥३१२॥
व्यवहार इस विधि सबन का, जितने मता संसार में।
तहँ मोक्ष की आशा नहीं, सासक्त जो व्यवहार में॥
परपंच बन्धन जानिये, संसारियों के रूप में।
निर्वाण पद से रहित सब, परते भवोदधि कूप में॥३१३॥
कलि साधुओं की चाल हम, संक्षिप्त में बर्नन किया।
बातें अभी कुछ और हैं, पढ़ि लोग दुख माने जिया॥
इस हेतु कहना श्रेष्ठ नहिं, भीतर सबन की बात है।
आगे कहूँ परसंग अब, मतिमान को सब ज्ञात है॥३१४॥

दोहा--जानत हैं सब चतुर नर, गुण अवगुण सुन तात।
सद्गुरु तो मिलते नहीं, मिले होंय कुशलात॥३१५॥

चौपाई

लाख करोड़ सहस्रन कहिये। तिनमें कोई एक बुध रहिये॥
ताको सेवा अति कठिनाई। निकट जात अति दुर्गम भाई॥३१६॥
सो गुरु दीन-बन्धु वर हंसा। वेद पुराण करत परसंसा॥
काल चक्र तिन सपनेउ नाहीं। माया मोह निकट नहिं जाहीं॥३१७॥
काम क्रोध मद लोभ विहीना। छल परपंच कपट नहिं दीना॥
द्रोह भाव नहिं काहु मिताई। जीव चराचर सम सब भाई॥३१८॥

ज्ञान अमर पद निश्चय तेही। आतम सत्य और तजि देही ॥
पर दुख निज भी सम करि मानन। इरषा द्वेष हिया नहिं आनत ॥३१९॥
वीतराग नहिं पुर सुत वामा। बसत विपिन नहिं हिरदै कामा ॥३२०॥

मनोहर छन्द

गत दोष सर्व अकाम हैं, रत आतमा सुख धाम हैं।
नित वेद ज्ञान विचार है, परिमुदित मन सुउदार है ॥३२१॥
शुभ शान्ति रूप प्रकाशमय, उपदेश दे करते अभय।
करते न वाद विवाद को, कहते सभी हित नाद को ॥३२२॥
संसार सर्व कलेश को, करि दूर त्रय तापेश को।
तिन संग बसते जो जना, निर्मल करहिं उनका मना ॥३२३॥
नहिं काल जाल वियापता, निज रूप माँहिं विराजता।
भव धार का वह पोत हैं, करि पार बहु जन होत हैं ॥३२४॥
निर्भय सदा निर्लम्ब सो, गुरुदेव ज्ञानागम्य सो।
द्वैताद्वैत सब त्यागि के, निरुपाधि भा सत लागि के॥३२५॥
चेतन रहा चेतन भया, जग कर्म भी सब मिट गया।
भर्तव्य नहिं कर्त्तव्य का, जो भूत भावी वर्त का ॥३२६॥

दोहा--सर्व रहित निःसङ्ग प्रभु, करत सदा उपकार।
तरहिं जीव जग ताहि सो, करत पाप को छार ॥३२७॥
अवगुण सकल छुड़ावता, दीन-बन्धु गुरुदेव।
मल विक्षेप न आवरण, कीजै ताकी सेव ॥३२८॥
सदा तृप्ति निज रूप महँ, मृग-तृष्णा को त्याग।
काल चक्र व्यापे नहीं, रहे सुरति में लाग ॥३२९॥

हरिगीतिका छन्द

जग मोह नहिं वह व्यापता, गुरु राम परमानन्द हैं।
भव खेद द्रोही जानिये, काटे सकल यम फंद हैं॥
निर्द्वन्द्व रहत एकान्त में, तद दर्श अति दुर्लभ कहा।
सेवत सदा सुर-वृन्द हैं, गुरुदेव की महिमा महा॥३३०॥

सोरठा

महा विकट व्यवहार, देखि डरत सुर असुर नर।
ताहि न जग व्यवहार, पारद जैसे लिप्त नहिं॥३३१॥

चौपाई

सदा अनघ स्वच्छन्द उदारा। बन्दी मोचत जो संसारा॥
तद सेवत धाता हरि ईशा। ब्रह्म रूप सो गुरु जगदीशा॥३३२॥

हरिगीतिका छन्द

जगदीश पालक सर्व के, गुरुदेव को तुम जानि ले।
जाकी कृपा जग जीव सब, भव लवणनिधि तर मानि ले॥
अज सुर सकल नर मुनि जना, शितिकण्ठ भी सनमानि ते।
उपमा रहित सु अनूप हैं, नहिं वस्तु कोउ परमाणिते॥३३३॥
हरि से अधिक हैं गुणन में, इस हेतु अतिशय श्रेष्ठ हैं।
शंका करे मन में कोई, उत्तर सुनो सत नेष्ठ हैं॥
सो भेद दोनो का कहूँ, सुनिये अभी मन लाइके।
हरि के किये जग जीव सब, मानव वपुष धरि आइके॥३३४॥
पुत्रादि धन हरि देत हैं, जिसमें सदा दुखही भरा।
जन्मत मरत संतत रहे, मुनि संत जन कहते वरा॥

निर्वाण नहिं हरि दे सकें, होता विसृष्टि अभाव हो।
देते सुगति यदि जीव को, नहिं आज देखन आव हो ॥२३५॥
याते न हरि निर्वाण दें, उनका यही व्यवहार है।
विरचे जगत पुनि नष्ट करि, नाशे रचे संसार है॥
जिमि त्यागि नहिं गर्दभ सके, निर्णेजकः निज हेतु से।
यदि त्यागि दे ढोवे कौन, अम्बर अपावन केतु से ॥२३६॥
इस भाँति हरि को जानिये, नहिं जीव का त्यागन करे।
कबहूँ त्रिदिव अज लोक में, कबहूँ नरक नीचे धरे॥
याते तु हरि को त्यागि के, पहले गुरू को सेव कर।
देंगे पकड़ि हरि को तुझे, गुरुदेव पद हिरदै में धर ॥२३७॥
वे जीव की रक्षा करें, यम से छुड़ावेंगे तुझे।
यह बात मेरी सत्य है, विश्वास संतत है मुझे॥
जैसे महा दोषी रहा, नरपाल ने पकड़ा तिसे।
तद् दोष घोर विचारि के, शूली की आज्ञा दे उसे ॥२३८॥
धनवान हो श्रीमान हो, लाया वरिष्टर जाइ के।
करि के विचार छुड़ा लिया, रक्षा किया वह आइ के॥
नरपाल आज्ञा नहिं रही, गुरु रूप उस को जानिये।
नरनाह से डरता नहीं, निर्बन्ध उसको मानिये ॥२३९॥
यह जानते सब संत हैं, सारे जगत विख्यात है।
गुरुदेव बिनु अज्ञान सब, यह भी सबन को ज्ञात है॥
सब बासना को दूर कर, कर एक में आसा सदा।
विश्वास से पद को भजो, जो क्षेम करता सर्वदा ॥२४०॥

दोहा–याते वर सब देव महँ, वरन करो सब आइ ।
तद लक्षण वर्णन किया, आगे और बताइ ॥३४१॥

चौपाई

शान्त अग्नि जैसे बिनु अरणी । सो समान गुरुवर भव तरणी ॥
जो जग तासु मिले अधिकारी । भक्ति ज्ञान उपदेश अघारी ॥३४२॥
सत्य वचन भाषण सो करई । शंका द्वन्द्व काल सब हरई ॥
वनज पर्ण सम यह जग माहीं । विषय अम्बु तहँ परशत नाहीं ॥३४३॥
जिमि प्रकाश शीतल शशधर के । तिमि प्रकाश गुरुदेव-अमर के ॥
सुषमा तासु महा उपमा में । नहिं प्रमाण मानिये सब जग में ॥३४४॥
देखि सकल मोहैं नर नारी । जीव चराचर जो वन चारी ॥
मोक्ष रूप विग्रह अति सुन्दर । सर्व सुलक्षण ज्ञान धुरन्धर ॥३४५॥
वाणी तासु वेद सम भाई । निगम रहस्य सकल वह गाई ॥
सतधारी उर क्षमा विचारा । जग में आइ जीव बहु तारा ॥३४६॥

दोहा–संत कमल कुल पोषकः, हरत निशा तम शोक ॥
मन कर्षक कामादि कृषि, सो तुषार कह लोक ॥३४७॥
पुनः संत कैरव कुल, सो प्रसन्न शशि जान ॥
तरु आदिक सम आँहि गुरू, वेद पुरान वखान ॥३४८॥

इति श्रीसदसद् गुरु लक्षण व्याख्यान त्रयोदश अध्याय समाप्त

चतुर्दश अध्याय

षट्साधन वर्णन

दोहा–शम दम आदिक भेद को, पुनि वैराग्य विवेक ।
तुम सन भाषो शिष्य हम, जामें रहे न टेक ॥३४९॥

साधन आदिक नाम जो, तिनका करूँ बखान।
सावधान हो शिष्य सुन, चितसुस्थिर दैं कान ॥३५०॥

चौपाई

नित्यानित्य करे सु विवेका। प्रथमे जानिय याको एका॥
उभय लोक सुख करे तियागा। सो पुनि दूजे है वैरागा ॥३५१॥
उपरति शम दम और बखानो। पुनः तितिक्षा को तुम मानो॥
श्रद्धा समाधान जो कहिये। इन सम्पत्ति सभी को लहिये ॥३५२॥
ब्रह्म सत्य जग मिथ्या माने। ऐसा निश्चय उर में आने॥
नित्यानित्य सु वस्तु विवेका। धरे हृदै नहिं रञ्चक टेका ॥३५३॥
ब्रह्म-लोक लगि त्यागे भोगा। तिस को कह विराग मुनि लोगा॥
दोष दृष्टि हो बारहिं बारा। विषय समूह से होय नियारा ॥३५४॥
चित सुस्थिर निज लछ में होई। शम भाषत ताको मुनि लोई॥
ज्ञानेन्द्रिय कर्म जो कहिये। खीचि विषय से सुस्थिर रहिये ॥३५५॥
जहाँ का जवन तहाँ पर राखे। दम ताको कोविद जन भाखे ॥३५६॥

दोहा--वृत्ति जु वाह्य विषय को, आश्रय लेत जु नाहिं।
सो उत्तम उपरति कही, इस में शंक न आहि ॥३५७॥

चौपाई

चिन्ता शोक रहित नित रहई। बिनु कारण दुख आवे सहई।
सर्व प्रकार के भव रुज सहई। ताहि तितिक्षा मुनिवर कहई ॥३५८॥
शास्त्र और गुरु वाक्य जु कहिये। तिनमें प्रेम सत्य सो रहिये॥
श्रद्धा ताहि कहत मुनि वेदा। जाते शमन होय भव खेदा ॥३५९॥

सदा रहे मति आतम अन्दर । सब प्रकार से शुद्ध ब्रह्म वर ॥
सुस्थिर बुद्धि सदा जो रहई । समाधान ताको बुध कहई ॥३६०॥

हरिगीतिका छन्द

महदादितः वपुरादि जितने, कार्यं गण वर्णित अहा ।
अज्ञान कल्पित बन्धनं, मुनिराज गुरुवर ने कहा ॥
सब का करे परित्याग जन, निज रूप द्वारा ज्ञान ते ।
ताको कहत सु मुमुक्षता, वेदादि पंडित मानते ॥३६१॥

दोहा–षट सम्पत्ति उपकरण यह, कहत मुनीश्वर वेद ।
जो यामे परवीन नर, लहे गुरू सन भेद ॥३६२॥

चौपाई

याते युक्त होय नर कोई । तब गुरु शरण जाय जन सोई ॥
बिनु अभिमान जाय प्रभु शरणा । तारण तरण होय नहिं मरणा ॥३६३॥
तन मन वच सब अरपन करई । विनय भाव से वाणी ररई ॥
करे विनय गुरुदेव शरण की । सदा दयाल शरण अशरण की॥३६४॥
ऐसा भाव न आने कबहीं । सुनिये उसको कहता अबहीं ॥
प्रथमें श्रद्धा बहुत दिखावे । चोवा चन्दन तीन लगावे ॥३६५॥
स्वारथ सिद्ध नहीं जब पावे । मनमाना व्यवहार करावे ॥
पीछे भक्ति भाव नहिं तन में । अति अभिमान करे सो मन में॥३६६॥
सो वंचक नहिं पावे ज्ञाना । इत उत भरमे सो बौराना ॥
एक त्यागि दूजा गुरु करई । नहिं विश्वास किसी में धरई ॥३६७॥
गुरु से वतरस करै कु पापी । सो चेला जानो सन्तापी ॥
ऐसा ज्ञान त्यागि नर दीजै । गुरुसन विनय भाव नित कीजै ॥३६८॥

मोहिं विरद पर करिये दाया। हरहु शोक सन्ताप अदाया॥
यहि विधि बिनती करे अनन्ता। नाथ दयानिधि हो भव अन्ता॥३६९॥
जो गुरु कहे शिष्य सो करई। संकट सकल भगत का टरई॥
सो समान औरो नहिं कोई। सुर नर मुनि असुरादिक जोई॥३७०॥
काल दण्ड को दण्डनिहारा। उग्र रूप पुनि परम उदारा॥
ताकी सेवा सन्तत कीजै। मानुष भाव न हिरदै लीजै॥३७१॥
शीत प्रसादी अमिरित जाने। पारब्रह्म परमेश्वर माने॥
मात पिता गुरु श्रेष्ठ समाना। उच्चासन त्यागे मतिमाना॥३७२॥
ताहि देखि उठि आगे ध्यावे। उत्तम ज्ञान शान्ति सो पावे॥
तजे उपानह और खड़ाऊँ। मुर्धा बिनु पागा नित नाऊ॥३७३॥
हास्य वचन दुर्वैन न बोले। नहिं आगे श्रेष्ठन के डोले॥
मौन भाव शुभ आज्ञा पाले। गुरु सेवा करि होय निहाले॥३७४॥
मुक्तामणि मुद मंगल मूला। ते प्रभु हरहिं मोह भव-शूला॥
दोष दृष्टि सपनेहुँ नहिं आने। निर्मल देव निरञ्जन जाने॥३७५॥
हे भगवान विनय सुन मेरी। करिये दया शरण मैं तेरी॥
जो अपराध होय मम स्वामी। क्षमा करो तव मैं अनुगामी॥३७६॥
अन्तर्यामी दीन दयाला। तुम सर्वज्ञ सदा जन पाला॥
उर भीतर सब जाननहारे। आरत लाज राखु गुरु प्यारे॥३७७॥
कर्म खोट अपराध अनेका। नहीं बुद्धि वैराग्य विवेका॥
ताते नाथ शरण में लीजै। भव मोचन अब देर न कीजै॥३७८॥

हरिगीतिका छन्द

कीजै न देर कृपाल हरि, जन जानि के सम्भाल हो।
संसार यह दुख रूप अति, डरता सदा जन पाल हो॥

विनती श्रवण करिये विभो, करता सदा मैं वन्दना।
छीजत सदा मम गात्र है, जग उरग चाहे डंसना ॥३७९॥

दोहा—यहि विधि वन्दन नित करे, गुरु प्रसाद के हेतु।
तर्क वितर्कहि दूर कर, मोक्ष अभय पद देत ॥३८०॥

चौपाई

भाँति अनेक कहे समुझावे। त्रय भावना भर्म भगावे॥
तत्त्वन गुणन प्रकृतिन केरे। पंच कोश त्रय गुणन भनेरे ॥३८१॥
अध्यातम अधिदैव बतावे। जहाँ का जौन तौन दर्शावे॥
नव नाड़ी तिहुँ करे बखाना। योग तत्त्व का करि व्यख्याना ॥३८२॥
ब्रह्म-रंध्र इत्यादिक भेदा। कहे सकल नहिं बूझे खेदा॥
प्राणापान गती दरशावे। भूमा का वह दर्श करावे ॥३८३॥
प्राणायाम भेद सब भाखे। कपट खोट एकहुँ नहिं राखे॥
स्वास प्रस्वास भेद जो कोई। कहे गुरू शिष्यन प्रति सोई ॥३८४॥
पाँच प्राण झीनी पुनि पाँचो। अन्तःकरण चारि कह साँचो॥
दशों इन्द्रियावस्था चारो। कहे सबहिं गुण धर्म विचारो॥३८५॥
जो जाका होवे व्यवहारा। कहे सकल गुरु परम उदारा॥
पूर्व कथन बहु भाँति बुझावे। सप्त भूमिका सो दर्शावे।३८६॥
महा वाक्य त्रय पद के लक्षण। कहे ज्ञान भव भेद विलक्षण॥
दुइ को त्यागि एक बतलावे। दोष मानसिक सकल मिटावे ॥३८७॥
जग उत्पत्ति भेद सब भाखे। ब्रह्म ज्ञान चेला प्रति आखे।
जो विधि होय शिष्य को ज्ञाना। सो समुझावे पंथ सुजाना ॥३८८॥
जो जेहि योग्य वही बतलावे। कर्म उपासन ज्ञान सुझावे॥
जेते तर्क अतर्क सब भेदा। जो भाषे मुनिवर अरु वेदा।३८९॥

सोरठा

कियो तर्क जो वेद, कर्म निषिद्ध अरु सिद्ध के।
जहत अजहतो भेद, कहे सकल तद् लक्षणा ॥३९०॥

दोहा—और सकल समुझावई, भाँति भाँति सब बात।
हो मुक्त तब जीव यह, नहीं भ्रान्ति भव वात ॥३९१॥
दया धर्म अरु शीलता, जो दैवी सम्पत्ति।
कहे सकल शिष्यहि गुरु, लहे न रंच आपत्ति ॥३९२॥
यह विरक्त का लक्षणा, सुनहू सुरतिगोपाल।
यहि विधि पालन प्रश्न करु, ताहि न काल कराल ॥३९३॥

पञ्चदश अध्याय

गृही शिष्य के लक्षण

दोहा—गृही शिष्य के भेद अब, कहूँ तोहि समुझाइ।
गुरु सन प्रेम की रीति जो, श्रुति गोपाल सुन आइ ॥३९४॥

चौपाई

होय गृही जो शिष्य सुजाना। लक्षण ताहि सुनो करि काना ॥
धर्म दशो जो गरहण करई। पुनि सेवा सन्तन उर धरई ॥३९५॥
क्षुधित व्याधियुत पदगत अंधा। करे सेव तजि के सब धंधा।
जो हो सके करे नित सेवा। अन्त समय पावे जन मेवा ॥३९६॥
जो अतिथ्य द्वारे चलि आवे। परम गुरू सम ताको गावे ॥
तद सेवा में मन को दीजै। जन्म सुफल मानव का कीजै ॥३९७॥
जासो भेट कबहुँ नहिं होई। सो अतिथ्य जानो नर लोई ॥
वचन रसाल उचारे तासो। द्वेष भाव नहिं राखे वासो ॥३९८॥

हिंसा रहित अहिंसा पाले जीव कबहुँ नहिं कोई घाले ॥
तन मन वच तीनों को त्यागे। ताहि देखि वैरी सब भागे ॥३९९॥
राज वैर जग करे न कोई। शक्ति अहिंसा रक्षक होई ॥
जेते हिंसक जग के प्राणी। ता दर्शन दुर्बुद्धि नशानी ॥४००॥
हानि नहीं कौनहुँ विधि होई। किया परीक्षा हमने सोई ॥
तन मन कर्म दुखावे नाहीं। महा शक्ति आवे तद् माहीं ॥४०१॥
सदा शुद्ध तीनों से होई। ताका रिपु जग में नहिं कोई ॥
वचन कबीर सत्य यह जानो। परम अहिंसा उर में आनो ॥४०२॥
जप तप सब मख याके माहीं। यहि समान कछु धर्म न आहीं ॥
मुक्ति भुक्ति सब साधन एहा करिये पालन विनु संदेहा ॥४०३॥
जाते हानि न होवे काहू। ताके लिये होहु नहिं राहू ॥
अनजाने में दोष न लागे। जानि बूझि नहिं करहु सुभागे ॥४०४॥
जोतन बोवन खनन जु करमा। यामे भी हिंसा के धरमा ॥
इनके बिना काम नहिं होई। यामें दोष कहा नहिं कोई ॥४०५॥
दोष कछुक कितने मुनि भाषे। ताके लिये दान पुनि राखे ॥
जप तप मख नाना अनुसारा। गृह हिंसा से होय उबारा ॥४०६॥
विनु कारण हिंसा नहिं कीजै। परम सुयश मानव तुम लीजै ॥
तजे मांस मद मछली जेते। त्यक्त सकल दूषित कृति तेते ॥४०७॥
चोरी अरु बटमारी निन्दा। पर तिय आदिक कर्म जु मन्दा ॥
पर कर दोष न देखे कबहीं हित अनहित सम जाने सबहीं ॥४०८॥
छल परपंच दम्भ नहिं माया। पापिन संग न करे भुलाया ॥
अपने आवे अपने जावे। जो प्रारब्ध होय सो खावे ॥४०९॥
ताकी रक्षा कर भगवाना। जो माँगे सो पाव सुजाना ॥
चिन्ता रहित तोष नित राखे। परम प्रेम नित हरि से भाखे ॥४१०॥

पुनि अब सुनो धर्म के नामा। करे जो पालन आठो यामा॥
नाम दशो सो कहों बखानी। जाते होय मोह मल हानी॥४११॥
धृती क्षमा दमो अरु सत्यं। शौचं इन्द्रिय-निग्रह कृत्यम्॥
धीं विद्या सत् अरु अक्रोधा। दशमें वृत्ति सो करे निरोधा॥४१२॥
नित्य सुकर्म करे मन लाई। जेते शुभ हो होय भलाई।
कुल परिवार कुटुम्ब जो जग में। कानो तासु उपर ते मन में॥४१३॥
बिनु कारण नहिं हँसे न बोले। बिना अर्थ नहिं जग में डोले।
करे विचार सदा सब काजा। परमारथ में करे न लाजा।४१४॥
श्रमजीवी जो कर नित सेवा। ताको जानो है वर देवा॥
उचित मूल श्रम-जीविहिं दीजै। तिन के संग न धोखा कोजै॥४१५॥
वाके बिना न होवे कामा। याते इन को जानो रामा॥
सकल विश्व को आर्य बनावे। दूसर जाति रहन नहिं पावे॥४१६॥
वेद वचन यह ईश्वर वाणी। पालन करो होय नहिं हानी॥
पूजा यज्ञ विवाह सुकर्मा। करे वेद विधि से सब धर्मा॥४१७॥
आर्य धर्म सब रक्षक जानो। याते दूसर धर्म न मानो॥
दूसर धर्म सदा भयदाई। आर्य धर्म में होय भलाई॥४१८॥
जन्म मरण इत्यादिक जोई। वेद विरुद्ध करो नहिं कोई॥
प्रथमारम्भ करे जो काजा। वेद मंत्र से होम सु साजा॥४१९॥
वेद शुद्ध जग और अशुद्धा। कहत संत मुनि औरो वृद्धा॥
निज वंशज को सर्व बतावे। जो व्यवहार लोक दर्शावे॥४२०॥
शिखा सूत्र को धारण करई। चारि आश्रम पालन धरई॥
जो नहिं लिखा वेद में होई। तद अनुकूल चरो नर सोई॥४२१॥

सभ्य वचन बोले नित भाई। जाते हो सुख सब को गाई॥
जाते हितु परिजन का भाई। दोष रहित हो होय भलाई।४२२॥
विधवा व्याह नियोग करावे। जब इच्छा लड़की की पावे॥
सोलह वर्ष व्याह नहि करई। तत्पश्चात वेद-विधि सरई॥४२३॥
सोरह कन्या वर सो बीसा। यही अवस्था व्याहे ईशा॥
करे स्वयंवर पहली रीती। जिस में होय उभय की प्रीती॥४२४॥
जिन को चाहे कन्या बरई। स्ववरण माँहि नियम यह धरई॥
रहे स्वतंत्र सदा जग नारी। मर्यादा कुल धर्म विचारी॥४२५॥
लहे ज्ञान तब देश सुखारी। अधिक ज्ञान धारण कर नारी॥
अक्षत योनि विधवा हो जाई। ताका व्याह पुनः करवाई।४२६॥
होय विक्षत विधवा जग नारी। तद नियोग विधि वेद विचारी॥
नारि पुरुष सम है अधिकारा। पुरुष से नारि अधिक अधिकारा॥४२७॥
कारण अधिक कार्य वह करई। नारि बिना नहिं कारज सरई॥
वंश हेतु नर करत विवाहा। नारि मरे नर दूसरि चाहा।४२८॥
वही बात नारी को होई। पुनर्विवाह दोष नहि कोई॥
नहि विवाह जो विक्षित करई। पुत्रहीन अबला जो अहई॥४२९॥
जो कुल श्रेष्ठ नारि नर पावे। तो बासे वह वंश चलावे॥
रहे नारि वह स्वामी गेहा। पुत्र हेतु वह करे सनेहा॥४३०॥
क्षेत्र जासु कर स्वामी सोई। याते यहाँ क्षेत्र वर होई॥
पुत्र पूर्व पति का वह जानो। क्षेत्र जासु का सुत सो मानो॥४३१॥
पति का धन सब पावे नारी। धर्म-शास्त्र यह कहा विचारी॥
वंश होय शुभ शिक्षा देवे। जो कछु दोष होय सब छेवे॥४३२॥

मातु पिता गुरु आज्ञा माने। प्रथम गुरू इन्हीं को जाने॥
देश हेतु हित अपने भाई। सुन्दर शिक्षा देवे माई॥४३३॥
ऊपर से बहु शासन देवे। भीतर कुम्भकार सम सेवे॥४३४॥

दोहा—वर्ष पाँच के बाद में, देवे गुरुकुल भेज।
गुरु ज्ञानी शिक्षा भरे, जामे हो बड़ तेज॥४३५॥

चौपाई

सर्व शास्त्र सब विषय पढ़ावे। जेते ज्ञान सभी सिखलावे॥
जो मर्यादा मुनिवर भाषे। चेला सन शिक्षक सब राखे॥४३६॥
करे परीक्षा पुनि पुनि ताकी। होय विमल मति जाते वाकी॥
जो जस योग होय वह बालक। करे प्रचार देश धी धारक॥४३७॥
जो जेहि योग होय नर पंडित। पद दीजै तब करै सो मंडित॥
प्रजातंत्र का करिये साजा। सम अधिकार सु लहे समाजा॥४३८॥
उन्नति देश सकल जन केरी। प्रजातंत्र सुख साज घनेरी॥
योग्य व्यक्ति को चुनिये भाई। जो सब विधि से करे भलाई॥४३९॥
हो अयोग्य तेहि दूर करीजै। भले मनुष को पद वर दीजै॥
साचा लेन देन व्यवहारा। क्रय विक्रय आदिक संसारा॥४४०॥
सेवा करे उचित सब भाई। जो जाको जनतंत्र बताई॥
देश विदेशे आवे जाई। ज्ञान कला होवे अधिकाई॥४४१॥
जो अभाव अपने में होई। पर से सिखे दोष नहिं कोई॥
सदा करे वाणिज व्यवहारा। प्रजातंत्र सुख-सिन्धु अपारा॥४४२॥
मात पिता यह गुरु जन कामा। साची बात सिखावे धामा॥
हो प्रौढ़ जब बालक भाई। निज समान जानो मुनि गाई॥४४३॥

तासन प्रेम मित्र सम कीजै । वृद्ध भये बोझा शिर दीजै ॥
वानप्रस्थ मारग अपनावो । पूत पतोह निकट नहि आवो ॥४४४॥
राम नाम भजि लीजै लाहा । चौथे पन नहिं बनिये नाहा ॥
पुत्रहुँ को अस चाहिये भाई । मात पिता सेवा अपनाई ॥४४५॥
माता पिता भी चाहे सोई । जिस विधि भला पूत को होई ॥
एक से एक डरे पुनि लाजा । यहि विधि होय उभय का काजा ॥४४६॥

दोहा—जब तक शिक्षा लेइ सुत, शिक्षक को हरि जान ।
तैसे शिक्षक भी करे, जाने पूत समान ॥४४७॥
नहि अभद्र व्यवहार कभी, चेला सन मुख भाय ।
देखा देखी करे वह, मर्यादा मिटि जाय ॥४४८॥
याते सुनिये गुरु जनन, देश भार तव माथ ।
ऐसी चलिये चाल सब, चेला समझे नाथ ॥४४९॥
जैसे रोगी वैद्य का, करे सदा विश्वास ।
औषधि के बल वैद्य ने, नाशे रोग सुभाष ॥४५०॥
उचित मूल्य वह लेत है, तबहीं वैद्य सुजान ।
नातर है यमराज वह, नहि पूरा जब ज्ञान ॥४५१॥
सब विधि पूरा चाहिये, तब होवे कल्यान ।
देश हेतु वह करे सदा, महा परिश्रम मान ॥४५२॥
तब ताको गुरु जानिये, देशभक्त जो होय ।
पूरण रीती भक्ति कर, वैर करो नहि कोय ॥४५३॥

चौपाई

सेवक से सेवा जब लीजै । उचित शुल्क जन वाको दीजै ॥
पुत्र समान सेवक भी होई । सदा कमाय खिलावे सोई ॥४५४॥

राजा परजा जिमि व्यवहारा। जानै स्वामी पुत्र हमारा॥
स्वारथ पूर्ति दुनों की होई। तभी प्रेम निबहे नर लोई॥४५५॥
एक हेतु एक करि काजा। तब सुस्थिर नर रहे समाजा॥
नातरु नाश होय सब भाई। सुख सम्पति सब जाय बिलाई॥४५६॥
जिनका जबन धर्म सो करई। निज निज धर्म सकल सुख लहई॥
माता पिता पुत्र वर नारी। चेला गुरू दास महिधारी॥४५७॥
क्रेता पुनि विक्रेता स्वामी। मुखिया नाथ बसे जो ग्रामी॥
रोगी वद्द संत गृहधारी। और सकल जो जो व्यवहारी॥४५८॥
निज निज कर्म करै मन लाई। तब होवे सब केर भलाई॥
करे सकल साचा व्यवहारा। झूठा तजे सकल संसारा॥४५९॥
बालक नारि सतावे नाहीं। सब अधिकार इन्हीं के माहीं॥
पुरुष दोष नारी से भारी। नहिं बलजोरी करे विचारी॥४६०॥
श्रेष्ठ नारि नर ते जन जानो। बात उचित सब वाकी मानो॥
नहिं दबाव दीजै बिनु काजा। दूषित कृत पर करिये लाजा॥४६१॥
निज बलहीन रहे जो अपने। नाना दाष नारि में कथने॥४६२॥

दोहा—नारि विचारी क्या करे, तुम्हरो मन नहि मान।
अपने को तुम कहत नहि, निन्दा नारी ठान॥४६३॥

चौपाई

एक दोष दोषी नहिं कोई। उभय दोष ते तब कुछ होई॥
याते दोष दुनों को दीजै। पुरुष दोष अधिकै कहि दीजै॥४६४॥
काम बासना ते कृत नाशे। याते न्यून काम परकाशे॥
यहि विधि लोभ आदि सब बाता। करे कामना दोषो ताता॥४६५॥

जड़ में दोष कबहुँ नहिं होवे। दोष कामना में सब पोवे ॥
सब पर ध्यान देइ जो भाई। बूरा भला विचारे जाई ॥४६६॥
यहि विधि काम करे गृह बासी। सब विकार अपनो वह नासी ॥
दूजा व्याह न रोको भाई। दोष अमित नहिं होय भलाई ॥४६७॥

दोहा—ऊपर से तुम रोकते, भीतर है बड़ आस।
ताते अच्छा है नहीं, जो प्रथमे मैं भाष ॥४६८॥

चौपाई

देश काल की बात विचारे। जब जैसा तैसा मत धारे ॥
केवल धर्म सनातन जोई। उस को भजे महा सुख होई ॥४६९॥
और सकल परिवर्तनशीला। माया नटी केर सब लीला ॥
यह विचारि रहिये गृह माँहीं। धर्म सनातन तजिये नाहीं ॥४७०॥
यह अनादि नहिं विरचित कोई। नहीं कल्पना औरन होई ॥
सदा एक रस परम अखंडित। यह मम वचन समुझिहैं पंडित ॥४७१॥
नहिं शंका सुनिये मम भाई। धर्म सनातन सब सुखदाई ॥
परम उदार दोष सब होना। दया क्षमा संतोष प्रवीना ॥४७२॥
धीरज सत्य अहिंसा मैत्री। राग द्वेष नहिं संध्या गायत्री ॥
सर्व समुन्नति शील विवेका। न्याय भाव देखे सब एका ॥४७३॥
ऊँच नीच नहिं मानव माँहीं। एक समान सकल जग आहीं ॥
पर का दुख आपन अस होई। नहीं कष्ट जग दीजै कोई ॥४७४॥
सब का हित चिन्तन नित करई। धर्म सनातन याको कहई ॥
ब्रह्मचर्य नारी नर पाले। भूलेहुँ प्राण न कबहीं घाले ॥४७५॥

निन्दा चोरी पैशुन नाहीं । मदिरा मांस न जाके माँहीं ॥
विश्वाघात न मन कुटिलाई । धर्म सनातन याको गाई ॥४७६॥
जाति पांति नहिं करे विचारा । मानव एक सकल संसारा ॥
पर उपकार वचन मन काया । धर्म सनातन यही बताया ॥४७७॥
निन्दा अस्तुति करै न काना । गुरु जन सन नहिं वागे ज्ञाना ॥
बड़ सन लाज करे जन जोई । गुरुजन का आदर कर सोई ॥४७८॥
सनमुख नहिं अभद्र व्यवहारा । शील पुनः संकोच विचारा ॥
नारि धर्म पतिवर्ता करई । धर्म सनातन याको कहई ॥४७९॥
जासन रहे वहीं मन राती । पाले आज्ञा वह दिनराती ॥
साचा करे सकल व्यवहारा । क्रय विक्रय जेने संसारा ॥४८०॥
रूढ़िवाद हठ धर्म न जामें । इन्द्रिय दमन शमन दुख तामें ॥
इसको कहत अनादि सुग्यानी । धर्म सनातन याको जानी ॥४८१॥
पालन करो यही सुखकारा । रंचक नहिं जिस माँहि विकारा ॥
याको निन्दक कछु नहिं जानो । केवल वह बकवास बखानो ॥४८२॥
बुद्धि दोष है वामें भारी । बिना विवेक महा संसारी ॥
यहि विरोध बोले जो भाई । महा निशाचर जानो गाई ॥४८३॥
वह नहिं मानव आदिम प्राणी । बिना विकाश महा अज्ञानी ॥
मनमाना सब तत् व्यवहारा । बोलन नाहीं बिना विचारा ॥४८४॥
पंच ज्ञान गो हीन जो प्राणी । शब्द स्पर्श रूप क्या जानी ॥
रहित रसज्ञा जो जग माहीं । रस का स्वाद सो जानत नाहीं ॥४८५॥
यहि विधि बुधि विवेक जो हीना । धर्म स्वरूप न जानहिं दीना ॥
बोलहिं वैन महा दुखदाई । धर्मिन को वह महा कसाई ॥४८६॥

सकल विचार अनिश्चित होई। पंथ अनिश्चित जानो सोई॥
धम नहीं धोखा कर नामा। महा विकाश शान्ति सुख तामा॥४८७॥
धा धारण रक्षाऽर्थक जानो। लोक प्रलोक उभय सुख मानो॥
सब विधि से सुख मारग खोले। धर्म सनातन मुनि जन बोले॥४८८॥
धर्माऽर्थ है गूढ़ अति भाई। सूक्षम बुद्धि सोइ जन पाई॥४८६॥

दोहा—मनमाना जो ग्रन्थ पढ़े, सतसंगति नहि जान।
सो नर धर्म न जानि हैं, मिथ्या भर्म भुलान॥४९०॥
याते संगति सन्त की, राम भजन कर जोय।
सो जाने धर्मार्थ सब, ताको सब सुख होय॥४६१॥
पुरुषारथ बिनु सुख नहीं, पुरुषारथ बिनु हान।
पुरुषारथहीं दैव है, कर पुरुषार्थ महान॥४९२॥
दैव भरोषा जो रहे, सो मूरख भगवान॥
बिनु पुरुषारथ दैव नहीं, मुनिवर वेद बखान॥४६३॥
दैव दैव कह असकती, मति विचार से हान।
पुरुषारथ नर कीजिये, बनो कभी मत दीन॥४६४॥

चौपाई

दुराग्राह हठ धर्म न कीजै। धर्म जाति की रक्षा कीजै॥
भ्रूण हत्या नहिं करिये भाई। ताकी रक्षा करो बनाई॥४६५॥
मन को रोकि नियोजन कीजै। नहिं स्नायु काटि दुख दीजै॥
एक पिता का सब संसारा। नारि पुरुष सब एक विचारा॥४९६॥
जो भ्रान्ती बस किञ्चित होई। तामे दोष न जानो कोई॥
दोष महा पुनि वेद बखाना। ताका मर्म मुनीशन जाना॥४९७॥

बहुत पुरुष नारी संयोगा। वीर्य पात बहु होय वियोगा ॥४९८॥
विना रेत कछु काम न होई। सकल ज्ञान शुक्र में सोई ॥४९९॥
रेत अभाव रोग तन भारी। नहिं रक्षा करि सकैं मुरारी ॥
याते रक्षा रेतहिं कीजै। सुख अपार तुम जग में लीजै ॥५००॥
शून्य दीप तम तमी महाना। नहिं पावे वस्तू घर नाना ॥
दीपक होय सहज सब पावे। बुद्धि विकाश बहुत जग गावे ॥५०१॥

याते देह भवन के माँहीं। दीपक महा वीर्य सो आहिं ॥
शान्ति सदा नान्त विज्ञाना। राखे विन्दु पाव मतिमाना ॥५०२॥
विन्दु प्रभाव काल नहिं खाई। जीते अमर लोक में जाई ॥
निज इच्छा बस रहे शरीरा। यह भाषे गुरुदेव कबीरा ॥५०३॥

याते नारि पुरुष बहु दोषा। अति प्रसंग नहिं होवे मोषा ॥
एक पुरुष होवे इक नारी। बहुत संग नहिं हो व्यभिचारी ॥५०४॥
जो चाहो आपन कल्याना। रक्षण रेत करो मतिमाना ॥
बहुत पात से काल अधीना। ताते दोष कहा सुप्रवीना ॥५०५॥

जो अपराध भ्रान्ति बस होई। प्राश्चित करिये ताको सोई ॥
ब्रह्मचर्य सम और न जाने। महा बरत पालन में माने ॥५०६॥
करे दमन इन्द्रिन का नितहीं। नहिं कुपंथ में जावे कबही ॥
दूषित अन्न भोज नहिं पावे। जाते वीर्य नाश हो जावे ॥५०७॥
सदा स्वच्छ निर्मल जल पाना। जाते होय न रख्रक ज्ञाना ॥
संयम नियम करे मन लाई। दूषित कर्म तजो रे भाई ॥५०८॥
सकल सिखावन सुन्दर दीजै। देह पात हो सो यश लीजै ॥
इस विधि करे सकल व्यवहारा। कुल परिवार में वरतनिहारा ॥५०९॥

तब गुरु शरण जाय सो प्राणी । तारन तरन शमन दुख दानी ॥
जो गृह सम्पति राशि महाना । करे न रञ्चक तद अभिमाना ॥५१०॥
निर्मद रहे सदा मल हीना । छल प्रपञ्च कपटादि विहीना ॥
जेते नशा अमल दुर्व्यसना । करे न भूलेहुँ ताकर अशना ॥५११॥
दीन-भाव गुरुदेव समाना । पूजा करे महा मुनि जाना ॥
नाम तासु सुमिरन नित करई । गुरु वाणी हिरदय महँ धरई ॥५१२।
करि अनुराग सदा मन माहीं । हरि समान औरो जग नाहीं ॥५१३॥

हरिगीतिका छन्द

नहिं जानिये गुरुदेव सम, त्रिभुवन पती करि मानहीं ।
सो प्रेम नूतन निति करे, जो ज्ञान भूमा जानहीं ॥
जैसे सदा मधुकर रहे, तत् सुमन में अति मन बसा ।
सो कहत सन्त पुकारि के, यहि विधि करे तब भ्रम नशा॥५१४॥

सोरठा

नाशत भरम कुघात, गुरु वाणी दिनकर सम ।
पुनः कहे सब बात, पूज्य देव गुरुराय से ॥५१५॥

चौपाई

हे हरि कहौं सकल दुख अपना । जिस कारण सुख मिले न सपना ॥
काम क्रोध मद लोभ उपाधी । तेहि बस पाप पुञ्ज जग व्याधी ॥५१६॥
कारण भय सुस्थिर नहिं कोई । क्रोध अनल दुख दारुण होई ॥
दहत सदा हम क्रोध कृशानू । भोगत महा कष्ट भगवानू ॥५१७॥
मार अन्ध नहिं सूझत काहू । विषय भोग मन भोगन चाहू ॥
ज्ञान ध्यान सब भग में भागे । सुधा समान नारि जब लागे ॥५१८॥

सो देखत मन सकल भुलाना। नहिं भगवान देव जग आना॥
भूले मात पिता सब भाई। जब वामा ने रूप देखाई॥५१९॥
कर्म धर्म वैराग्य भुलाना। पुण्य कृत्य नहिं औरो जाना॥
निशदिन चाह और नहिं कोई। नारि प्रसन्न रहे मन सोई॥५२०॥
धन पौरुष का अन्त सु कीन्हा। शुक्र खैंचि सब युवती लीन्हा॥
महा भयंकर केहरि तुण्डा। सभी चबायहु कर पद मुण्डा॥५२१॥
महा कूप अति घोर कठोरा। खसे ताहि खाये असु मोरा॥
तेहि हितु पाप कर्म नहि जाना। जो इच्छा सो करत अजाना॥५२२॥
जिमि कोउ तंत्र मारि के मोहे। पुनि उन्मत्त सुरापी कोहे॥
हाटक पाथ लोग बौराया। तेहि रूपे यह तुच्छ बताया॥५२३॥
सौ करोर याते अधिकाई। योषित रूप अहा रे भाई॥
अज अजाद मृड्डी भगवाना। पंडित जन सब देखि भुलाना॥५२४॥
नयन बाण जब युवती मारे। बचे न प्राण त्वरित सो हारे॥
कामिनि रूप काल धरि आया। भक्षण करे न रक्षक दाया॥५२५॥
सात दीप नव खण्डक माँहीं। इससे कौन बचा कहुँ नाही॥
रेल टरक मोटर बचि जाई। फट फटवा रिक्सा से भाई॥५२६॥
विजुली तार बंम से बाचे। जल अकाश बाहन बिनु नाचे॥
नारि नयन ब चे नहिं चोटा। सब अस्त्रन से यह अति खोटा॥५२७॥
टपे नदी लाँघे नद नाहा। भग लघु रूप न लाँघे काहा॥
सातो सागर बिनु श्रम पारा। पोत सहित बूड़े भग धारा॥५२८॥
खसे ताहि डूबे मरि जाई। जन्म अनेक महा दुखदाई॥
मोक्ष हीन भग लम्पट जोई। रौरव आदि नरक तेहि होई॥५२९॥

तेहि जाया काया जन नाशे। पूत सुना होई गर फाँसे॥
कौनहुँ विधि नहिं छूटे कोई। तेहि संगे नाना दुख होई॥५३०॥
रूप सजाय नयन चमकावे। जहँ तहँ लोगन को भरमावे॥
वेश्यारूप न याको लाजा। बड़ बड़ मुनिन बिगारत काजा॥५३१॥
यासे बचे मुक्ति सो पावे। वेद पुराण संत सब गावे॥
नारि पुरुष विषइन यह बाता। केवल काम वासना राता॥५३२॥
नारि दोष जस भाषेउ भाई। पुरुष दोष उतनहिं मुनि गाई॥
सतो नारि सत पुरुष न दोषा। केवल काम विषयरत कोषा॥५३३॥
याते बुद्धिमान नर नारी। समुझहिं वचन हमार बिचारी॥
उन्हें दोष कबहूँ नहिं दीजै। मात पिता सम सेवा कीजै॥५३४॥
निन्दनीय निन्दा जग होई। नहिं अनिन्द निन्दे जग कोई॥
दोष कष्ट बहु सन्तन भाषे। भय विस्तार नहीं हम आखे॥५३५॥
मदहिं मान मग यम पुर जाना। नाना त्रास सहे भगवाना॥
तेहि बस योनि अनेकन पावा। भरमि भरमि चौरासी जावा।५३६॥
लोभ लागि कीन्हो बड़ पापा। कारन सोइ तपत तिहूँ तापा॥
मात पिता भाई गुरु संगा। लोभ बसी कीन्हा बहु दंगा॥५३७॥
दम्भ कपट बहु झूठ पसारी। हुआ तासु कर मैं व्यापारी॥
जग परपंच जीव कहँ घेरे। सतगुरु शरण भूलि नहिं हेरे।५३८॥
जन्म मरण जग बारहिं बारा। कारण यह उपरोक्त अधारा॥
जिन पर दया करो तुम देवा। तब वह जीव लहे जग भेवा॥५३९॥
जन्म जन्म के पाप नशावे। सद्गुरु शरण जीव जब आवे॥५४०॥
गृह आदिक नाना जञ्जाला। शमन करे गुरु दीनदयाला॥५४१॥
नाम कृपाल कुजाल नशाई। महा घोर भव-फंद छुड़ाई॥५४२॥

हरिगीतिका छन्द

संसार दुख से मुक्त करि, परखावते निज रूप को।
कामादि शोक पिशाच दल, नाशे सकल तम कूप को॥
सुविवेक ज्ञान उदारता, यम नियम अष्ट बतावहीं।
सो कीजिये व्यवहार वह, मुनि वेद संत जतावहीं॥५४३॥

संसार जानु असार यह, नहिं सार कछु नर दीशता।
धारा यथा जल की रहे, सुस्थिर नहीं निति भागता॥
इस का विलक्षण रूप है, नहिं कथन में कछु आवता।
यह जा रहा है शून्य में, पुनि शून्यहीं से आवता॥५४४॥

यह दृश्य चंचल रूप है, सुस्थिर नहीं क्षण एक भी।
मूरख सदा सुस्थिर कहे, नहिं ज्ञान सत्य विवेक भी॥
नहिं सत्य चंचलता सदा, सुविवेक से जब देखिये।
इस हेतु इस संसार को, नर वंचनामय पेखिये॥५४५॥

इस को तियागो वह गहो, शून्याशून्य विभिन्न है।
रहता सतत इक रूप में, होता न कबहीं खिन्न है॥
तिसके लिये गुरु शरण जा, जो भेद सब का जान रे।
अन्यत्र नहिं भटको कभी, यह बात मेरी मान रे॥५४६॥

पूजा करो विधि रीति से, जो कुछ तुम्हारे होय रे।
दासी सुपुत्र समेत सब, निज देह भी जो कोय रे॥
कोशादि धन जो है सभी, गुरु को चढ़ावो भेट में।
निष्कपट हो आगे धरो, नहिं कपट राखो पेट में॥५४७॥

मन मुदित हो गुरुदेव तब, सब भेद-भाव मिटावई ।
त्यागी नहीं लेता कभी, व्यवहार विज्ञ बतावई ॥

मुक्तमाला छन्द

गुरु त्यागी नहिं लेत कछु रे , मन की चाहना शिष्य करी !
शिष्यन को यह धर्म सदा है, गुरु वचनन उपकार धरी ॥
मोक्ष देहिं प्रभु जीवन को सो, बन्दीछोर कबीर हरी ।
सुमिरन करले जीव जगत के , जग प्रपंच से होत बरी ।।५४८॥

दोहा—चारि पदारथ पावई , जाके शरधा होय ।
नारि पुरुष या शूद्र हो, मानव में जो कोय ॥५४९॥
गुरु पूरा शिष योग्य हो, तर्कवान अवधान ।
कहे कठिन समुझे वह, दोनों एक समान ॥५५०॥
इस विधि युग संयोग को, परमेष्ठी करि पूर ।
तब होवे कल्यान सदा , रहे न संशय कूर ॥५५१॥
गुरु चेला लक्षण कहा , और अनेकन बात ।
अब जो शंका होय कछु, कहो मोहि सन तात ।५५२॥
तव अधिकारी जानि के, सब उत्तर मैं देव ।
शंका रूपी शल्य को, काढ़ि हिया से लेव ॥५५३॥

चौपाई

जयति जयति प्रभु दीन-दयाला । अस कहि बोले सुरतिगोपाला ॥
नाथ आज किरतारथ कीन्हा तव प्रसाद संशय सब छीना ॥५५४॥
सर्व भुवन में साहब हंसा । किस विधि करूँ नाथ परसंसा ॥
मैं पामर जग जीव अजाना । नहिं महिमा जाना भगवाना ॥५५५॥

मात्रिक द्रुतविलम्वित छन्द

नित नमों तुम देव का हम, भापते सब भेव को त्वम।
गुरुदेव देव कबीर हो, मति धीर अति गम्भीर हो ॥५५६॥
महिमा महा है आप की, सुप्रमाण कैसे कौन की।
करुणा करो जन ऊपरे, करुणामयी करुणा करो ॥५५७॥
तव पाद रज बन्दन करूँ, पद ऊपरे मस्तक धरूँ।
मैं दीन हीन मलीन हूँ, नहिं चरण तव लवलीन हूँ ॥५५८॥
सत कर्म वंचित जानिये, पापी महा प्रभु मानिये।
अभिमान मेरा अति रहा, तव शरण में अब जा रहा ॥५५९॥
माता बहुत समुझावती, सब ज्ञान ध्यान बतावती।
विद्या निधी हम मानता, ताते अहंता आनता ॥५६०॥
नहिं जानता कोइ और है, देखा सुना सब ठौर है।
इस भाँति दोष अनन्त था, कुञ्जर यथा मनमत्त था ॥५६१॥
तव ज्ञान रूप महावंता, ममता सकल सुढहावता।
बोझा गया शिर भार से, मुझ को कियो भव पार से ॥५६२॥
परखाय पारख ज्ञान को, गुरु दूर करि अज्ञान को।
पारस तुम्हें में अन्तरा, कुधातु वह कञ्चन करा ॥५६३॥
प्रभु आप भृंग महान हो, करि लेत आप समान हो।
जानत सकल संसार है, शुभ सार शब्द प्रचार है ॥५६४॥
तुम ज्ञान रूप अनूप हो, सब ज्ञानि जन के भूप हो।
निष्पक्ष वक्ता आप हैं, हरते सभी भव ताप हैं ॥५६५॥

रवि सोम सम यश आप का, त्रय लोक पावन नाम का ।
भजते तुम्हें जो सन्त हैं, दुख रूप जग से अन्त हैं ॥५६६॥
रहते सुखी संसार में, नहिं डूबते भव धार में ।
धन धाम सो नर पावते, निति नाम को जो गावते ॥५६७॥
यमदूत देखि के लाजई, तिन पास से वह भाजई ।
आनन्द अति सुप्रसन्न हों, नहिं ताप जग यमजन्य हो ॥५६८॥
दाया तुम्हारी हे प्रभो, करते सदा जिस पर विभो ।
सुन्दर छवी तव मार सी, मन मोहनी मन हारसी ॥५६९॥
सब देखि के जन मोहहीं, तव ध्यान को निति जोहहीं ।
सुप्रकाश तेज दिवाकरा, अज्ञान तम जग का हरा ॥५७०॥
सन्तत सुखी सुखकारका । गुरुदेव परम उदारका ।
उल्लूक पापी जो जगा, निन्दा करन में सो लगा ॥५७१॥
तव तेज वह नहिं सह सके, बोले यथा जग नर जके ।
अज्ञान निशि का प्रेमिका, क्या जानई रवि मर्मिका ॥५७२॥
याते प्रभाकर दूषई, पापी महा सो बीषई ।
दोषी कुटिल चण्डाल सम, घेरे निशा अज्ञान तम ॥५७३॥
उपकार तव नहि जानता, याते अरी करि मानता ।
यमदूत तिसको मारहीं, दक्षिण नदी में डारहीं ॥५७४॥
नहिं छोड़ते तिन प्राण को, निन्दक सुनीच नदान को ।
जग दोष सब नहिं पोचता, जग जीव बन्धन मोचता ॥५७५॥
ऐसे परम गुरुदेव हैं, ताते करत हम सेव हैं ।
जन जानि के रक्षा करत, नहिं दोष आरत का धरत ॥५७६॥

याते करूँ नित बन्दगी, मेटे महा भव गंदगी ॥५७७॥

चौपाई

कीन्ह दया जन जानि दयाला। महा मोह नाशेउ ततकाला।
सकल बात हरि कहा बुझाई। जाते जीव सुगति सब पाई ॥५७८॥
ज्ञान अज्ञान शिष्य गुरु लक्षण। कह्यो नाथ समुझाय ततक्षण।
जिस विधि भरम भयो मम स्वामी। कहूँ सकल अब अन्तर्यामी ॥५७९॥
रज्जु सरीसृपा की लेखा। रज्जुका कहे व्याल मैं देखा।
जैसे सीप कम्पनिधि माहीं। बिनु परिचय कहँ मोती आहीं ॥५८०॥

दोहा—तैसहि संशय मोहि कहँ, गरसेउ सदा दयाल।
सो सब दाया आप की, गयो सकल जनपाल ॥५८१॥

चौपाई

मम संशय इमि क्षपा समाना। कामादिक स्तैन महाना॥
मूसहिं सम्पति ज्ञान विवेका। सदा दुखी संताप अनेका ॥५८२॥
दिवस ज्ञान तव ब्रह्म प्रकाशा। सकल मारदल चोरन नाशा॥
सुखी भयो रितुराज समाना। पनगा ज्ञान ध्यान दल नाना ॥५८३॥
मन प्रसन्न निःसंशय होई। सकल अविद्या काज विगोई ॥५८४॥

हरिगीतिका छन्द

अब नष्ट माया वर्ग सब, आनन्द में निति राजता।
जो कहा तुम शरवण किया, नहिं कहन में कछु आवता॥
मम एक संशय और है, सो भी सुनो जन पाल हो।
करि के दया कहिये विभो, तुम दीन-बन्धु दयाल हो ॥५८५॥

* इति गृही-शिष्य लक्षण वर्णन
पञ्चदश अध्याय समाप्त *

❀ कबीराय नमः ❀

अष्टम सोपान

षोडश अध्याय

वाम पथ वर्णन

हरिगीतिका छन्द

जो आप भाषे वाम मत, गुरुवा बहुत करवावते ।
सो कौल मत की दूसरा, जो वक्र कर्म बतावते ॥
यज्ञादि की कोइ अन्य है, यामे मुझे शंका हुई ।
ताते कहो यह भेद अब, जो पूछ मेरी है नई ॥५८६॥
बन्दौं चरण रज आप का, गुरुदेव सत्य सुधाकरा ।
इस दीन हीन मलीन पर, करुणा करो भव मंदरा ॥
तुम किया उत्तम प्रश्न अति, सुन्दर महा मुझ को लगा ।
पावन सदा तुम पात्र हो, अनुराग वर तुझको जगा ॥५८७॥
संसार माया मोह जो, तव पास से सबहीं भगा ।
व्यापे न दुर्गम काल जग, मम वचन तेरे उर लगा ॥
विचरो सदा इस अवनि पर, जैसे जलज जल बीच में ।
परशत नहीं बारी विषय, रहता कमल नित कीच में ॥५८८॥
तैसे तुझे वरदान मम, इस भुवन में निर्द्वन्द्व हो ।
यह बात मेरी मान लो, परिहो न यम के फन्द हो ॥

अब सुनहु कान लगाइ के, शंका तुम्हारो भंजनम् ।
जो वाम कर्मी जगत में, सब जीव को नित गंजनम् ॥५८६॥
चहुँ ओर जिसकी धाक है, तद् ज्ञान को सुन लीजिये ।
जग में महा त्रय दोष सम, सो पंथ त्याग करीजिये ॥
सो काल प्रकटित जीव को, भक्षण करे मृत्यू महा ।
धरि धीमर महा जन मीन को, सद्ग्रन्थ सन्तन ने कहा ॥५९०॥
संसार के वह कुञ्ज वन, जग जीव सब अरुझे रहें ।
सद् पंथ नहिं पाते कभी, दारुण महा भव दुख सहें ॥
जिस भाँति विजुली तार से, प्राणी फँसे बचते नहीं ।
निष्प्राण करि अणुअस्त्र जिमि, तिनसे अधिक गुरुवा कहीं॥५९१॥
नर मेघ वेश्या सेवते, मद माँस भक्षण करत जो ।
उसको कौल मत जानिये, नित वाम कर्महिं करत जो ॥
करि सिद्ध विद्या नीच सो, च्युति में रसज्ञा डारि के ।
देते कहीं बलिदान को, बालक किसी का मारि के ॥५९२॥
भैरव भवानी भूत को, सुपिशाच तुरुष्कन पूजहीं ।
पानी अपावन मूत निज, पापी सदा सो पीवहीं ॥
गृह भेदिका मंजारि को, खरगोस जम्बुक भक्षहीं ।
नर खोपड़ी कर में लिये, खाते सतत निर्भवहीं ॥५९३॥
निर्जीव जीवित सर्व को, निशचर यथा वह जानिये ।
जो जीव का घातक बने, रक्षक नहीं सो मानिये ॥
पुनि कुकुट मत्स्य विभाग को, कुपचार करता देश में ।
लघु जीव की हिंसा करत, पापी महा सद् वेश में ॥५९४॥

अप धर्म जिसको मानते, पहले मुनी नरपाल भी।
वह तो बना अब धर्म है, जो मानते महिपाल भी॥
इस भाँति दूषित कर्म बहु, करते अशुद्ध पिशाच सम।
जीवत सदा नरकी अधम, मरणान्त घींचे दूतयम॥५९५॥
पुनि पुनि मरे जन्मे जगत, नहि मुक्ति सो पाते कदा।
दश मास जननी गर्भ में, मल कोश में रहते सदा॥
ऐसा नरक वह नीच को, विस्मृत्ति जो गुरुज्ञान से।
तरना कठिन भवसिन्धु से, जग में रहे अभिमान से॥५९६॥

दोहा—सो जीवन को कष्ट बहु, सपनेहुँ नहि विशराम।
वेणु वंश सम दहत सदा, तजेउ मूढ़ श्री राम॥५९७॥

चौपाई

सो शठ सुनो तात भव रोगा। दुख आकर मय करत वियोगा॥५९८॥
वेद पुराण सन्त मत त्यागी। मिथ्या भाषण करहिं अभागी॥५९९॥
निज स्वारथ हित पर उपदेशा। वायस कर्मी पय गहि वेशा॥
दिक्षा देहिं भवन सब जाई। नाटक चाटक जीव भुलाई॥६००॥
निज मेषी जिमि मूड़े पाला। तिमि यह मूड़ि जीव जग घाला॥
काल चक्र बस भर्म समाना। तेहि कारण यम हाथ विकाना॥६०१॥
फूँकहिं कान बनावहिं चेला। महा कुम्भ मन्दाकिन मेला॥
मंत्र प्रदान भेष दक्षिण की। होय चतुर तो कहहिं शम्भु की॥६०२॥
पुनि मतिमान और जो कोई। महा मंत्र एकोऽहं सोई॥
यहि विधि देत सकल को दीच्छा। परम पुनीत मंत्र की शीच्छा॥६०३॥

नाना पंथ वेद विधि हीना । नित प्रकटत जग माहिं नवीना ॥
ज्ञान ध्यान कुछ पता न लागे । तेहि पाछे बहु जाहिं अभागे ॥६०४॥
निज समाज वर्धक चतुराई । जो आवे तेहि शिष्य बनाई ॥
जो चेला हो चतुर सुजाना । मंत्र अर्थ चाहे वह जाना ॥६०५॥

दोहा—मंत्र अर्थ का भेद गुरु, गुप्त रहस फल भाष ।
उग्र शैलजा शौरिकी, टीका सरल सु आख ॥६०६॥

चौपाई

बचन श्रवण करि शिष्यन केरी । कहा बुझाय कौल मत सेरी ॥
ताकी टीका करहिं बनाई । तीनि प्रकार कु अर्थ लगाई ॥६०७॥
मंत्र अर्थ सुनिये सब कोई । जाते संशय जाय विगोई ॥
मीन मांस जो भक्षण करई । शिव देवी का मंतर धरई ॥६०८॥
जो होवे कामी कल्याना । तो माने मम बचन प्रमाना ॥
यामे दोष न रञ्चक भाई । वाम कथा सब कहैं बुझाई ॥६०९॥
यह जलसेम नियम से सेवो । जो मागे ताको भी देवो ॥
पुनि उसका फल तुम सुनि लीजे । गुप्त बात अन्तर में दीजै ॥
रेहू सिधरी जो जन खाई । स्वर्ग लोक में पहुँचे जाई ॥
अजया सुत से कीजै श्राधा । शिव प्रसीद होहिं कट बाधा ॥६१०॥
प्रति माँसन में हों प्रति रंगा । तब होवे पापन का भंगा ॥
छाग बुक्क सो अति बलवाना । सो खाये देवी पुर जाना ॥
नहिं विश्वास होय जब तोहीं । देहु दक्षिणा चेला मोहीं ॥
मूड़ी काटि आप ले लेहीं । और भाग चेलन को देहीं ॥६११॥

दुमका छन्द

देहिं भाग शिष्य को, जुगल उठाय हाथसे।
महराज भ्रम टारिके, मुझे किये सु नाथ से ॥
खुसी भयो सब भक्त ने, गुरुहिं नवावहिं माथ हो।
तेरे सुमुख की बात जो, रूरी लगे सु गाथ हो ॥६१२॥

दोहा--इस विधि शिष्य सकल मिलि, गुरु का करहि बखान ॥
जय जय बोलहि लोग सब, करहि मांस का खान ॥६१३॥

चौपाई

नहिं शंका वंका सब भोंदू। नीच कर्म सब मिलि के चोदू ॥
सत्य शास्त्र नहिं सन्तन संगा। पढ़हिं न बीजक ज्ञान प्रसंगा ॥
साखी ग्रन्थ न हरि उपदेशा। भाव भक्ति नहिं उर परवेशा ॥
ताते भ्रष्ट बुद्धि सब केरी। महा नरक रौरव में गेरी ॥६१४॥
करि विश्वास मनहिं मन केरा। ज्ञानहीन मतिमन्द घनेरा ॥
बिना परीक्षा दीक्षा लेहीं। अन्ध कूप गिरहीं शठ तेही ॥
रोचक वाणी सुनहिं अभागे। तेहि कारण ठग पीछे लागे ॥
परलोकन की सुनि सुनि बाता। वंचक में मूरख मन राता ॥६१५॥
भोग अनेक सुनावहिं नोचा। कोटिन जोव नरक में घीचा ॥
अपने जाँहिं और लेइ जाँहीं। ऐसो लोग बहुत कलि माँहीं ॥
जेहि मारग सो पुरुषा भूले। सो शठ कीन्ह आप अनुकूले ॥
जो गुरु कहे सो माथे धरहीं। सत्यासत्य विचार न करहीं ॥६१६॥
कामी ज्ञान अन्ध गुरु वानी। नहिं कल्याण होय अति हानी ॥
दे उपदेश चोर भी भाई। राम कहो तब सब दुख जाई ॥६१७॥
तेहि वानी कोइ करे न पालन। साधु बैन हिरदै में धारन ॥६१८॥

दोहा--अहि मुख अमिरित हानि कर, ताहि पिये नहिं कोय।
तिमि गुरु वंचक जानिये, तिनसे लाभ न होय ॥६१९॥

चौपाई

पुनि हरि मंत्र का अर्थ सुनावहिं। महाकठिन जग ताहि बतावहिं॥
संयम नियम याहि में भाई। धर्म अहिंसा कहा बुझाई ॥६२०॥
शौच कर्म शुभ जग में जेते। कहें बुझाय सबनते तेते॥
ताते यह अतिसय कठिनाई। नियम कठोर पालि नहिं जाई ॥६२१॥
यामे मोक्ष एक नहिं भोगा। ताहिं भजो जो युग संयोगा॥
मोक्षऽरु भोग जहाँ इक संगा। ताकर सेवन करो अभंगा ॥६२२॥
सब से श्रेष्ठ उभय की सेवा। भूरी फल पावोगे मेवा॥
महमाया जो आदि भगवती। अज हरि हर की आदि कहवती॥६२३॥
तेहि सेवत उतरो भव पारा। सत्य वचन यह मानु हमारा॥
और सकल को मिथ्या जानो। देवी सम नहिं औरन मानों ॥६२४॥

हरिगीतिका छन्द

सर्जिका है अम्बिका, जो मातु है जग पालिनी।
इस विश्व बारी रूप की, सो जानि ले है मालिनी॥
सींचे फुलावे पौध को, सो जीव जग उपजावनी।
पालन करे पुनि नष्ट करि, ऐसी सबल अति पावनी ॥६२५॥
दोहा--जननी माता जगत को, महिमा अपरम्पार।
ज्ञान ध्यान सब देत हैं, जन को पार उतार ॥६२६॥

चौपाई

पूजन भली भाँति वह कीजै। छागी सुत को वलि सो दीजै॥
जाते मुदित होइ मह माया। दे वरदान मनहिं जो भाया ॥६२७॥

पंचमकार सदा चित दीजै। और बात नहिं शरवण कीजै॥
यहि विधि करहिं बहुत उपदेशा। काक वाक् सम वृत्ति अचेशा॥६२८॥
विष्णु भक्त को देख न चाहहि। मिले कबहुँ तो अनल में दाहहिं॥
जो कहुँ मिले शक्ति का भक्ता। साम समान होहिं अनुरक्ता॥६२५॥
विष्णु भक्त से करहिं लड़ाई। यह मतिमन्द भजे नहि माई॥
ताते यहि निगुरा करि जाना। यह नहिं अम्बा भक्त समाना॥६३०॥
यह तो कबहुँ माँस नहिं खाइ। नित्ति अशुद्ध तंत्रोक्ति बताई॥
एक दिवस जो माँस न खावे। इकइस दिवस अपूत बतावे॥६३१॥
यहि विधि करत सन्त की निन्दा। सुने न चाहत नाम गोविन्दा॥६३२॥

हरिगीतिका छन्द

निन्दा करत सत्पुरुष की, दुष्कर्म में सु प्रवीन हैं।
सन्तत सताते जीव को, अपराध शून्य जु दीन हैं॥
सब देखता हरि जानि ले, पीछे तु निश्चय जावगे।
जब जावगे पर लोक में, निज कर्म का फल पावगे॥६३३॥
उससे छिपा कछु है नहीं, वह गुप्त में सब जानता।
इस विश्व का चक्षू सदा, वह ध्यान से सब देखता॥
इच्छा तुम्हारी कर सभी, तुम अन्त में दुख पावगे।
तरणी तनय के दूत सब, तुम को पकड़ि सब खाँयगे॥६३४॥
गोविन्द से तुम वैर करि, तद् भक्त को दुख देत हो।
मति हीन विषयी पामरा, तेहि हेतु सुधि तव लेत हो॥
ऊपर परेगी मार बहु, वह घींचि घाँचि के फारहीं।
बहु काल के उपरान्त में, रौरव नरक में डारहीं॥६३५॥

दोहा—घीचि घाँचि के मारहीं, यमराजा के दूत।
शिव काली के नाम पर, जो काटहिं अजया पूत ॥६३६॥
यामें दोष न शक्ति कपर्दहिं, उभय सदा निर्दोष सुपरदहिं।
शिव सर्वेश ज्ञान घन राशी, मुक्ति प्रदान करत वसि काशी॥६३७॥
परम अहिंसा सो सब पालक, सो किमि होहिं जीव जग घालक॥
शंकर वचन वेद में भाखा, हिंसक की निन्दा करि राखा॥६३८॥
गो प्राणी सब भक्षक जोई, जेष्ठ वेद कह निश्चर सोई॥
अश्व अजादि मारि मख करई, गो का अंग काटि जो धरई॥६३९॥
ताको मुग्ध अथर्वण भाषा, मारो पापी दोषी आखा॥
गाय बैल अज गज अरु वाजी, मेष मनुष भैषा को साजी॥६४०॥
एतत् प्राणी जो बध करई, सुख विहीन वह दुख में रहई॥
भूत मात्र का वध नहिं कीजै, यजुर्वेद की शिक्षा लीजै॥६४१॥
साम कहे सुनिये रे भाई, सब में व्यापक ब्रह्म बताई॥
ताते किसी को दुख नहिं दीजै, हिंसक संग न भूलेहुँ कीजै॥६४२॥
धर्म शास्त्र अरु दर्शन जोई, हिंसा करन कहा नहिं कोई॥
भारत नीति पुरानन नाना, हिंसा कर्म न एक बखाना॥६४३॥
तव पीड़ा जैसे नर होई, तैसे जानो पर में सोई॥
आप दुखी उपचार करावे, औरन को क्यों आप सतावे॥६४४॥
ज्ञानवान मानव हैं सोई, निज दुख सम औरन को होई॥
याते दुख नहिं किसी को दीजै, रक्षा होय तहाँ तक कीजै॥६४५॥
जालिन बात ध्यान नहिं धरिये, जो बहु जाल जगत में करिये॥
जो प्रमुख्य प्रथमें मुनि भाई, सो नामें बहु ग्रन्थ बनाई॥६४६॥

ऊँच नीच मनमानी वाणी, जाति पांति बहु लिखा बखानी ॥
जाते दुखी लोग बहु रहते, कर्म धर्म बहु भाँति बताते ॥६४७॥
निज स्वारथ हित सब व्यवहारा, पलल कर्म कीन्हा सुप्रचारा ॥
आप मारि औरन उपदेशा, जाते भ्रष्ट भयो सब देशा ॥६४८॥
नीच कर्म से जब सब भागहिं, वैदिक वानी सो नित वागहीं ॥
शब्द अर्थ करही मनमाना, जो मन होवे रचहिं विधाना ॥६४९॥
नाना ग्रन्थ मांस का रचिया, व्यास बशिष्ठ नाम लिखि रखिया ॥
भारद्वाज मुनि मनू पराशर, जैमिनि गौतम याग्यवल्क वर ॥६५०॥
निज ग्रन्थन में इनकर नामा, लिखे मूढ़ पापी अघ धामा ॥
बलि अनेक विधि रचेउ विधाना, होम यज्ञ हिंसा सुप्रधाना ॥६५१॥
वैदिक हिंसा हिंसा नाहीं, यहि विधि लिखा ग्रन्थ के माहीं ॥
इनका देवा हिंसक पापी, जा पर जीवन के कुल घाती ॥६५२॥
जो देवा खावे शठ मांसा, तिनसे कौन मुक्ति की आशा ॥
क्या मानव जैसे तव देवा, जाकी निशदिन करते सेवा ॥६५३॥
जन्मे मरे जगत में सोई, वाको ईश न कहिये कोई ॥
आप मारि हरि के हितु कहहीं, ऐसो लोग बहुत कलि अहहीं ॥६५४॥
पश्चिम दिशा धर्म के देवा, तिनकी होय मांस से सेवा ॥
सदा प्रचार करहिं शठ मांसा, कर्म धर्म शुभ ज्ञान विनाशा ॥६५५॥
कहहिं बात ऐसो अज्ञानी, खाओ मांस बनो तब ज्ञानी ॥
बुद्धि विकाश मांस से होई, सूक्षम अर्थ ज्ञान हो सोई ॥६५६॥
बिना मांस नहिं उन्नति जग की, धरो धारणा परभू मग की ॥
सो उन्नति कीन्हाँ बहु भाँती, हम मूरख रहलीं दिन राती ॥६५७॥

भारत देश सदा अज्ञानी, खाय न मांस दोष करि मानी ॥
अब नर छोड़ अंध विश्वासा, तीव्र बुद्धि हितु खावो मांसा ॥६५८॥
दूध दही घृत फल जो कोई, यहि समान शक्ति नहिं होई ॥
पशुको मारि मांस को खावो, ताका चर्म विदेश पठावे ॥६५९॥
जाते पेट भरे सो कीजै, अन्य देश की शिक्षा लीजै ॥
कर्म धर्म झूठा जग माहीं, सचिव प्रधान कहत अस आहीं ॥६६०॥
विना चर्म नहिं होवे कामा, पशु को मारि छुड़ावो चामा ॥
सकल काम यन्त्रन ते होई, महिषा वृषभ काम नहिं कोई ॥६६१॥
वन औषधि घृत खाओ भाई, गाय भैंस मरवावे जाई ॥
माँस विना रोगी सब कोई, निश्चर कर्म सिखाओ सोई ॥६६२॥
विना माँस के रोग न भागे, कुक्कुट अण्डा खाहु अभागे ।
मीन अर्क को सेवन कीजै, श्रेष्ठ बुद्धि हो जग में लीजै ॥६६३॥
साधु बुद्धि को त्यागो भाई, इनके मत नहिं होय भलाई ।
ये नहिं पढ़हि आंगली भाषा, याते दोष माँस में राखा ॥६६४॥
नहिं विदेश भरमण सो कीन्हा, नहिं शिक्षा ग्रन्थन की लीन्हा ।
सो उन्नति बहु कीन्ह अपारा, निज बस किया सकल संसारा ॥६६५॥
सो फल पिसित केर तुम जानहु, मेधा महा क्रव्य में मानहू ।
याते तरस त्याग नहि कीजै, सामिष भोजन में मन दीजै ॥६६६॥
देखो प्रथम आर्य सब खाते, दक्षिण मत ग्रन्थन में कहते ।
तुम भोला विश्वास करीजै, संत मता नहिं उर में लीजै ॥६६७॥
कण्ठी माला तोड़ि बहावो, मछरी मांस सुरा मन लावो ।
भोला गुरू त्याग अब दीजै, परम गुरू सुचिकित्सक कीजै ॥६६८॥

कहे चिकित्सक मानो सोई, परमपिता परमेश्वर होई।
विना मांस विज्ञान पढ़ाई, असफल होय विदेश बताई ॥६६६॥
जो शंका होवे मनमाहीं, शक्ति नाम संकल्प कराहीं।
तब नहिं दोष तुम्हें कछु लागे, मृत्यू काल पास सब भागे ॥६७०॥
संतत पुष्ट निरुज तन रहई, यवन गुरूण्ड वाम मत कहइ।
प्रति लोभन यहि भाँति दिखावे, जो नहिं खाय सो ताहि खिलावे ॥६७१॥
इस विधि भ्रष्टाचार प्रचारा, निशचर कर्म करे संसारा।
जिह्वा स्वारथ भयो कसाई, नाम लेहिं देवी का भाई।६७२॥
जो तुम कहो की देवी खावे, तो क्यों धरि नहिं आपे पावे।
वह समरथ सर्वज्ञ भवानो, बसे सर्व मँह जेते प्रानो ॥६७३॥
क्या वल हीन पकड़ि नहिं पावे, की तव हाथे रुचिकर आवे।
की देवा तुम्हारि परसादी, खाहिं सदा परमारथ वादी।६७४॥
यह सब बात कहो मम भाई, नहिं उत्तर अब चूप लगाई।
काल कर्म उपदेशत ज्ञाना, यमराजा घर देत ठिकाना ॥६७५॥
गाँधी कौन माँस को खाया, जो भारत स्वतंत्र करवाया।
पुनः बुद्ध जैनी मत त्यागी, परम अहिंसा मत सोपागी ॥६७६॥
तिनकी बुद्धि महा जग मानो, तीनि भाग बौद्धी जग जानो ॥६७७॥
दोहा—पुनः शंकराचार्य हैं, रामानुज सु बखान।
रामानन्द कबीर गुरु, नानक दरिया मान ॥६७८॥
व्यास वशिष्ठ सुकपिल मुनि, भीषम द्रोण समान।
और महर्षि अनेक हैं, रामकृष्ण मति मान ॥६७९॥

चौपाई

इन समान काकी जग बुद्धी। कीन्ह अनेकन जो जन शुद्धी॥
मानव बुद्धि वाह्य यह ज्ञाना। कहा विदेशिन परम निधाना॥६८०॥
ते सब दोष माँस में भाखे। महा शक्ति फल दूध में राखे॥
वाहि विचार मची जग हलचल। तिन समान नहिं पर में बुधि बल॥६८१॥
विशकर्मा त्वष्टा नल नीला शिल्प कर्म में परम सुशीला॥
तिन समान शिल्पी नहिं कोई। है न हुआ आगे नहिं होई॥६८२॥
व्यास बालमीक मुनि भाषा। ज्येष्ठ वेद त्वष्टा को राखा॥
यंत्र अनेक बनाया सोई। बिना तैल दामिनि चल सोई॥६८३॥
खोज अनेक किया सब लोका। दिव्य ज्ञान ते सकल विलोका॥
सब विज्ञान किया सु प्रकाशा। तिन का हुये सकल जग दासा॥६८४॥
काकी मांस कहो सो खाया। परम अहिंसा धर्म जताया॥
मांस खात रोगी बहु मरते। क्यों न चिकित्सक ताको धरते॥६८५॥
चारि अवस्था कितने प्राणी। मांस खात नहिं हो विज्ञानी॥
खाये मांस जो उन्नति होई। मानव ते उत्तम नहिं कोई॥६८६॥
पशु तो घास पात सब खावे। वीट कीट सब मीन जु पावे॥
मानव तो फल दुग्ध अहारा। अन्न औषधी पावनिहारा॥६८७॥
याते मल शव घास जु कहिये। इनते शक्ति दुग्ध में लहिये॥
फल अरु अन्न मिष्ठ पकवाना। उत्तम सब विधि सब जग जाना॥६८८॥
उत्तम से उत्तम गुण होई। पशु पक्षी जग जलचर जोई॥
सब विधि मानव माँस सु नीका। याते पशु पक्षी से ठीका॥६८९॥
इस को खान कहो क्यों नाहीं। सर्व सुलक्षण सब गुण माँहीं॥
काहें जलावत गाड़त याको। बिना मूल खाओ तुम ताको॥६९०॥

ऐसो दोष होय जब भाई। तब देवन संकल्प कराई॥
मुदित होहिं तब देवी देवा। मानव मांस ते कीजै सेवा॥६९१॥
तब उन्नति बाढ़े विज्ञाना। देश सुखी होवे विधि नाना॥
मानव अल्प होहिं जग माँहीं। राज विधान सफल हो जाहीं॥६९२॥
सहज होय परिवार नियोजन। द्रव्य व्यय नहि परे प्रयोजन॥
निज पूतन को मारि चढ़ावो। पर को पुत्र न भूलि सतावो॥६९३॥
अपने मरे सदा चिल्लावे। पर को बधे दया नहिं आवे॥
दीन जीव को काह सतावत। तिनको खात काह तुम पावत॥६९४॥
अन्न सु औषधि पय पकवाना। नाना फल विरचित भगवाना॥
स्वाद अनेक अमित गुण दायक। मानव हेतु रचा रघुनायक॥६९५॥
तामे क्यों न करत सन्तोषा। अबल जीव पर करते रोषा॥
मछली शुद्ध करे जल भाई। छागी सुत यक्ष्मा मिटाई॥६९६॥
छागी दूध महा फलदाता। तेहि पीवे नाना दुख जाता॥
मेषी लोम महा उपकारी। शीत काल में रक्षक भारी॥६९७॥
तेहि मल मूत्र बड़ा गुण दायी। डारे खेत अन्न उपजाई॥
कूक्कट कु कीड़ा को खावे। तुम्हरो रोग अनेक मिटावे॥६९८॥
खग चर वाणी अति सुखदाई। श्रवण सुखद जन मन बहलाई॥
औरो जीव जगत में जोई। नाना गुण मानव हित होई।६९९॥
मारन हेतु न रचा विधाता। सो पापी जो इन को खाता॥७००॥
दोहा--पशु अन ते प्रत्यक्ष सुख, दूध दही जो देत।
जंगल में बहु बास कर, तुम से कछु नहि लेत॥७०१॥

नर उपकारी सकल जन, परम पिता रचि दीन्ह ।
तुम मानव मतिमान हो, ताका दुख नहिं चीन्ह ॥७०२॥

चौपाई

अपने सबलन से दुख पावे। बचन हेतु बहु युक्ति बनावे ॥
चाह स्वतंत्र और से भाई। अपर जीव परतंत्र बनाई ॥७०३॥
अपने दुखी अहिंसा गावे। जब सबलन ते अति दुख पावे ॥
मानव की हिंसा नहिं कीजै। बधे ताहिं को फाँसो दीजै ॥७०४॥
पक्षपात यह देखो कैसा। निज रक्षा हितु खरचै पैसा ॥
निर्णय हीन दीखं बड़ ज्ञानी। पर के लिये सदा अज्ञानीं ॥७०५॥
आपन प्राण सदा नर रक्षहिं। अबल जीव को संतत भक्षहिं ॥७०६॥

हरिगीतिका छन्द

पर जीव को खाते सदा, निर्बुद्धि नाहिं विवेक है।
अधिकार रहने के लिये, संसार में यह टेक है॥
सब का जगत यह जानिये, अधिकार सम सब जीव को।
सब भोगते निज भोग को, जीने सकल दो जीव को ॥७०७॥

दोहा—नहिं अधिकारं तुम्हार कछु, अपरन को दुख धाम।
धोखा ज्ञान न बोलिये, देखत है सब राम ॥७०८॥

जग समक्ष परमारथ गावहिं। निज स्वारथ का कर्म करावहिं॥
पशु नहिं पशु मानव को कहिये। निज स्वारथ में अनुदिन रहिये ॥७०९॥
पर रक्षा परमारथ सोई। पर का अर्थ न मानव होई॥
मानव जाति भिन्न जो प्राणी। तेहि रक्षा परमारथ जानी ॥७१०॥
ताते करिये रक्षा भाई। परमारथ यह धर्म बताई॥
निज दुख जैसे पर दुख जानो। निज समान सब का सुख मानो ॥७११॥

भय बस सब जन चले पराई । हिंसक देखि पास नहिं आई ॥
सब को मोह प्राण की होई । जलचर थलचर नभचर जोई ॥७१२॥
आपन पूत होय जब रोगी । जहँ तहँ संतत फिरत वियोगी ॥
नाना औषधि द्रव्य लुटावे । डाइन ओझा में मन लावे ॥७१३॥
सर्व उपाय करे करवावे । आया काल प्राण ले जावे ॥
करत करंदन निश दिन भाई । पर को हते दया नहिं आई ॥७१४॥
जेते जीव राम के बालक । सो सब का है गुरु वर पालक ॥
तिसका पूत हतहिं सन्तापी । तिन समान जग में को पापी ॥७१५॥
कैसे सहन करे भगवाना । महा दण्ड देवे दुख नाना ॥
तासु विधान उल्लंघन करई । दुख अनेक सहि सहि के मरई ॥७१६॥
जो तुम कहो दोष नहिं मारे । तो चोरन को क्यों दुख भारे ॥
जो इच्छा सो दुष्टन करते । तव अनुकरण सदा वह धरते ॥७१७॥
तिनको क्यों धरवावत भाई । नाना दण्ड दोष बतलाई ॥
जो वह दोषी तुमहूँ दोषी । अबल माँस से जो तन पोषी ॥७१८॥
उभय समान चाहिये दण्डा । अबलन को दें आप अदण्डा ॥
यह निर्णय नहिं तुम्हार नीका । एक समान; चाहिये ठीका ॥७१९॥
धर्म कर्म जो मानो भाई । हिंसा दोष वेद बतलाई ॥
वेद बाहिरे याको पोषक । सो अनार्य पापी जग दोषक ॥७२०॥
देवी देव मांस नहिं खावे । यह असत्य हरि नाम बतावे ॥
परमानन्द त्यागि नर लोगा । करते हिंसा से बड़ रोगा ॥७२१॥
जहँ लगि विश्व सकल यह होई । सब का पिता ईश इक सोई ॥
ताको तजि मिथ्या सुख चाहत । याते नित भव दुख में राहत ॥७२२॥

आपस में सब लड़ि लड़ि मरहीं। हिरदै में नहिं हरि को भजहीं॥
ताते नित नाना दुख पावहिं। जो हिंसा में नर मन लावहिं॥७२३॥
अबल जीव मारहिं जो खाते। महा दोष सब सन्त बताते॥
जो सन्तन मत केर सु त्यागी। तिनको जग में जानु अभागी॥७२४॥
जब जब भीड़ परो जग माँहीं। सन्त रूप में हरि प्रकटाहीं॥
राम कृष्ण शंकर गुरु देवा। बुद्ध कबीर कीन्ह जग सेवा॥७२५॥
और अनेक सन्त भगवाना। रक्षा हेतु धरे तनु नाना॥
सबल ब्रह्म प्रभु आप दयाला। प्रकट होत भगवन दुख टाला॥७२६॥
ताको महिमा बरनि न जाई। दीन-दयाल हरे दुखदाई॥
दुष्टन का करता संघारा। धर्म सनातन भक्त उबारा॥७२७॥
ताहि काल कहँ रहेउ चिकित्सक। जो हैं सन्त वेद मत दूषक॥
लोभ लागि करते शठ पापा। जीव मारि देते सन्तापा॥७२८॥
होवहिं आठ पाप के भागी। बदला देहिं सो मन्द अभागी॥
क्रय विक्रय करि अनुमति कारा। मारे खावे बनवनिहारा॥७२९॥
टुकड़ा काटि अनेकन करई। और जो पारस आगे धरई॥
यह आठो हत्यारा जानो। वेद बचन पुनि बुधन बखानो॥७३०॥
खाय मांस निशचर सो जाना। नहिं मानव चण्डाल समाना॥
जम्बुक श्वान गीध सम कागा। केसरि बाज समान अभागा॥७३१॥
जो जस कर्म करे तस होई। नहिं संशय इसमें नर कोई॥
शुक वास ब्रह्मा का होई। मांस बसे नारायण सोई॥७३२॥
अस्थि शिरी शंकर भगवाना। सर्व इन्द्रिय देव बखाना॥
ताते मांस न खाना भाई। सब देवन को हिंसा गाई॥७३३॥

खाय मांस सो सब को खाई। अज हरि हर सब देवन भाई ॥
यहि उत्पाद कहाँ ते होई। करि सुरती सुनिये सब कोई ॥७३४॥
मात पिता रज विन्दू देहा। भक्षै पापी सो मुख खेहा ॥
सब की उत्पति यहि विधि होई। याते मांस न खावो कोई ॥७३५॥
शोणित शुक्रज जो नर खाई। ताकी बात सुनो रे भाई ॥
जब तक नभ रवि सोम प्रकाशा। रहे नरक में तब तक वासा ॥७३६॥
खाय मीन सो सब को खाई। पशु पक्षी मानव जो भाइ ॥
याते जग में जेते प्राणी। खावे भख सब को यह जानी ॥७३७॥
जिस को खावे खावे सोई। खून किये ते फाँसी होई ॥
लिये कज बिनु दिये न छूटे। देनहार सो बहु विधि कूटे ॥७३८॥
यहि विधि दोष अनेक प्रमाना। कहें सन्त मुनि वेद पुराना ॥
जो यह पाप करे शठ कोई। तिन समान पापी नहिं होई ॥७३९॥
याते हिंसा कर्म न कीजै। राम नाम भजि लाहा लीजै ॥
झूठा जग झूठो भव भोगा। जो भोगहिं तन बाढ़े रोगा ॥७४०॥
ताते योग युक्ति नर कीजै। हिंसा कर्म नहीं मन दीजै ॥
जेहि कारण करिये उपवासा। सोई जन करिये तब नाशा ॥७४१॥
सदा कृतघ्न जीव जग सोई। नहिं विश्वास करो नर कोई ॥
राग द्वेष सुस्थिर नहि जाका। कभी न करिये संगति वाका ॥७४२॥
तजो दूर से प्राणी नीचा। लै घाले तुम को वह कीचा ॥
नीच भलाई कभी न करना। सर्प समान तासु से डरना ॥७४३॥
नहीं बुराई भी तेहि करना। उभय दोष भूलिहुँ नहिं धरना ॥
मदिरा माँस नीच सब कर्मा। तजो सकल करिये शुभ धर्मा ॥७४४॥

नास्तिक शंका

जो तुम कहा माँस में दोषा। भक्षक पर कीन्हा बड़ रोषा ॥
तो तुम दुग्ध दही क्यों खाते। पशु शोणित सब अंश बताते॥७४५॥
सूक्षम रहत किटाणू तामे। तुमहूँ खात दोष है वामे ॥
पुनः अन्न जल औषधि जेते। सब में जीव रहत नर तेते ॥७४६॥
चलत फिरत बहु जीवन भाई। तिनको तुमहूँ नित्य सताई ॥
हिंसा विना काम नहिं होई। याते दोष न मानों कोई ॥७४७॥

बन्दी छोड़ का उत्तर

यह तव तर्क बुद्धि से हीना। याते दोष न यामे दीना ॥
दुग्ध दुहत नहिं पशु दुख होई। याते इसमें पाप न कोई ॥७४८॥
जो नहिं दुग्ध दुहो रे भाई। दुख अनेक पशुअन तब पाई ॥
बाढ़े दुग्ध सदा चिल्लावे। दुहे दुग्ध तब शान्ती पावे ॥७४९॥
घास पात तेहि अन्न खिलाऊँ। ताका अंश दूध हम पाऊँ ॥
शोणित अंश दूध नहिं होई। बुद्धिमान जन जाने सोई ॥७५०॥
सेवा टलह करत हम ताको। सुख अनेक हम देते वाको ॥
याते दोष न यामे कहिये। खाओ दुग्ध बुद्धि तब लहिये ॥७५१॥
होत स्वभाविक क्रिरिया जोई। तामे दोष कहा नहिं कोई ॥
दुग्ध दही में जो तुम भाषा। अन्न तोय औषधि में राखा ॥७५२॥
चलत फिरत इत्यादिक बाते। सर्वस्वभाविक कोविद गाते ॥
पूर्व वचन में निर्णय कीन्हा। गृही धर्म में सब कहि दीन्हा ॥७५३॥
बिना किये हिंसा यह होई। याते दोष न यामे कोई ॥७५४॥

दम्भी प्रकरण

दोहा—सदा ठगे संसार को, छद्म रूप में जोय।
सत्य कर्म करता नहीं, दम्भी है जग सोय ॥७५५॥

चौपाई

काम क्रोध मद लोभ अपारा। छल परपंच कपट व्यवहारा ॥
चर विवेक सपनेहुँ नहिं ज्ञाना। संत सभा नहिं मोह महाना ॥७५६॥
विषय विकार भोग जिमि आमी। तृप्ति न कबहुँ कुरंग समानी ॥
शम्बुक भेकन विषय तलावा। बगुला इमि तिमि ध्यान लगावा ॥७५७॥

हरिगीतिका छन्द

बग ध्यान में रहते सदा, इस जलधि विश्व महान में।
बाहर प्रभूत सु स्वच्छ हैं, मानो रमापति ध्यान में ॥
जैसे महा मुनि शोभते, घट योनि लोमस मानिये।
तैसे सदोदित ध्यान धर, महिमा अवर्णित जानिये ॥७५८॥

सोरठा

जानि सके नहि कोय, भीतर करनी नीच की।
कपट दक्षता सोय, जिमि दश मौली वेष धरे ॥७५९॥

हठ धर्म तप की महिमा चौपाई

कबहुँ वेष धरि सन्त मराला। विचरहि विश्व मध्य जिमि काला ॥
करहिं घात जीवन पर कैसे। टूट सचान कीर पर जैसे ॥७६०॥
लिये बझाय बड़ा सो चंगुल। खाय गँवाय किया सो पंगुल ॥
जीव कीश गुरु बने मदारी। विषय विलम्पट ज्ञान सिखारी ॥७६१॥
स्वर्ग नर्क लगि नाच नचावइ। कर्म भरम बहु भाँति दिखवई ॥
पर को ज्ञान ध्यान अति देहीं। दुष्ट कर्म अपने चित में ही ॥७६२॥

धर्म भूमि पर करहिं अधर्मा। स्वारथ हित नित करहिं कुकर्मा॥
राम नाम पर मुद्रा माँगहिं। निज असत्य रत पर सत् वागहिं॥७६३॥
कहे करे सो कबहूँ नाहीं। सदा रहे पापन के माहीं॥
मन भर्माय के काटहिं चोटी। अति मतिमन्द ज्ञान की खोटी॥७६४॥
नहिं श्रुति मारग सत्य विचारा। बरहा घालि लगावहिं छारा॥
कर तिरशूल भयंकर सोहे। देखि सकल जनता मन मोहे॥७६५॥
डाटहिं लोगन भय दिखलावहिं। साप भयंकर मुनि कर गावहिं॥
जानत नाहिं मुझे तुम त्यागी। देब साप घर अगिनी लागी॥७६६॥
यहि विधि बहु लोगन डेरवावहिं। जो चाहहिं सो बाबा पावहिं॥
स्वर्ग में पैर पताल कपाला। मानहुँ वेष धरे वैताला॥७६७॥
ऊर्ध्व बाँह खड़ेसरी साधे। जल शय्या में आसन बाँधे॥
लागि धुनी चौरासी भाई। ग्रीषम ऋतु जब आनि तुलाई॥७६८॥
जले कृशातु सदा चहुँ ओरा। सुनि आश्चर्य लोग भव भोरा॥
यहि समान वैषानस नाहीं। करि विचार देखा कलि माहीं॥७६९॥
खाय न अन्न पियें नहिं पानी। यहि समान नहि जग में ज्ञानी॥
नग्न रूप मानव ते पशुवा। यथा अनार्य देश के दसुवा॥७७०॥
वर का वेष धरे जो छोटा। हास्य योग्य मानहु वह खोटा॥
नग्न स्वरूप अहा ज्ञानिन कर। रहित दोष मन है जग जेकर॥७७१॥
नहिं शरीर कर होंवे भाना। ब्रह्म स्वरूप सभी जग जाना॥
जागृत माँहि नग्न जो रहई। ताका निन्दा गुरुजन करई॥७७२॥
संसारी सब कहहिं विरक्ता। यहि समान मुनि को है जक्ता॥
परसंसा सब करहिं अनेका। रहित ज्ञान सद्बुद्धि बिबेका॥७७३॥

सदा ठगहिं सो ठगके हाथा। अन्त समय कूटहिं बहु माँथा॥
तंत्र मंत्र बहु सो सिधि करहीं। जाते धन सम्पति बहु मिलहीं॥७७४॥
जहँ तहँ बहुत देखावहिं लीला। चमतकार सो परम सुशीला॥
बनहिं बाघ मुद्रा वरषावहिं। कहुँ मोदक मिष्ठान मगावहिं॥७७५॥
कहुँ जल से घृत मूते तेला। कहुँ वर्षा बहु भाँति उड़ेला॥
यहि विधि महिमा बहुत अपारा। भूलहिं लोग न करहिं विचारा॥७७६॥
देखहिं लोग जीव संसारी। बाबा बड़े सिद्ध उपकारी॥७७७॥
जुटहिं लोग बहु माँग भभूता। बाबा मोहि धरे बा भूता॥७७८॥
भैरव देव पिशाच भवानी। लागे झारन बाबा ज्ञानी॥
पुनि कोउ वंश हीन चलि आवे। माँगे पूत बड़ा दुख गावे॥७७९॥
जड़ी मंत्र तब बाबा देहा। होगा पुत्र नहीं संदेहा॥
इतना सुनत सकल पुरवासी। बाबा कहँ बहु लोग प्रसंसी॥७८०॥
ऐसा साधु कभी नहीं आये। दर्शन किये पूत हम पाये॥
इतना सुनत मुदित अति बाबा। मम अशीश तुम सकल जुड़ावा॥७८१॥
मान बड़ाई इर्षा प्यारी। काम क्रोध मय अति हंकारी॥
असुरी सम्पदा धनद समाना। तेहि अभिमान में रहत भुलाना॥७८२॥
करहिं पुकार सदा वम्बम्बा। जयति जयति माई जगदम्बा॥
पिवहिं वारुणी मोह विताना। निज देही का नाहिं ठिकाना॥७८३॥
भूत समान अमंगल बक्के। जिमि जग माहिं कोउ नर जक्के॥
लोग बिलोकि ताहि डर माने। बलबलात सब चले पराने॥७८४॥
हो उन्मत्त पशुन जग जैसे। बहिन बहू नहिं चीन्हे तैसे॥
नाश धर्म धनहूँ घर नाशे। बुद्धि विवेक रहे नहिं पासे॥७८५॥

कहीं जाय नाला में खसई। देखि लोग बहु ताको हसई॥
मूते कुत्ता मुख में जाई। बहुत दोष मदिरा में भाई॥७८६॥

यहि समान कछु कर्म न बूरा। सकल पाप का जानहु कूरा॥
सो पापी जो करिहैं पाना। महा घोर निरयो में जाना॥७८७॥

मुक्त न होय कभी सो प्राणी। कोटि विधाता उमिर शिरानी॥
पापी सचिव आज के भाई। बहु परचार सुरा करवाई॥७८८॥

मदिरा पिये अन्न बहु बांचे। ऐसी बात कहत सो साँचे॥
देखि विचार सोध मन माँही। निशचर कर्म करावत आहिं॥७८९॥

प्रथम मुनिन वाणी भइ साँची। जो कलि लक्षण लिखा सु वाँची॥
काग गीध पागल रखवारा। ताके आगे मांस पसारा॥७९०॥

इनकी संगति तजिये भाई। बहुत कहे नहिं होय भलाई॥
जो शठ सुनहिं प्राग हतवावहिं। बैन यथारथ मन नहिं भावहिं॥७९१॥

गाँजा भांग तमाखू जेता। कहा दोष नारद मुनि तेता॥
बिजया खावे जो नर काई। एक कल्प दुर्गति महँ सोई॥७९२॥

पुनः धतूरा भक्षणिहारा। दशो कल्प सो नरक मझारा॥
पिये वारुणी पुनि जो कोई। कल्प हजार सदा तेहि होई॥७९३॥

धूम पान संख्या नहिं भाखे। अगिनित्ति कल्प नरक में राखे॥
मुख अरु पाणि पेट पद जाया। जो उत्तम मुनिदेव कहाया॥७९४॥

यज्ञादिक जेते शुभ कर्मा। पिये तमाल नाश सब धर्मा॥
कहा अभक्ष पाप बड़ भाई। दोष अगम्य वरणि नहिं जाई॥७९५॥

चुक् को जारि नाश तन करई। कर्म धर्म एको नहिं बनई॥
याते जन्म मरण नहिं छूटे। बार बार यम का चर कूटे॥७९६॥

आतम घाती सो शठ होई। तामे पाप कहा सब कोई॥
जेते पाप सुरा से होई। सो तमाल में जानो सोई॥७९७॥
जो याको खावे नर कोई। यम राजा घर वासा होई॥
यम-गण तिन को अति दुख देवे। महा नरक में पुनः डुबोवे॥७९८॥

दोहा—भाग तमाखू वारूणी, पिये अधम नर सोय।
तब तक दुर्गति में रहे, कोटि चतुर मुख होय॥७९९॥
दान सुस्थानादिक जो, तीर्थराय करि कोटि।
सभी वृथा नारद कहे, धूम पान करि खोटि॥८००॥
हाटक गज गो अयन जो, अश्वादिक करि दान।
नारद सब निस्फल कहे, धूम पान से हान॥८०१॥
सतयुग त्रेता नहि रहा, द्वापर में भी नाहि।
कलि युग में परकट हुआ, कलि तमाल सो आहि॥८०२॥
महा नरक की खानि है, धर्म नाश करि देत।
सदा दुखी संसार में, पी तमाल दुख लेत॥८०३॥
सन्ध्या औ वैराग्य को, ज्ञान वर्त जो कोय।
ता सेवत नाशे सब, अन्त नरक में सोय॥८०४॥
द्विज आदिक जो वर्ण हैं, दिये और को देइ।
शूद्र वर्ण में जात हैं, पुनः शुकर तन लेइ॥८०५॥
यह नारद का वचन है, दोष कहा इस माँहि।
जो सज्जन मतिमान हैं, सो तो पीवे नाहि॥८०६॥
आप तजे औरन कहे, तजो मानवी लोग।
यह विकार सब त्याज्य है, होत नहीं तन योग॥८०७॥

चौपाई

सुन्दर रूप कुरूप बनावे। वीर्यपात ब्रह्मचर्य नशावे॥
घरे श्वास छवथू बहु आवे। भेषज किये तवो नहि जावे॥८०८॥
खाँसी दमा सतावे ताको। दीर्घ रोग नहिं त्यागे वाको॥
नाना रोग करण यह जानो। शोक मोह संताप बखानो॥८०९॥
ज्ञान ध्यान सत् कृत नहिं होवे। धन को खोइ शुभ बुद्धि विगोवे॥
नाना दोष कहा मुनि ज्ञानी। जेते धर्म सभी की हानी॥८१०॥
काम क्रोध अतिसय उपजावे। निश दिन शोणित शुक्र जलावे॥
याते तजन हेतु कह गंगा। जो खावे छोड़ो तिन संगा॥८११॥

अन्यदुर्व्यसन कथन सवैया छन्द

रण्डि विलम्पट चोरि जुवा महँ, ई सब नीच कुकर्म कहावे।
याहि तजे नित भिन्न रहे नर, राम भजे अतिसै सुख पावे॥
चोरि महा दुख रूप कहा मुनि, निन्दत है सब नीच बतावे।
बाँधि कुदण्ड प्रदत्त्व जु राजहिं, अन्त समै वह नर्क में जावे॥८१२॥
रावण सीतहिं लीन्हं चुरायजु, ताकर हाल सभी जग जानत।
रण्डिहिं नीच महा ठगनी जग, जामहँ तैं अतिसै सुख मानत॥
द्रव्य हरे बल बुद्धि हरे घर, द्वारहुँ बेंचिक तोर मगावत।
भूरि कलेश सदा वह संगहिं, संत मुनीशन दोष बतावत॥८१३॥
मुक्त कभी नर होय नहीं वह, कष्ट महा शठ पाप कमावत।
दोनहुँ वंशक नाश भयो वह, कौरव पाण्डव लोग सुनावत॥
कारण जासु जुवा दुख रूपसु, लोग सभी नल की कृति गावत।
भ्राज्य कलेश सहे बन जाइ कुँ, सेवक राजन को बनि ध्यावत॥८१४॥

नारि छुटी घर द्वार छुटा सब, कष्ट महा इतिहास बतायो।
बात वही पुनि पाँचन को यह, अग्नि सुता कहँ नग्न करायो॥
कष्ट अनेक सहे सत भापक, ताकर प्राण विराट बचायो।
सो पुनि वाद महा रणरंगहिं, लोक समस्तन गर्द मिलायो॥८१५॥
भारत देश दुखी तबही सन, बुद्धि कला कवशल्य नशायो।
आपस में मत भेद भयो बहु, जाति अनेकन पंथ चलायो॥
आय घुसे मम देशम डाकुन, धाम धना कुल धर्म मिटायो।
कारण त्याग करो इस खेलकुँ, कष्ट अनेकन मूढ़ बनायो॥८१६॥

सोरठा

पतित हुआ यह देश, महा युद्ध के बाद से।
तब से घुसा विदेश, हीरा रत्न सो ले गयो॥८१७॥

दोहा—बुद्धि विवेक उदारता, जो विज्ञान महान।
सो ले गयो चोराय के, कियो देश की हान॥८१८॥
सब अनर्थ का मूल है, यह दुर्व्यसन् तुँ जान।
इस को चाहीं रोकना, जो शाशक मतिमान॥८१९॥

चौपाई:—

जो यह कर्म करे सबहीं को। वाम पंथ हम कहते ताको॥
नीच कर्म जो वाम कहावे। तासो मोक्ष कभो नहिं पावै॥८२०॥
मदिरा सामिष भाँग तमाला। कनक कामिनी रण्डो वाला॥
चोरी निन्दा झूठ जुआरी। वाम मता के लक्षण भारी॥८२१॥
औरो नीच जगत जो कर्मा। कौल मता के सो सब धर्मा॥
करे सकल जो निन्दन योगा। परे नरक में तेहि संयोगा॥८२२॥

बिनु बोहित किमि उतरे पारा। सो बूड़हिं भवसागर धारा॥
बोहित सद्‌गुरु श्री भगवाना। चढ़े न युग नौका अज्ञाना॥८२३॥
उलटे तेहि निन्दा में लागे। संगति छोड़ उभय से भागे॥
वेद धर्म निन्दक जन जोई। ताकी दशा कौन विधि होई॥८२४॥
सात हजार अग्नि में राखे। सब नरकन में दुगुना भाखे॥
गुरु हरि ज्ञान विरोधक जोई। सदा नरक तेहि पापी होई॥८२५॥
नीचे गुरु ऊपर भा चेला। जाहिं नरक में ठेलम ठेला॥
महा अघिन ते नरक डेराई। नाक सिकोरे अति सकुचाई॥८२६॥
बहुत काल लगि भोगहिं नरकहिं। मानुष जन्म बहुरि नहिं पावहिं॥
जो कबहुँक मनुष तन धरहीं। सो श्वपचादि भवन अवतरहीं॥८२७॥
करहिं पाप बहुतक नर मूढ़ा। भोगहिं महा कठिन रुज गूढ़ा॥
यहि विधि कबहुँ न भव से निकरहिं। बार बार दारुण दुख निगलहिं॥८२८॥
सो अखेट अन्तक का भाई। नीच कर्म में अति दुखदाई॥
सदा दोषरत आतम द्रोही। माया मोह लिप्त अति कोही॥८२९॥
तिनका संग कबहुँ नहिं कीजै। निकट होय तो दूर करीजै॥
बमन समान तजो तेहि संगा। निर्मल मन तब होवे गंगा॥८३०॥
बिना गुरू जग रहिये भाई। सपनेहुँ पीठ देहु मति जाई॥
नहिं तो दशा होय तेहि केरी। रौरव नरक जीव जो गेरी॥८३१॥
बहुत कष्ट अति ताप अपारा। वञ्चक संग महा दुख भारा॥
शारद शेष कहत सकुचाहीं। ऐसो कष्ट वाम को आहीं॥८३२॥
ताते मैं संक्षेप बखाना। अन्तक पुर मारग तेहि जाना॥
तेहि उबरन हितु करो उपाई। जाते होवे जीव भलाई॥८३३॥

पेट भरन कर्म नर त्यागो। निन्दित कर्म जगत से भागो॥
क्रूर बुद्धि हिंसा छल छोड़ो। लम्पट विषयन ते मन मोड़ो॥८३५॥
पागलपन मदिरा मद जोई। दोष दृष्टि त्यागो सब कोई॥
लोभ मोह तृष्णा की धारा। ता असक्त बूड़े संसारा॥८३५॥
तीनहुँ को अघ रूप बखाना। खोटा कर्म करावहिं नाना॥
सो वैतरणीं रूप बखाना। अधम योनि पावहिं अज्ञाना॥८३६॥
मोट बुद्धि खोटा व्यवहारा। अन्तक पुर में खुला दुआरा॥८३७॥

दोहा—माता भगिनी पुत्र वधु, निज पुत्री पर कोय।
जेते नारी जगत में, तिनमें कुमति न होय॥८३८॥
पितृयान दक्षिण नदी, तिन को जानो भाय।
इन में जो कुदृष्टि करे, तरना दुष्तर गाय॥८३९॥

सोरठा

कबहुँ न लागे तीर, भरमत इस संसार में।
कहहि पुकारि कबीर, झूठि गिरा नहि सत्य यह॥८४०॥
जन्म जन्म दुख पाय, दोष दृष्टि जो आनता।
कह कबीर गुरु राय, बार बार यह सत्य है॥८४१॥

हरिगीतिका छन्द

मैं कहत सत्य पुकारि के, नहिं ठौर इन को है कहीं।
स्वर्गादि तो अति दूर है, रविपूत पुर पाते नहीं॥
कारण महा ए हिंसकी, याते न बैठन पावते।
जाते जहाँ सब मारते, वन मिरग सम सो ध्यावते॥८४२॥
जिमि भूत व्याकुल बारि बिनु, तेहि भाँति जानो नीच को।
करिवर यथा दल दल फँसा, तैसी दशा उस मीच को॥

शासन महा रविपूत का, निज भाल पर संतत सहे।
तेहि दूत चहुँदिश घेरहीं, रव घोर सोर पुकार है ॥८४३॥
जिन जिन विषय में मन बसे, दिखलावते सो मारते।
जनकहुँ कहे नहिं छोड़ सक, सब कर्म दोष भोगावते ॥
उत्कोच नहिं लेते वहाँ, व्यवहार सत्य सु जानिये।
करते उचित निर्णय सदा, नहिं घूस लेते मानिये ॥८४४॥
जिस भाँति जिनका कर्म है, अनुरूप सो फल देत हैं।
शुभ कृत्य का सुख जानिये, पापिन महा सुधि लेत हैं ॥
आश्चर्य हो सुनिके जिया, विश्वास कोउ न मानिहैं।
सज्जन सकल गुण साधु जो, सो भेद दोनो जानि हैं ॥८४५॥

दोहा—मति विवेक जाके हिया, सो जाने मतिमान।
काल कला दुख रूप जो, सब कुछ करहिं बखान॥८४६॥

❀ वाम पंथ विमर्श षोडश अध्याय समाप्त ❀

शुभ धर्म वर्णन सप्तदश अध्याय

चौपाई

समुझि बूझि मारग शुभ चलहीं। गुरु अनुशासन कारज करहीं ॥
थोरहिं समुझहिं बहुत सयाने। भाव भक्ति हिरदै में आने ॥८४७॥
अज्ञ जीव को ज्ञान बतावें। अन्ध पंथ जग रहे न पावें ॥
नर वंचक ते करे उबारा। विद्या ज्ञान करे सुप्रचारा ॥८४८॥
विद्या बिना रहत नित दीना। जग व्यवहार बुद्धि भइ पीना ॥
ताते विद्या पढ़िये भाई। सकल सु सम्पति ताहि बताई ॥८४९॥

पशुवत ज्ञान जीव का नाशे। तीनि काल को बुद्धि प्रकाशे॥
औरो शुभ गुण जेते भाई। सब को सिखिये प्रेम लगाई॥८५०॥
एक जाति से देश बसावे। एक विधर्मी रहे न पावे॥
एक धर्म हो एकै जाती। तब सुख होवे सब दिन राती॥८५१॥
सिन्धू धर्म जहाँ लगि होई। एक धर्म जानो सब कोई॥
अति उदार सब को सुख दाता। तीनि काल का जानो त्राता॥८५२॥
श्रुति अनुकूल जहाँ तक होई। धर्म अहिंसा पाले सोई॥
धर्म अहिंसा सम नहिं औरा। निर्भय करत सकल जन दौरा॥८५३॥
रागद्वेष सब जीव विहाई। एक ठौर सब लोग रहाई।
सब सन सब की प्रिति अपारा। निर्भय रहत सकल संसार॥८५४॥
सो सब धर्म वेद कर गावा। ज्ञान स्वरूपी वेद बतावा॥
जाते हानि न होवे भाई। सो सब धर्म वेद कहलाई॥८५५॥
चारि योनि जिन ते रह सुखिया। रंचक सो न कबहुँ हो दुखिया॥
सो सब धर्म वेद के माँही। इन से परे और सो आंहीं॥८५६॥

सवैया छन्द

औरन धर्म बिहाल करे जन, एक अनेकन राह बताई।
छिन्न विभिन्न कियो सबहीं जग, आपस में सब द्वन्द्व मचाई॥८५७
लोभित मोहित नित्य रहे सब, औरन में सब दोष लगाई।
शान्ति नहीं कुविचारक हैं सब, भेदहिं भावहिं नित्य बढ़ाई॥८५८
सुस्थिर नाहिं ठिकान कहे वह, ईश नहीं सु प्रमाणिक होई।
गीति गड़ेरिन की सब गावत, राम स्वरूप न जानत कोई॥८५९॥
बोलत वैन कुवैन सदा नर, अंतिम है अवतार सदोई।
और नहीं अब आवहि कोईक, गावत हैं इसलामिक सोई॥८६०॥

ऐसहिं जानु खिरिष्टिन का मत, और मता जग में रह जोई ।
सुस्थिर ज्ञान नहीं जग में कछु, जो सब भ्रामक बात भनोई ।।८६१
हिंसक वृत्ति सदा तिनकी भइ, आतम ज्ञान विहीन बिगोई ।
मानत सत्य सदा जग के सुख, चञ्चल चोर रहे विरतोई ।।८६२
लूटत पाटत द्वन्द्व मचावत, भौतिक सत्य बखानत सोई ।
तामहँ औरन को अब ठेलत, नास्तिक ज्ञान प्रचारक होई ।।८६३।।
जो सुख के तुम चाहक हो नर, याहि तजो भजिये गुरुराई ।
वेद विलक्षण ज्ञान बखानत, नाहिं विधर्मि में तुम पाई ।।८६४।।

चौपाई

यवन गुरुण्ड विधर्मी कहिये । जिनके संग नहीं सुख लहिये ।।८६५।।
तिनको त्यागि देहु रे भाई या अपने में लेहु मिलाई ।
कर्म धर्म सब देहु बताई । आपनि जाति होय अधिकाई ।८६६।।
जैसे मिलहिं मिलाओ वैसे । साम दाम भय ज्ञान प्रेम से ।।
भेद भाव नहिं कीजै भाई । एकमेक हो प्रेम लगाई ८६७।।
शुद्ध करो तब भ्राता सोई । भ्रम बस पर में गयो विगोई ।।
राम मंत्र गायत्री देतहिं । सकल पाप छुटि जात परेतहिं ।८६८।।
याते राम मंत्र सब दीजै । सकल मिलाइ आपना कीजै ।।
जब नहिं मिलहिं तो दीजै त्यागी । उनके संग कबहुँ, नहिं लागी ।।८६९।।
कारज हेतु सकल का संगा । विना काज तजिये तेहि गंगा ।।
आपन धर्म गहे सुख मूला । पर का धर्म तजो जिमि शूला ।।८७०।।
निज जाती को रक्षा कीजै । पर जाती को दुख नहिं दीजै ।।
जेहि विधि धर्म जाति की भाई । रक्षा होय सो करो उपाई ।।८७१।।

आपनि जाति सदा सुखदाई। अपने धर्म मुक्ति सब गाई॥
याते उभय की रक्षा कीजै। स्वर्ग लोक में बासा लीजै॥८७२॥
राक्षस कर्मी जो जग माँहीं। ताहि बधे कछु दोष न आँहीं॥
जो मारे तेहि मारो भाई। राजनीति यह मुनिवर गाई॥८७३॥
देश विनाशक जो जग जानो। तिनके लिये नियम यह मानो॥
बिनु कारण हिंसा नहीं कीजै। सत्य वचन में मन को दीजै॥८७४॥
सावधान होइ रक्षा करनी। भाव भक्ति हिरदै में धरनी॥
संत सेव कछु करिये दाना। ज्ञान हेतु तीरथ में जाना॥८७५॥
सन्त समान और जग नाहीं। जो इच्छा पावे मन माहीं॥
जाति पाति नहिं पूछे ज्ञाना। संत रूप का करिये ध्याना॥८७६॥
संत विशुद्ध दोष नहिं जाके। सदा संग रहिये नर ताके॥
पारख करो सकल की भाई। बिनु पारख सब गये विलाई॥८७७॥
कोविद मुनि परखावे जोई। सत्य वाक्य मानो नर सोई॥
निज आतम में सबको देखे। पुनि सबको अपने में पेखे॥८७८॥
संशय शोक विपर्यय नाशै। आतम ज्ञान बुद्धि परकाशै॥
पंडित इनको कहिये भाई। इनकी सेवा होय भलाई॥८७९॥
मूरति ध्यान योग हितु कीजै। ब्रह्म-भाव सबमें चित दीजै॥
पत्थर भाव कबहुँ नहिं राखे। व्यापक ब्रह्म सकल में भाखे॥८८०॥
मात पिता वर बन्धू कोई। नहि अपमान सेव कर सोई॥
जो जाको होवे व्यवहारा। संतत कीजै वही विचारा॥८८१॥

माला छन्द

हित चैन चैन सुख रूप अयन, उपरुक्त बात का ध्यान करो।
ज्ञान दया वैराग्य क्षमा सत, पुनि विवेक संतोष धरो॥

शम दम पावन शील धैर्य को, सदाचार व्यवहार भरो ।
मुदिता मौन शयन सुखसागर, निज मन से सत कर्म करो ॥८८२॥

चौपाई

सेवा धर्म सकल से सुन्दर । सर्वश्रेष्ठ सो हो जो जग अन्दर ॥
सास श्वसुर की सेवा करई । सो पतोहु बैकुण्ठहिं लहई ॥८८३॥

पुत्र करे सो हरि पुर वासा । जो जन मात पिता कर दासा ॥
संत सेवि सतलोक पधारे । जन्म मरण नहिं सो जग धारे ॥८८४॥
पंडित मुनिवर सेवक जोई । ब्रह्मलोक में वासा होई ॥
पतिव्रता पति लोकहिं जाई । कोटि कोटि सुख सो तहँ पाई ॥८८५॥
देश समाज भक्त जो कोई । इन्द्र लोक पहुँचेगा सोई ॥
साचो नीति चले जो राजा । महा स्वर्ग सुख माँहिं विराजा ॥८८६॥
शीतल शील बैन कह मधुरे । तृषा बुझावे जन की सुधरे ॥
सो शशि लोक महा सुख भोगहिं । नाशहिं तन का सकल कुरोगहिं ॥८८७॥

शीत काल में अगिन तपावे । सूर्यलोक में वासा पावे ॥
जो भूखे को देवे दाना । धनद लोक में जाय सयाना ॥८८८॥
जो अम्बर साधुन को देहीं । वरुण लोक में वासा लेहीं ॥
जो प्रसन्न पर को निति करई । अच्छा गान सुनावत रहई ॥८८९॥
सो गंधर्व लोक का वासी । सदा मुदित मन सेवहिं दासी ॥
जो भवानी की पूजा करई । शंकरपुर में वासा लहई ॥८९०॥
सो पारख में निति अनुरागे । माया मोह सकल तेहि भागे ॥
जन्म मरण नहिं पावे भाई । शंकर की महिमा अधिकाई ॥८९१॥

सन्ध्या कर्म करे जो कोई। सदा सुखी सम्पति घर होई॥
जननी सम नारी सब जाने। देवीपुर में जाहिं सयाने॥८९२॥
जो करि राम रूप सब सेवा। ब्रह्मरूप होवे सो देवा॥
सर्वलोक में सुख अधिकाई। एक से अधिक एक को गाई॥८९३॥
बहुत काल तक तहाँ विराजे। दुख अनेक बहु सुन्दर साजे॥
याते बुद्धिमान जन जोई। यह दुष्प्रचार करे नर सोई॥८९४॥
सावधान हो करे सुकर्मा। औरन को सिखलावे धर्मा॥
मूरख एक रहन नहिं पावे। अन्तर दोष रहित करवावे॥८९५॥
सदा प्रचार करे नर सोई। जेहि ते हित सब जग का होई॥
छल परपंच कपट नहि जाके। सो सम भक्त हिरदे हम ताके॥८९६॥
सो ज्ञानी सो मुक्त स्वरूपा। सो न परे कबहूँ भव कूपा॥
सो भव सागर बिनहि प्रयासा। पार होहि सतलोक में वासा॥८९७॥
नहि यम त्रास नहीं जग जाला। मिले जाहि गुरु दीनदयाला॥
पंकरुह सम यहि जग माहीं। तोय विषय तिन परसत नाहीं॥८९८॥
सदा मुक्त मुक्तामणि चारू। मुद मंगल मय ज्ञान विचारू॥
ताकर संग सदा सुखदाई। चार पदारथ सो जन पाई॥८९९॥
नहिं अभिमान ध्यान हरि केरा। संशय रहित गुरू का चेरा॥
तिन समान नहिं जग मे कोई। पर उपकार करत जन जोई॥९००॥
सकल धर्म परमारथ माहीं। जप तप तेहि समान कछु नाहीं॥
नहि छक्षण काल जीवन केरा। पाप कर्म सब तजेउ घनेरा॥९०१॥

हरिगीतिका छन्द

सब पाप कर्म सुत्यागि के, परमार्थ में वह लागता।
करता भलाई और की, सब लोग को निज जानता॥

करता सदा जो कर्म है, अभिमान नहिं कछु आनता ।
रह एक रस संसार में, नहिं मोह में मन सानता ॥९०२॥

दोहा—मान मोह से रहित सो, नहिं कलिकाल कराल ।
राम नाम जपता सदा, सबको करे निहाल ॥९०३॥

क्या लक्षण कलि जीवन देवा । कहिये नाथ करूँ पद सेवा ॥९०४॥

कलियुग व्यवहारवर्णन अष्टादश अध्याय

कलियुग जीव बहुत अभिमानी । माया मोह भरम लपटानी ॥
पाखण्डी पापी वक ध्यानी । काम क्रोधरत तृष्णा खानी ॥९०५॥
करहिं सुकर्म कभी जब राई । मानहु मरुत यज्ञ सम भाई ॥
पाप सुमेरु सूचिया दाना । करहिं आस कब आव विमाना॥९०६॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि देखहिं भाई । कब विमान हमको ले जाई ॥
नहिं आवे निन्दा में लागे । शुभ कर्मन ते सो शठ भागे ॥९०७॥
सब दिन करहिं पाप मतवाला । वृद्ध हुये बाँधे गर माला ॥
क्षण में चाहहिं आप उबारा । सो न तरहिं बूड़हिं भव धारा ॥९०८॥
धर्माऽधर्म नहीं कछु ज्ञाना । स्वेच्छित वरतहिं सो मनमाना ॥
गुरु नहिं शिष्य देव नहिं रामा । महा कुनास्तिक अज्ञ ललामा ॥९०९॥
कहहिं सकल यह कल्पित ज्ञाना । मम सम कर्ता को जग आना ॥
परम साधु हम को जग साधू । मम समान को ज्ञान अगाधू ॥९१०॥
श्रेष्ठाश्रेष्ठ न करहिं विचारा । मात पिता को लाते मारा ॥
नारि सिखावन संतत लेहीं । पर की बात कान नहिं देहीं ॥९११॥
माता पिता गुरू भगवाना । नारि समान और नहिं आना ॥
धर्म साधु की निन्दा करहीं । देखत संत द्वेष हिय भरहीं ॥९१२॥

बचन कुठार निकालहिं तुण्डा । साधु अग्र नहिं नावहिं मुण्डा ॥
कहहिं घुमक्कड़ वेष बनाये । पेट भरन साधुन में आये ॥९१३॥
औरन दासन लूटहिं भाई । इतहिं प्राण संतन का जाई ॥
आवत ग्राम साधु जब कोई । मानहु रिपु ग्रामिन का होई ॥९१४॥
बालक श्रवनहा को ललकारहिं । पाछे से सब ढेला मारहिं ॥
भेदहु याहि न भिक्षा दीजै । याको बचन न श्रवण कीजै ॥९१५॥
यह ठग मीठा बैन सुनावे । अपने बस सब लोग बनावे ॥
कर्म धर्म श्रुती की बाता । हम लोगन को आनि सुनाता ॥९१६॥
यहि वाणी हम सकल भुलाना । ठग विद्या का मर्म न जाना ॥
इन कारण भारत सब हीना । इनकी बचन न सुनिये दीना ॥९१७॥
जो चाहो भारत कल्यानो । तो साधुन की बात न मानो ॥
यहि विधि कहत बहुत दुरवचना । काल्ह परपाचन करहिं कल्पना ॥९१८॥
धन आहुत सो धर्म न करहीं । मिले जवन विधि घर महँ धरहीं ॥
पाप कर्म से द्रव्य कमाता । हरहिं धरोहर विश्वाघाता ॥९१९॥
वैमानी बहु करहिं लबारी । चारो वर्ण एक संग धारी ॥
लूटहिं पाटहिं द्वन्द्व मचावहिं । पर की सम्पति मे मन लावहिं ॥९२०॥
जो कहुं होवे कथा पुराना । झूठि मानि तेहि पास न जाना ॥
जो कहुँ नाच नटुक केरी । शूद्र द्वार पर भीर घनेरी ॥९२१॥
नाट्य खेल आश्चर्य प्रकाशा । सदा रहे चलचित्र में वासा ॥
बिनु चलचित्र एक दिन नाहीं । जो रुद्रा खरचहिं तेहि माहीं ॥९२२॥
रुण्ड नाच वेश्या की जहवाँ । भीर लगावहिं जाकर तहवाँ ॥
ब्रह्म ज्ञान सम तामें प्रेमा । प्रति दर्शन को करहीं नेमा ॥९२३॥

हिन्दू कर्म धर्म सब त्यागहिं। सत कर्मन ते सब उठि भागहिं॥
दम्भ दोष बहु इनके माहीं। राम भजन सो करते नाहीं॥९२४॥
दान मान चाहहिं बड़ भारी। कर्म नीच संतत व्यवहारी॥
हाकहिं डींग बहुत अधिकाई। क्षमता हीन न समता पाई॥९२५॥
जाति पंथ बहु कीन्ह अपारा। आपस में बड़ छूति विचारा॥
बालक ज्ञान सदा अपनावहिं। अपने को बड़ जाति बतावहिं॥९२६॥
शूद्र विप्र महँ भेद अपारा। कहहिं न वेद पढ़न अधिकारा॥
यह अज्ञान बड़ा इन माहीं। मानव में जो भेद लगाहीं॥९२७॥
यह सब शोषण वाद कहावे। पर की उन्नति आप न भावे॥
यह अनार्य लक्षण मुनि गावा। जो मानव में भेद लगावा॥९२८॥
पर यह जाति न माने भाई। गुरुजन वाणी सकल भुलाई॥
मनमाना अपनावहिं धर्मा। धर्म अर्थ नहिं जानहिं मर्मा॥९२९॥
जाहिं रसातल रुकहिं न रोके। हिन्दू जाति कहूँ मैं तोके॥
तुम अपराधी जग में भारी। उन्नति के सब कर्म विसारी॥९३०॥
केवल है हंकार तुम्हारे। सबसे गिरे जगत में प्यारे॥
इनको देखि लाज बड़ होई। गुरु जन बात न मानहिं कोई।९३१॥
सदा बसहिं दुर्व्यसन के संगा। राक्षस कर्म करहिं ये गंगा॥
कथा पुराण जहाँ पर होई। द्वन्द्व मचावहिं जाकर सोई॥९३२॥
पर्ण धूम्र सह करगद जोई। बूढ़ जवान पियें सब कोई॥
उभय देन परदेशिन केरी। महा रोग होवे तब सेरी॥९३३॥
अरुणशिखा अरभक सों खाहीं। परहिं नरक रौरव में जाहीं॥
परतिय लम्पट स्वतिय त्यागी। काम वसी निज अनुजा लागी॥९३४॥

कपटी कुटिल नीच व्यवहारा। मदिरा मांस विशेष अहारा॥
एक देखि एक को जलहीं। आपस में सब लड़ि लड़ि मरहीं॥९३५॥
पर निन्दा निज केर बड़ाई। गर्भपात सो करहिं मड़ाई॥
जाति पाति का नाहि विचारा। नारी पुरुष करहिं बिभिचारा॥९३६॥
वेश्या भाड़ धृत्ति नर नारी। चोरी गुण्डा चारी भारी॥
करहिं लोग पशुवत व्यवहारा। यथा जंगली केर विचारा॥९३७॥
हित अनहित नहिं जानहिं भाई। जैसे नारि वैसहीं माई॥
राक्षस वृत्ति सदा नर नारी। आचरणहीन सो अत्याचारी॥९३८॥
रोग विथित सब लोग दुखारी। अति संताप ग्रसित संसारी॥
सपनेउ मोद न निति संतापा। संतत तपत अविद्या तापा॥९३९॥
राजा नीतिहीन कलि माहीं। देश दुखी परजा सुख नाहीं॥
कर ते परजा अति अकुलाई मौन राज सबको दुखदाई॥९४०॥
बिना घूस कोउ काज न होई। संपति सब जनता की खोई॥
शासन हीन राज भौ भंगा। बाढ़हिं चोर जुआरी नंगा॥९४१॥
युद्ध कला नहिं इनमें भाई। बातहिं युद्ध करहिं अधिकाई॥
शत्रु विलोकि भागि सब चलहीं। छिपि के युद्ध करहिं सब छलहीं॥९४२॥
धन असंख्य नाशहिं सब भाई। युद्धप मूरख कौन भलाई॥
बुद्धिहीन शासक हैं मेरे। काम क्रोध माया के चेरे॥९४३॥
रक्षक भक्षक देखो भाई। लै उत्कोच प्राण हतवाई॥
जस तस्कर तस जानो नेता। संतत दुख परजन को देता॥९४४॥
जो इच्छा सो करते कामा। नहीं न्याय रंचक रे रामा॥
करहिं अनेक अनीत चुहारे। परजा दुखी सदा तेहि मारे॥९४५॥

करि अतताइन पक्षहिं राजा। बिनु उत्कोच करहिं नहिं काजा॥
सदा दोष नहिं ताको दण्डा। अत्याचारिन भयो अदण्डा॥९४६॥
घूसहिं दण्ड राज का काजा। सन्तत व्याकुल रहत समाजा॥
राजा राजा होवे नहीं। राजा शासन जग के माहीं॥९४७॥
शासन की पूजा सब करते। भय शासन का हिरदय धरते॥
शासन मात पिता गुरु देवा। शासन को सब करते सेवा॥९४८॥
शाशन इष्ट भक्ति भगवाना। बिनु शासन को राजा माना॥
शासन हीन भ्रष्ट संसारा। ताते बाढ़त अत्याचारा॥९४९॥
याते शासन सुन्दर नीती। पूत यथा परजा सन प्रीती॥
शासन सदा सतर्क बतावे। जेहि आश्रय सब देश रहावे॥९५०॥
सो शासन शासक में नाहिं। ताते दुखी प्रजा जग माहीं॥
कारन याको है उत्कोचा। नहीं न्याय उर अन्दर सोचा॥९५१॥
करहिं अनीति अनेकन शासक। सदा दुखी जनता सह त्रासक॥
आज विधान और कछु काली। शोणित शोषक राजा जाली॥९५२॥
कर विधान बहु भाँति लगावे। जो न देइ शतघनी दिखावे॥
मार काट प्रतिदिन हहकारा। मत अनेक फैला संसारा॥९५३॥
धर्माधर्मी एक समाना। चोर साधु को दण्ड समाना॥
महा दोष जो जग में करई। दे उत्कोच दण्ड नहिं लहई॥९५४॥
राज सोई घमघूसर केरी। एक भाव सब वस्तु घनेरी॥
निज पुरुषन की वानो झूठो। पर भू त्रव धर जिमि कपि मूठो॥९५५॥
भारत धर्म मुनिन का जोई। ताहि न मानैं और समोई॥
देव भवन पर कर बरजोरा। सन्तन निन्दा करहिं करोरा॥९५६॥

हीनाचार छात्र अरु छात्रा । पर भूमी मग करहिं यात्रा ॥
जो पुराण मर्यादा भाषा । वर सनमान वेद पुनि राखा ॥९५७॥
सर्व त्यागि एकहुँ नहिं मानहिं । सो पश्चात सभ्यता आनहिं ॥
यथा असभ्य देश के लोगा । निज इच्छित भोगहिं सब भोगा ॥९५८॥
पढ़हिं लिखहिं सब जितनहिं भाई । उतनहिं अत्याचार कराई ॥
पुर प्रहरी मंत्री गण जेते । बिनु उत्कोच न देखा तेते ॥९५९॥
यह कलि का व्यवहार विलक्षण । क्या कोइ कहे तासु का लक्षण ॥
डूबत जग भौ धारक गाँधी । तेहि पाछे आई दुग्र आँधी ॥९६०॥
जस का तस भौ राज समाजा । बिनु स्वारथ नहिं दीशे काजा ॥
निज निज पक्ष सकल जन करहीं । परजा दुख नहिं कोई हरहीं ॥९६१॥
नाना दल सोइ जानु हुड़ारा । परजा भेड़ि न करे विचारा ॥
सुख चारा हरियर सो चाहे । निज स्वारथ जंगल सो आहे ॥९६२॥
तेहि ओटे दल बसे हुड़ारा । जो जावे खावे धरि फारा ॥
साचा सकल हुड़ारन भाषे । नाम सुरूय आपना राखे ॥९६३॥
रक्षक हीन देश भव मोरा । ताते भेड़िन खायो चोरा ॥
जो रक्षक होता दृढ़ कोई । सकल हुड़ारन मारत सोई ॥९६४॥
देश स्वतन्त्र होत सुख रूपा । सदा प्रसन्न लोग बुध भूपा ॥
सब सम्पन्न राज जब होई । नहिं दरिद्रता दीशै कोई ॥९६५॥
तब उन्नति राष्ट्रन की जानो । सो समराट सुखी जग मानो ॥
नाना बुधि विज्ञान बिकाशा । दुख सन्ताप अविद्या नाशा ॥९६६॥
जल थल पावक पवन अकाशा । सबका गुण जानै बुध भाषा ॥
रामराज होता संसारा । नहि कलेश रक्षक व्यवहारा ॥९६७॥

सत्य बर्ताव सकल जन करते। दोष रोष नहिं हिरदै धरते॥
जो जिस योग्य काज सो करता। नहि अकाल मृत्यु से मरता॥९६८॥

सो व्यवहार न देखिये इनमें। वाम पंथ सब लक्षण तिनमें॥
हिंसा कर्म सदा मन लावहिं। गाय भैंष बकरा कटवावहिं॥९६९॥
नारि धर्म पतिव्रत नशावहिं। स्वेच्छत सर्व विधान बनावहिं॥
कर्म धर्म झूठा व्यवहारा। दस्यू कर्म करहिं संसारा॥९७०॥
विषमवाद अतिसय दुख रूपा। जेहि बस जीव परे भव-कूपा॥
मारन हेतु सुअस्त्र बनावहिं। जियन हेतु नहिं बुद्धि लड़ावहिं॥९७१॥
परजा सदा दुखी कलि माहीं। ताका रक्षक कोई नाहीं॥
सदा लोक उत्पात बेहाला। शान्ति नहीं बहु विघ्न कराला॥९७२॥

धर्म हीन राजा कलिकेरा। नास्तिक मत में प्रीति घनेरा॥
करता जगत कोइ नहिं मानहिं। प्राकृतिक कहि झगरा ठानहिं॥९७३॥

सम्यक बोध तोष नहिं ज्ञाना। क्षण में आन क्षणहिं में आना॥
थोरी भक्ति बहुत हंकारा। ऐसो लोग मिलहिं संसारा॥९७४॥

कथनी बहुत कथहिं संसारी। वंचक बुद्धि पुरुष अरु नारी॥
जाति पाँति का वर हंकारा। मूरख मोह महा दुख भारा॥९७५॥
कहते और करत कुछ औरा। मन मति रहे न एको ठौरा॥
कृतघ्नता उपकार न मानहिं। नित विपरीत काम नर ठानहिं॥९७६॥

ताते महा कष्ट तन भोगहि। राजा परजा जे जग लोगहिं॥
चंचल वृत्ति सदा नरनारी। धर्महीन सब लोग दुखारी॥९७७॥
कलि व्यवहार कहन नहि योगा। सभी पापरत विषयी लोगा॥
जाते हम संक्षेप बखाना। जानहिं सब गुण दोष सुजाना॥९७८॥

कहे लाभ नहिं होवे कोई। खीझैं लोग दुखी सब होई॥
जो सोचे जिय आपनि करणी। तजे अनर्थ चले यहि शरणी॥९७९॥
याते हम यह बरनन कीन्हा। नहिं अपराध किसी को दीन्हा॥
कटु औषधि से रोग नशावे। मीठा खाये ते दुख आवे॥९८०॥
याते हितकर करुआ बानी। तासे होय कबहुँ नहिं हानी॥
प्रति लोभन पहले दिखलावे। पीछे मुद्रा मूल नशावे॥९८१॥
मुख देखी बाणी बहु बोले। जो धनवान ताहि मग डोले॥
जाते होय स्वार्थ सन्माना। चाहे पाप करत च्वह नाना॥९८२॥
तेहि मुख हो बोले सो पापी। तासो कौन महा संतापी॥
बैन रसाल ठगन की बाता। ताको जानो सो दुख-दाता॥९८३॥
प्रथमे मीठा बैन सुनावे। करम धरम सो जीव नशावे॥
सो बानी हम कीन्ह सुत्यागा। सत्य यथारथ में मन लागा॥९८४॥
यामे करिये अब विश्वासा। संशय शोक विपर्यय नाशा॥
गहे सुगुण दुर्गुण को त्यागे। श्री गुरु राम शरण में लागे॥९८५॥
बुद्धिमान सो जानु सुभागा। राम भजन जाको शुभ लागा॥
जेते जग विकार मुनि भाषे। सो सब तजे सत्य मन राखे॥९८६॥
सत्य समान और नहिं कोई। धरे सत्य तत जन्म न होई॥
आपन धर्म सदा सुखदाई। पर का धर्म महा दुख भाई॥९८७॥
प्राण जाय निज धर्म न त्यागे। निज पुरुषन की वाणी पागे॥
दशरथ आदि सु बहुत नरेशा। धर्म हेतु बहु सहे कलेशा॥९८८॥
विदित सकल जाने संसारा। विना सत्य नहिं होय उबारा॥
प्रश्न तुम्हार कीन्ह मैं पूरा। शुभ अरु अशुभ कहा गुण कूरा॥९८९॥

हरिगीतिका छन्द

कलि दोष गुण अरु चिन्ह सब, पुनि मार्गसुख बरनन किया।
शाखा नहीं कछु गांय मैं, सब भेद तुम से कहि दिया॥
जो काल कर्म उदारता, पाखण्ड पापी दम्भ का।
सो सर्व मैं बरनन किया, फोरा सभी भ्रम भंडका॥६६०॥

दोहा—भण्डा फोरा भरम का, जो तुम पूछा तात।
निज युक्ती गुरु ज्ञान से, कहा सकल मैं बात॥६६१॥

चौपाई

कहा सकल मैं सत्य विचारा। भव बन्धन भव नाशन हारा॥
उभय लक्ष मुक्ति अरु फन्दा। कहा तोहिं सन सर्वानन्दा॥६६२॥
यह प्राचीन जानु मम ज्ञाना। प्रथम कहा मुनि इस को नाना॥
मम हिरदय कर राम प्रकाशा। तिनकी कृपा ज्ञान यह भाषा॥६६३॥
ताते जानिये यह हरि बानी। सोन पेटिका बन्द बखानी॥
सदा सुरक्षित हरि के घर में। ताको देत शुद्ध मतिवर में॥६६४॥
जो अब संशय हो कछु ताता। कहो मोहि सन सो पुनि बाता॥
यथा उचित उत्तर मैं दूँगा। जो पूछो सो पुनः कहूँगा॥६६५॥
सुनि गुरु गिरा अमी रस सानी। सुरतिगोपाल कहा मृदुबानी॥
नाथ जन्म जग भयो सुफल अब। नहिं संशय कछु शोक कृपा तब॥६६६॥
कियो कृपा जन पर गुरदेवा। कह्यो सकल समुझाय त्वमेवा॥
संकटमोचन अधम उधारन। तारन तरन हरन महि भारन॥६६७॥
दीन जनन के तुम अपनावत। काल चक्र तद निकट न आवत॥
डरे सकल तव तेज निहारी। जिमि केहरि मृगदल भयकारी॥६६८॥

मोह विपिन तम कूप अँधेरा। सभी नाश तव ज्ञान उजेरा॥
जिमि प्रकाश जग कीन्ह पतंगा। शमन भयो तम तमी तरंगा॥९९९॥
तिमि गुरु वचन तुम्हार सुमाली। शमन मोह यमजाल कराली॥१०००॥

तोमर छन्द

नहीं तहाँ भ्रमादि दोष, जहाँ प्रकाश गुरु वचन सरोष।
शमन भयो सब रोग, इक अटल बतायो योग॥
दहे मदादि सब सल्प, रहा न मुझे कोई जल्प।
तव करुणा मय कृपाल, भयो मुझ पर दयाल॥१००१॥

आनन्द कला छन्द

तेरी महिमा है अपार, पार कैसे कोई पाइहैं।
जापर कृपा करो नाथ, वही नाम नित गाइहैं॥
तजि जग झूठी आस, पास तव बिराजिहैं।
प्रताप आप ताप नहिं, आनन्द सिन्धु गाजिहैं॥१००२॥
सुधाम वास पावता, शरण तुम्हारि जाइके।
जो ज्ञान रूप आप हैं, लहे स्वरूप धाइके॥
मारग सुचाल चलि, मन से बिचारि के।
राग द्वेष कूप नाहीं, लोभ मार मारिके॥१००३॥

हरिगीतिका छन्द

वह विगत जन्म विकार सब, करुणा हुई जिस पर विभो।
सोपान रूपी नाम है, चढ़िके गये मुनि जन प्रभो॥
आता नहीं संसार में, धोखा घना जो है सदा।
सतलोक में वासा हुआ, पुलकित रहे सो सर्वदा॥१००४॥

दोहा—सदा रहे सतलोक में, निज स्वरूप सुख वास।
दूर नहीं वह जानिये, नित्य आपने पास ॥१००५॥
जिस पर दाया कीजिये, लहे वही निज रूप।
आदि अन्त वह सर्वदा, परे न भव तम कूप ॥१००६॥

चौपाई

रवि सुत फाँस परे नहिं फन्दा। सदा एक रस परमानन्दा ॥
संसृति ताप शूल नहिं व्यापे। जपत तोहिं जो सदा अतापे ॥१००७॥
मानस शरण करे सु तुम्हारा। नित नेमित स्नान विचारा ॥
वायस होय नितान्त मराला। मानस रूपी शरण दयाला ॥१००८॥
नाम सुसंदनि चढ़े तुम्हारे। सो भवसागर पार उतारे ॥
महा सुयश गावे जो स्वामी। निर्मल होय रहे जो कामी ॥१००९॥
ताते विनय करों कर जोरी। पाद कमल शिर धरों बहोरी ॥
जयति जयति गुरु देव कबीरा। कलह काल दुख मेट शरीरा ॥१०१०॥

तोटक वृत्तम्

जय देव हरे भव भीर हरे। गुरु देव कबीर सुज्ञान बरे ॥
जन पावन भावन मोर अहा। मन मोहन सोहन सोर रहा ॥१॥
प्रभु देव निरञ्जन रञ्जन हो। भव भञ्जन धीर सुरञ्जन हो।
सुख कारक रूप अनन्दन हो। सब भक्तन के हन बन्धन हो ॥२॥
भव सागर भ्शागर पार करो। तुम पोत स्वरूप उदार धरो ॥
सु अछेद अखेद अनाश अहा। सब हीं ऽधिष्ठान सुसंत कहा ॥३॥
जन तारन कारन देह धरा। भगवान कबीर हरा सु मरा ॥
सब जन्महिं कर्महिं दिव्य प्रभो। पुनि दिव्य स्वरूप अनन्त विभो ॥४॥

तुम व्यापक नित्य अभेद हरी। सुप्रकाश दिवाकर तेज भरी।
जग मोह निशा तम खेद हरा। जन नायक सायक दोष घरा॥५॥
परमेश वरे परमातम हो। सब देवन माहिं तु उत्तम हो॥
नहि मान मदा कबहि तुम्हरे। मम मानस में प्रभु आ विहरे।६॥
जिमि मेरुअडोल अहा जगमें। तिमि नित्य रहूँ तुम्हरे मगमें॥
वन मोह महा भयकारक है। तद आप कुठार विदारक है।७॥
जन पंथ प्रदर्शक आप बनो। ममता बन कुञ्ज लता कुहनो॥
यति श्रेष्ठ सदा शिव कारक हो। तुम राम प्रभो भवतारक हो।८॥
तव नाम जपे जन जो जगमें। सुख सिन्धु सदा हरिके मग में॥
तव नाम विहीन सु मूढ़ महा। वह मूरख पापहिं क्रूर अहा।९॥
अति शोक महा संताप सहा। नहि हो सुगती मुनि वेद कहा॥
यम राजक दण्ड सहे शिर पै। न कभी निर्भय यम से डरपै।१०॥
नहि काल कलेश न छूटत है। रवि पूतक दूतन कूटत है॥
नहिं पुण्य पवित्र किया जग में। सुपिया न मजा यमके मग में॥११
वह पामर जीव सदा दुखिया। नहिं होत कभी नर सो सुखिया॥
भवसागर भारक बाहन है। जग जन्मत मर्मत वागर है।१२॥
तब ध्यान महा गुणगाहक जो। लह आत्म महा सुख नाहक सो॥
वह मुक्त हुआ भव बन्धन से। गुरु राम कबीर भजे मन से॥१३
वह मानव उत्तम देह धरा। शिर राम कबीर सु प्रेम करा॥
गुरु ज्ञान मुझे यह देहु विभो। नहि आप तजूँ कर वास प्रभो।१४
जय दीन दयालु कबीर हरे। जग द्वन्द्व विकार से आप परे॥
हरिये भव ताप हमार अहो। हम जीव सुनूँ तव ज्ञान कहो॥१५

तव आस पड़ा पकड़े पग को, शुभ बुद्धि करो सुख दे जग को।
यह नम्र हमार पुकार सुनो, गुरुदेव कबीर सुधीर गुना ॥१६॥
जय पावन दीन-उधारन हे, जय दीनन के सुखकारन हे।
जय ब्रह्म अजीत अतीत सदा, निनि रूप महा मुनि ज्ञान मुदा ॥१७॥
जय एक अकार बिकार परे, गुरुदेव नमामि नमामि हरे।
जय देव दयानिधि पार प्रभो, नहिं आप समान हमार विभा। १८॥

चौपाई

यहि विधि सकल शिष्य जय कारा नाम कबीर कबीर उचारा ॥
अति प्रसन्न सब गावहिं मंगल। दीन-बन्धु सब हरन अमंगल ॥१९॥
बन्दीछोर कहहिं सब दासा। जपहिं निरन्तर नित्य उदासा ॥
पुनि सब कहहिं विश्व रुज दहना। नाम कबीर हिया में गहना ॥२०॥
सोच पोच मम सकल विमोचन। रहे न मोहि कोइ जग पोचन ॥
सद्गुरु सम कोई नहिं अपना। हरें भगत जन सकल कलपना ॥२१॥
विधु समान स्वामी तव बयना। पुनि रवि किरण पुञ्ज तम दहना ॥
अन्तःकरण शुद्ध. तव शरणा। हुआ प्रकाश ज्ञान अघ हरना ॥२२॥
तारण तरण गुरू तव चरणा। अभय अशंक त्रास नहि मरणा ॥
सत्यलोक में प्रभु का अयना। आनन्द पुरी जाय नहि बरना ॥२३॥
तहाँ कर्म कुछ धर्म न करना। सदा सुखी सोवे सुख चैना ॥
प्रभु सागर नागर गुण आगर। कलह काल सब मेटे झागर ॥२४॥
वन्दन करहिं सभी यहि भाँती। सेवहिं सत्यपुरुष दिन-राती ॥२५॥

हरिगीतिका छन्द

सेवहिं सदा हरि गीतिका, गुरुदेव सत्य कबीर को।
संतत भजहिं तेहि नाम को, मतिधीर अति गंभीर को ॥

निरमल सदा हरि नाम है, कलि दोष कोश दहावने।
तिनके जपे नर मूढ़ भी, होवे सुलच्छण पावने ॥ १ ॥
गुरुदेव पारस रूप हैं, जन लोह हाटक होत हैं।
इस विधि सकल सुप्रसंसहीं, पारस अधिक शुभ स्रोत हैं॥
पद कमल में सब लीन रह, मधुकर सदा ज्यों सुमन में।
अनुराग होवे नित नया, तारी लगी गुरु-चरन में ॥ २ ॥
पल एक सो विसरे नहीं, गुरु मंत्र को जपता रहे।
मन से वचन से कर्म से, गुरुदेव हरि कीरति कहे॥
सो मुक्त जीवन जानिये, जनि मरण नहिं वह पावता।
सतलोक पत्तन में रमे, संसार में नहिं आवता ॥ ३ ॥
सुस्थिर सदा निज रूप में, गुरु शरण निधि गोता लगा।
पाता अमी रस प्रेम से, माया सकल कल्मष भगा॥
परखा सकल संसार को, कल्यान कामी हो रहा।
गुरुदेव से परिचय हुआ, आनन्द अतिसय हो रहा ॥ ४ ॥
इस हेतु मन सुमिरन करो, भूलो न कबहीं आप को।
गुरुदेव ज्ञान विचार कर, तब मेटि हो सब ताप को॥
इस समय और काई नहीं, संसार में देखा सुना।
निस्पच्छ वक्ता आप हैं, सब सन्त जन ऐसा भना ॥ ५ ॥
जेते जगत में जीव हैं, सब को गुरू अपनावते।
जैसे भिरङ्गी कीट को, निजरूप ताहि बनावते॥
जो शुद्र नारी जगत में, अधिकार नहिं बहुते कहा।
निर्वाण केवल युगल को, औरो सकल ऐसो रहा ॥ ६ ॥

तिनमें नहीं यह बात है, सब को सुगति सम देत हैं।
जैसे जलधि सब को गहे, नहिं कूप जन सब लेत है॥
तैसे कमल सुत जानिये, गुरुदेव बन्दीछोर को।
ताते गहो तेहि शरण को, जन कूप बन्धन तोर को॥ ७॥
विसराम पावोगे अचल, तद सेव को तुम मान रे।
यह बात झूठी है नहीं, तुम सत्यहीं यह जान रे॥
इस भाग अष्टम में सभी, गुरु-शिष्य का सम्वाद है।
अति पावनं॰ रूरी लगे, भञ्जन करे जु विषाद है॥ ८॥
आशा न वासा कल्पना, सुख-राशि में तुम सर्वदा।
भव खेद तेहि व्यापे नहीं, रहता नहीं वह दुर्मदा॥
सर्वत्र गुरु सर्वोच्च हैं, सब वेद सन्त बखानते।
तेहि कारणे सज्जन सकल, गुरु भक्ति उर में आनते॥ ९॥
निर्वाण पद सो पावते, माया अविद्याऽतीत है।
मुनि वेद का यह वचन है, मुझको बहुत परतीत है॥
गुरुराम की किरपा घनी, विश्वास जो यामे करे।
विश्वास बिनु फल हो नहीं, कोटिन करे जो यज्ञ रे॥१०॥
जप तप सकल मिथ्या हुआ, जिसको नहीं विश्वास है।
यह सकल मत गोहरावते, पुनि आपने में खास है॥
जन्मे मरे संसार में, कबहूँ न सो नर निस्तरे।
कोटिन अरबपति भी रहे, विश्वास बिनु दुख में परे॥११॥
इस हेतु कर विश्वास अब, नहिं दूर कतहूँ जाइये।
गुरुदेव की वाणी गहो, वस्तू निकट तब पाइये॥

अब देर नहिं मन कीजिये, सत्वर शरण में आइये।
सादर सदा गुरु साधु के, राजीव पद शिर नाइये ॥१२॥
संसार जानु असार यह, धोखा घना अति जीव को।
तपता रहे त्रय-ताप में, पावे न दर्शन पीव को ॥
ताते तजो अति शीघ्र में, हरि नाम गुरु-पद दृढ़ गहो।
इस देह की आशा नहीं, विनशत न लागे बार हो ॥१३॥
याते गुरू का ज्ञान ले, नरतन सुधारो आपना।
घन छाँह सम परपंच है, मानो जगत यह कल्पना ॥
अब जागु नर अब जागुरे, तुम नीद में क्यों सोवता।
यम-दूत शिर पर है खड़ा, पकड़न चहे वह आवता ॥१४॥
ब्रह्मादि सब देवा डरे, भयातुर सब भागता।
त्रय-लोक सब यम से डरे, मुख फारि के जब धावता ॥
गरजे महा केहरि यथा, अणु अस्त्र जिमि संसार में।
सुनि के गरज सब कांपता, चाहे छिपन कहुँ आर में ॥१५॥
याते घटज लोमश पिनाकी, राम गुरु पद ध्यावहीं ॥
क्षण एक सो भूले नहीं, श्रुति सन्त कोविद गावहीं ॥
पुनि जीव पामर का दशा, क्या होयगो को जानता।
जो इस महा संसार में, इक पाप कृति मन भावता ॥१६॥
पुत्रादि गृह तम कूप में, गिरके त्वरित निष्प्राण हो।
अनभिज्ञ चाहे प्राज्ञ हो, इसमें न पाता त्राण हो ॥
नर हो पड़े तुम भर्म में, तव कीश का मेधा बनी।
तुम नाचता सब द्वार पर, यमराज नट महिमा घनी ॥१७॥

तद तंत्र में तुम रहत हो, सब द्वार योनि घुमावता।
सुस्थिर नहीं रहते कभी, दण्डा करम शिर मारता॥
उससे विमोचन कारणे, गुरुदेव की वाणी गहो।
श्री राम को भजले सदा, स्वाधीन हो पद में रहो॥१८॥
तुम मुष्टिका अज्ञान की, अब खोल दे संतत लिये।
सुप्रकाश होगा तब तुझे, गुरु ज्ञान शुभ दीपक लिये॥१९॥
ऐसा सदा सुकबीर हैं, पावन पतित क्षण में करैं।
कलिकाल काल कराल जो, तेहि दण्ड दे भव-दुख हरैं॥२०॥
वह सत्य भाषक ज्ञान का, पाखण्ड सब खण्डन करै।
गंगा सदा करजोरि युग, पद-वनज-रज मौली धरै॥२१॥
चौदह सु[1] छप्पन अब्द में, आयी जु पूनम ज्येष्ठ थी।
शशिवार सुन्दर दिवस था, काशी पुरी अति श्रेष्ठ थी॥२२॥
सुतरंग सर विकसित कमल, तद ऊपरे परगट भये।
पन्द्रह सु[2] पचहत्तर[3] महँ, मगहर में अस्त सु हो गये॥२३॥
तेहि ज्ञान मैं बरनन किया, अनुवाद वाणी जानिये।
जो जो दिया अज्ञा विभो, सो सो लिखा यह मानिये॥२४॥
गुरुदेव अब करुणा करो, भूले हुए हम दास पर।
नहिं तो बहूँ भव धार में, मर जाऊँगा मैं हार कर॥२५॥

---

१. 'सु' यहाँ पर सौ का बोधक है।

२. यहाँ पर भी छन्दो भंग से बचने के लिये सौ के स्थान पर सु का प्रयोग हुआ है।

३. अगहन सुदी एकादशी के दिन अन्तर्धान हुये थे।

याते विलम्ब न कीजिये, मेरे जनक गुरु देव हो।
विनती करूँ पुनि पुनि सदा, पदतामरस की सेव हो ॥२६॥
क्षमिये सकल अपराध मम, गुरु दीन-बन्धु दयाल हो।
जन जानि के रच्छा करो, वन्दन करूँ जनपाल हो ॥२७॥
माता पिता मम इष्ट हो, जानो प्रभो निज पाल हो।
शत बार मैं कर जोरि के, पद कमल पर धर भाल हो॥२८॥
होता पतन परमाद से, लिखते हुये जन ग्रन्थ में।
नहिं दोष उसका लीजिये, राखो प्रभो निज पंथ में ।.२९॥
दशग्रीव दोषी बड़ रहा, अर्जुन ने पकड़ा धाय के।
तेहि दोष का नहिं ध्यान कर, सु पुलस्त मोचे जाय के। ३०॥
है आपने की लाज जग, मम मोह बन्ध छोड़ाइये।
करिये दया गुरु विज्ञ जन, निज दास को अपनाइये ॥३१॥
करुणा सुअक्षि विलोकिये, करि आश गंगा दास पर।
करता विनय करबद्ध मैं, दीजै दरश अघ नाशकर ।.३२॥
अब देर नहिं हरि कीजिये, सुनिये पुकार अनाथ मैं।
मंजुल मनोहर नाम है, तेरो सदा जन नाथ तै। ३३॥
दौरो जी दौरो हे गुरो, आरत पड़ा तव द्वार हो।
विनती यही अब अन्त में, गंगा विनय सौ बार हो। ३४॥
दोहा—बार बहुत विनती करूँ, चरण कमल की ओर।
नाथ बाँह गहु दीन की, केवल आशा तोर ॥ १ ॥
निश वासर भूलूँ नहीं, पद सरोज का ध्यान।
सन्त राम में प्रेम रहे, सदा रहित मद मान ॥ २ ॥

आशा वासा नाम की, हे कबीर भगवान।
यही चाहना और नहीं, करूँ वन्दना दान॥ ३॥
तेइस सौ चालीस पद, सभी मुक्ति के हेत।
गहे सुगुण को देत हैं, दुर्गुण को हरि लेत॥ ४॥
युग सहस्र अरु त्रयोदश, सम्बत विक्रम जान।
कार्तिक माँस सोहावना, मंगल दिन शुभ मान॥ ५॥
दिनांक बाइस जानिये, मंगल रहा सो दीन।
ओनइस सौ छप्पन रहा, माँस पांच दो तीन॥ ६॥
मगध देश विहार में, जनपद शाहाबाद।
ग्राम सो आयर जानिये, नवाँ गुरू मठाद॥ ७॥
तामे भयो समाप्त यह, ज्ञान महान सु ग्रन्थ।
जो यामे शरधा करे, लहे मुक्ति का पंथ॥ ८॥
विविध छन्द मन रञ्जनो, भक्ति ज्ञान उपदेश।
त्रय वाणी के मध्य में, लहे भलाई देश॥ ९॥
सतगुरु सत्य कबीर की, दाया अगम अगाध।
जो जन नितहीं पाठ करे, नाशे सकल विषाध॥१०॥
बन्धन मोचक जगद्गुरु, साहब राम विलास।
तिन चरनन की धूल हम, पामर गंगादास॥११॥
बुद्धि विवेक विचार नहीं, काम क्रोध में लीन।
ताहि शान्ति के कारणे, यह रचना मैं कीन॥१२॥
सब विधि से मैं हीन हूँ, गुरुवर तेरो दीन।
सद्गुण ज्ञान न मोहि कहँ, दुर्गुण मध्य विलीन॥१३॥

सब जन से विनती करूँ, हरि गुरु सन्त समाज ।
हिरदय मेरे वास करो , और नहीं कछु काज ॥१४॥
गुरुद्वारा काशी पुरी , नगर बनारस माँहि ।
चौरा सत्य कबीर की , बहुत सन्त तहँ आँहि ॥१५॥
इन सन्तन के पद कमल , सदा नवाउँ शीश ।
हुआ समाप्त ग्रन्थ यह , जय जय जय जगदीश ॥१६॥

इति अष्टम सोपान

❀ इति श्री गंगाशरण दास कृत श्री सद्गुरु कबीर
सिद्धान्त दर्शन समाप्त ❀

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आचार्य राम विलास चरण कमल चञ्चरीक
गङ्गा शरण दास
कबीर चौरा मठ वाराणसी



परिशिष्ट

ये पद्य मेरे मित्रवर श्री धर्मदासजी व्याकरणाचार्य के रचे हुये हैं, जिनका निवास रामपुर तिलक पुर्णिया मण्डलान्तर्गत विहार में है।

(१)

दुखद है प्रबल अविद्या रूप।
जेहि बस जीव भ्रमत निशिवासर, परत मोहतम कूप ॥ १ ॥
जो अज्ञान प्रभाव न जाने, तपत तापत्रय धूप।
जनमत मरत सहत दुःख दुसह, रहे विषयनिशि सूत ॥ २ ॥
देव दनुज नर नाग सिद्ध मुनि, देत सबन को दुःख।
सेवत सब अनुराग सहित, पर पावत लेश न सुख ॥ ३ ॥
जो अनित्य तिहि नित करि मानत, असत सत्य के रूप।
त्यों अनात्म में आतम पेखत, लखत अपावन पूत ॥ ४ ॥
विषम अविद्या समन करन हित, गह सद्गुरु सुरभूप।
धर्म दास मोहादि मिटे तब, लह निज रूप अनूप ॥ ५ ॥

(२)

न पावे कोई ज्ञान विना कल्याण।
है नहि कोई वस्तु अवनि पर, पावन ज्ञान समान ॥ १ ॥
ज्ञान विना मुक्ति नहीं होई, श्रुति स्मृति प्रमाण।
बिन विचार साधन सब मानो, मन्थन सलिल समान ॥ २ ॥

हठ से तप तन तृण करि डारे, साधे मन्त्र मशान ।
मिटे न मलिन वासना मन की, विना विचारे ज्ञान ॥ ३ ॥
रोजा निमाज वज्जू जप कीजै, मस्जिद जाय अज्ञान ।
खुदा वियोगी खुद जाने विन, मिले न भिस्त मकान ॥ ४ ॥
माला टोपी तिलक लगावे, नित्य गंग स्नान ।
निज कल्पित जप नाम निरन्तर, बाढ़े उर अभिमान ॥ ५ ॥
विन समाधि सत्संग साधना, नहीं मोह भ्रम हान ।
धर्म दास शान्ति नहि तब लग, मिले न आतम ज्ञान ॥ ६ ॥

(३)

मानो सोच समझ मतिमान ।
मान मान बन्धन बहु बन्धे, स्वयं हुए हैरान ॥ १ ॥
मान लिए हो गॉड यहोवा, राम और रहिमान ।
ब्रह्मा आदम शिव मुहम्मद, केशव कृष्ण तमाम ॥ २ ॥
वेद शास्त्र गीता उपनिषद, जोतिष निरूक्त पुरान ।
है सब तेरी कीर्ति वाईविल, ग्रन्थ कितेव कुरान ॥ ३ ॥
मन्दिर मस्जिद और गिरजा घर, सब तेरा निर्माण ।
निज निर्मित जड़ वस्तु सामने, याचत निज कल्याण ॥ ४ ॥
कृत्रिम सम्मुख कर्ता निर्वल, कहे यही अज्ञान ।
चेतन द्रष्टा स्वयं प्रकाशित इसका तुम्हें न भान ॥ ५ ॥
मानन्दी घन घोर निशा में, सोये परे भुलान ।
धर्म दास जागो विवेक से, करो वस्तु पहिचान ॥ ६ ॥

(४)

पतन का कारण है यह मीत ।
आर्ष प्रदर्शित कर्म छोड़, आचरण करे विपरीत ॥
सत्य अहिंसा परम धर्म है, इस पर नहि परतीत ।
स्वार्थ विवश हो करे निरन्तर, मन वच कर्म अनीत ॥ १ ॥
ब्रह्मचर्य व्रत आवश्यक है, जो जीवन के मीत ।
करे न यम विषयातुर हो, बने न इन्द्रिय जीत ॥ २ ॥
न्याय प्रेम सौजन्य बन्धुता, मानव कर्म उचीत ।
ऋषि महर्षि उपदेश गुरु का, लाये कभी न चीत ॥ ३ ॥
अपने मन में करे न चिन्तन, क्या सत्कर्म पुनीत ।
दोष पराये दर्शन में ही, गया सयम सब बीत ॥ ४ ॥
चहे भलाई और जनों से, करे नहीं परतीत ।
धर्म दास यह सत्पुरुषों से, निन्दित कर्म अनीत ॥ ५ ॥

(५)

पड़ी अज्ञान की ग्रन्थि, इसे सुलझाओगे कैसे ।
लगी आसक्ति मर्कट कीर, बन्धन में पड़े वैसे ॥
कोई पूरब दिशा जावे कोई पश्चिम दिशा धावे ।
न पाता है कोई निराकरण तो बैठि पछतावै ॥ १ ॥
कोई मन्दिर में जा पूजन, करे मस्जिद में सजदा ।
न पावे ठौर ठिकाना, यतन बहु करके थक जावै ॥ २ ॥
कोई संगीत गाने में, ढूँढे पत्थर वो पानी में ।
कोई गंगा नहाने में, कोई तीर्थादि जाने में ॥ ३ ॥

ये साधन हैं सभी स्थूल ग्रन्थि सूक्ष्म से अति सूक्ष्म।
इसीसे है सभी साधक इसे सुलझाने में अक्षम ॥ ४ ॥
ये पावेंगे तभी तुष्टि, खुले अंतर की जब दृष्टि।
करे विवेक वो विचार, ग्रन्थित बसके निरूवार ॥ ५ ॥
ये ग्रन्थि जड़वाँ चेतन की, लगी अनादि कालों से।
कहे धर्म दास गुरु गम है, तभी छूटोगे जालों से ॥ ६ ॥

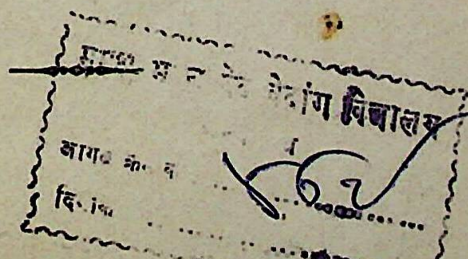
(६)

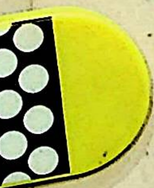
उठो मानव प्यारे जागो, जागो अब सोवो ना।
मिला बहुमूल्य जीवन इसे व्यर्थ खोवो ना ॥
ब्रह्मचर्य तप, क्षमा निज कर्म भूलो ना। मिला....
सोये हो क्यों भोगसुख, जिसका है अन्त दुख ॥
भोग से न तृप्ति कभी, बाढ़े नित नई भूख।
अब काम अशान्ति में निज को जलावो ना ॥ मिला...
भोग प्रद रोग शोक, आधि व्याध्युपाधि सब।
पूछो जाके भोग वादी शान्ति पाये कहाँ कब ॥
संयम नियम से तूँ निज मुख मोड़ो ना। मिला...
मोह निशा में तुम सोये बहुत दिन ॥
जीवन लक्ष्य क्या है, जाने न जागो बिन।
अभी क्या हुआ है जागो, समय को गवाओ ना ॥ मिला....
सत्य ज्ञान तजि काहे, भयो हो विषय बस।
तजि अमृत विष गहे कोई मूढ़ जस ॥ ७ ॥
होके तूँ स्वतन्त्र कभी परतन्त्र होवो ना। मिला...
धर्म दास जाग्रत स्वरूप है चैतन्य सब ॥

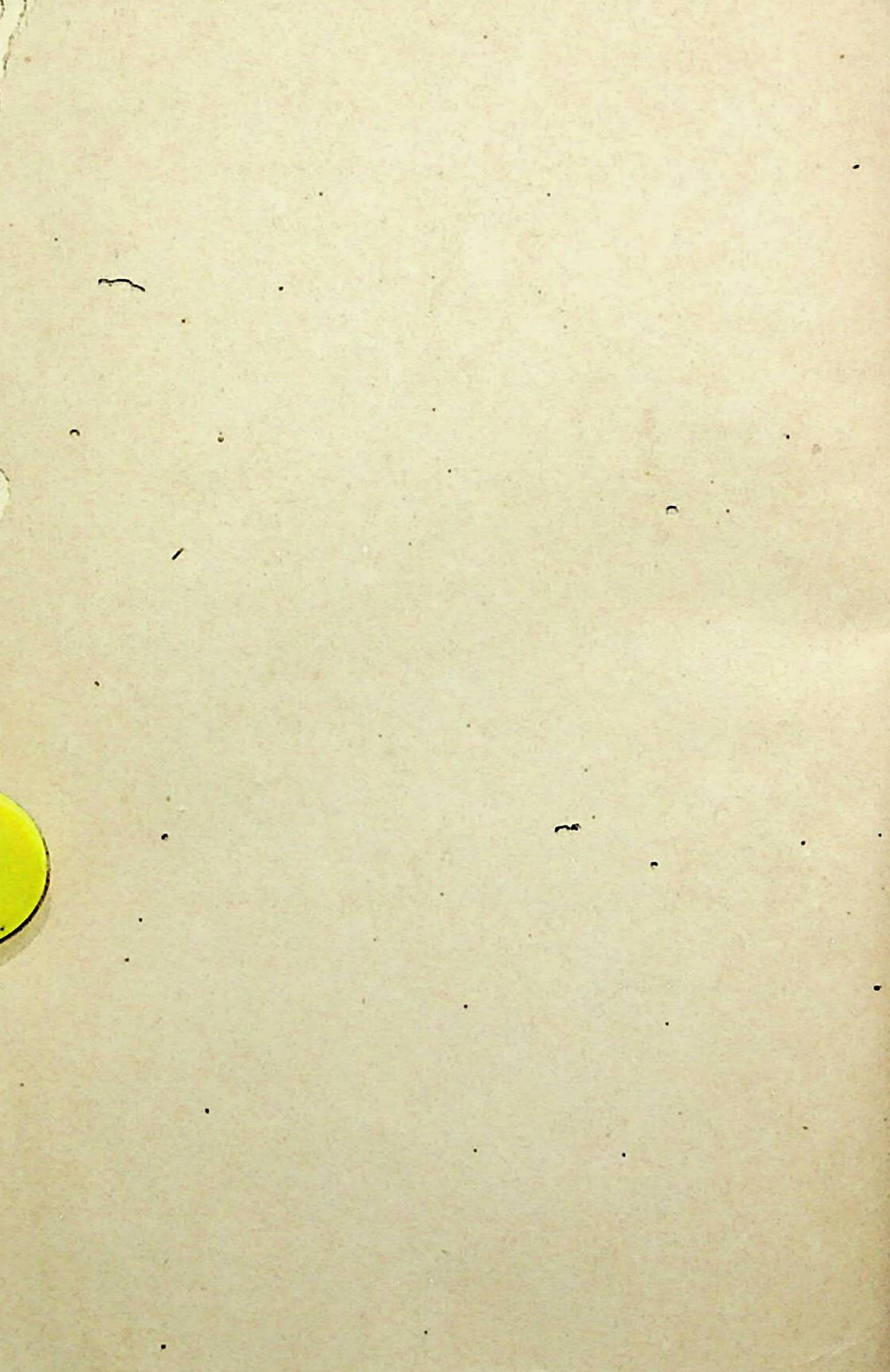
निज भूल बस भये, ताके परिणाम भव।
करके विचार भोग, बीज फिर बोवो ना॥ मिला....

(७)

ज्ञानार्थ साधु संग में आनाही पड़ेगा।
पाना है मोक्ष तो विषय तजना ही पड़ेगा॥
किया है राग द्वेष, त्याग प्रेम भी करो।
नित रत है स्वार्थ सिद्धि सेवा व्रत को धरो॥
समता की राह पर तुझे चलना ही पड़ेगा। पाना...
हो व्यस्त भोगाभ्यास में मद मोह से भरे॥
कामादि ग्रस्त होके क्यों, भवधार में पड़े।
तजके विषय विलास, योग करना ही पड़ेगा॥ पाना....
स्वर्गादि के हो लोभ से, सत्कर्म कर रहे।
है राम रहीम गॉड यहोवादि रट रहे॥
इस दास्ता के भाव को तजना ही पड़ेगा। पाना...
तज काम क्रोध लोभ मोह, मत्सरादि को॥
गहो शील वो संतोष दया, धैर्य आदि को।
सुविचार के दामन को पकड़ना ही पड़ेगा॥ पाना...
निज कल्पना को दिल से अभी दूर भगावो।
चितपर परे है पर्त, उसे शीघ्र हटाओ॥
धर्म दास निज रूप तभी जान पड़ेगा॥ पाना...







कबीरचौरा मठ (कबीरपंथ मूलगादी) के प्रमुख ग्रन्थ

(१)	मूल बीजक	श्रीसद्गुरु कबीर साहब
(२)	साखी-ग्रन्थ	,, ,,
(३)	शब्दावली	,, ,,
(४)	गुरु-माहात्म्य	विविध सन्त
(५)	पंचग्रन्थी	रामरहस्य साहब
(६)	बीजक (सटीक)	पं० महराज राघव साहब
(७)	पंचग्रन्थी (सटीक)	,, ,,
(८)	साखी ग्रन्थ (सटीक)	,, ,,
(९)	वचनामृत	,, ,,
(१०)	राघव दोहावली (अप्राप्य)	,, ,,
(११)	कबीर स्तोत्रमाला	गंगाशरणदास
(१२)	गोरख गोष्ठी	(सम्पादक) बाबा लखनं दासजी
(१३)	सर्वाजीत गोष्ठी	,, ,,
(१४)	चौका-आरती विधि	(सम्पादक) पं० राघव साहब
(१५)	विचार-ग्रन्थ	मेंहीदासजी
(१६)	बीजक (सटीक)	,, ,,
(१७)	सद्गुरु कबीर-जीवन-चरित्र (अप्रकाशित)	गंगाशरणदास
(१८)	मानव-शिक्षा	रामनन्दन दासजी
(१९)	नन्दन गुरुस्तुति	,, ,,

सूचना—अजिल्द २)७५, सजिल्द ३)२५

पता—

कबीरवाणी प्रकाशन-केन्द्र,

कबीरचौरामठ, वाराणसी